देवराज सुराणा, अध्यक्ष,
अभयराज नाहटा, मन्त्री,
श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय
ब्यावर (राजस्थान)



मुद्रक:—
भंवरलाल शर्मा
गजानन्द प्रिंटिंग प्रेस, शाह-मार्केट,
ब्यावर (राजस्थान)

सहायकगण की शुभ नामावली



दिवाकर दिव्य ज्योति के नाम से स्व० श्री जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पंडित रत्न मुनि श्री चौथमलजी महाराज के प्रभावशाली व्याख्यान सीरिज रूप में प्रकाशित कराने के लिए निम्नलिखित महानुभावों ने सहायता देकर अपूर्व लाभ लिया, इसके लिए सहर्ष धन्यवाद है:—

रुपये:—

५०१) श्रीमान् सेठ सिरेमलजी नन्दलालजी पीतलिया, सिहोर की छावनी

५००) „ „ गुलराजजी पूनमचन्दजी, मदनगंज

३००) „ „ चौथमलजी सुराणा, नाथद्वारा

२५०) { „ „ कुंवर मदनलालजी संचेती, ब्यावर
{ „ „ सेठ जीवराजजी कोठारी, नसीराबाद

२००) „ „ शंभूमलजी गंगारामजी बम्बई फर्म की तरफ से श्रीमान् केवलचन्दजी सा० चोपड़ा, सोजत सीटी

१५०) „ „ राजमलजी नन्दलालजी, भुसावल

१५०) „ „ हस्तीमलजी जैठमलजी, जोधपुर

१२५) „ जिनगर अमरचंदजी इन्दरमलजी गौतमचंद जैन, गंगापुर

१२५)	श्रीमान् सेठ कस्तूरचन्दजी पूनमचन्दजी जैन,	गंगापुर
१२५)	,, ठेकेदार तोलारामजी भंवरलालजी,	उदयपुर
१२५)	,, ,, धनराजजी फतहलालजी,	,,
१२१)	,, सेठ माणकचन्दजी छगनलालजी गोठी,	जयपुर
१०१)	,, जिनगर तेजमलजी रोशनलालजी,	गंगापुर (मेवाड़)
१००)	,, सेठ लालचन्दजी पुखराजजी मुणोत,	सिकन्दराबाद

दो शब्द



भूमण्डल पर बसे मानव जगत् में वाणी का बड़ा ही महत्त्व-पूर्ण स्थान है। वाणी का बल भी एक बल है, और वह बल वह है जो जनता के मनः प्रदेश पर अखण्ड साम्राज्य स्थापित करने के लिए संसार की दूसरी तूफानी ताकतों से कहीं अधिक महत्त्व रखता है।

जब जन-समूह में सदाचार की सुगन्ध से महकता हुआ महा पुरुष बोलने लगता है, तो ऐसा मालूम होता है, मानों अमृत का झरना बह चला हो। सब ओर शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो जाता है और जनता के मन के कण-कण में दैवी भावनाओं का मधुर स्वर झंकृत हो उठता है। महान् आत्माओं की वाणी अन्त-जंगत की पवित्रता का उज्ज्वल प्रतीक होती है। इस बात को ध्यान में रखकर एक आचार्य कहता है—'सहस्रेषु च पण्डितः; वक्ता शतसहस्रेषु।' अर्थात् हजार में एक पण्डित होता है, और लाख में कहीं एक वक्ता मिलता है। वक्ता; और वह भी योग्य वक्ता होना, वस्तुतः कुछ साधारण बात नहीं है।

श्रद्धेय जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज अपने युग के एक महान् विशिष्ट प्रवक्ता थे। आपकी वाणी में सुधारस छल-कता था। जिसने भी एक बार आपका प्रवचन सुना, वह फिर कभी भूला नहीं। आप अपने श्रोताओं को मंत्र मुग्ध से कर देते थे। राज महलों से लेकर झोंपड़ियो तक में आपकी वाणी ने वह स्थान पाया कि जनता आश्चर्य-चकित हो उठी। आपकी वाणी

में वह जादू था कि बच्चा, बूढ़े, क्या बालक, क्या तरुण, क्या पण्डित, क्या साधारण अबोध-जन सभी पर अपना प्रभाव डालता था और उपस्थित जन समूह को एक बार तो सद्भावना की पवित्र तरंगों में दूर तक बहा ही ले जाता था। आप जहाँ भी जाते वहीं, आपके उपदेशो के प्रभाव से जनता में जागृति की एक नई लहर, एक नई चहल पहल पैदा कर देते थे।

प्रस्तुत 'दिवाकर दिव्य ज्योति' नामक पुस्तक जैन दिवाकरजी के उन्हीं प्रभावशाली प्रवचनों का एक सुन्दर संग्रह है। पं० मुनि श्री प्यारचन्द्रजी महाराज की गुरुभक्ति का यह मधुर फल, जनता की आध्यात्मिक भूख को शान्त करने में बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। मैं मुनि श्री प्यारचन्द्रजी को इसके लिए धन्यवाद दूंगा कि उन्होंने श्री दिवाकरजी की श्रोतवृन्द पर बरसती हुई वचन रूप दिव्य किरणों को लेखबद्ध कराया, जिससे सर्व साधारण जनता युग युगान्तर तक प्रकाश प्राप्त करती रहेगी।

श्री दिवाकरजी महाराज की व्याख्यान शैली सहज, सरल और सुबोध है। वे बहुत गहराई में न उतर कर, जनता के हृदय को युगानुकूल स्पर्श करते हुए चलते हैं। उनके व्याख्यानों का मूलाधार जनता में नैतिक भावनाओं को उद्दीप्त करना है। वे सीधी सादी भाषा में एक छोटी सी बात इस ढंग से कह जाते हैं, जो कुछ देर तक श्रोता या पाठक के मन में गूंजती रहती है। प्रस्तुत संग्रह में इस शैली का चमत्कार पाठकों को यत्र तत्र सर्वत्र मिलेगा। मैं आशा करता हूँ, जैन अजैन सभी धर्म बन्धु इस समयोपयोगी सुन्दर ज्योति से, अन्धकार से भरे जीवन में उचित प्रकाश प्राप्त करेंगे।

—उपाध्याय अमर मुनि

सदनगंज
ता. १-१२-५७

प्रकाशकीय-निवेदन

प्रातःस्मरणीय जैन दिवाकर गुरुदेव श्री चौथमलजी महाराज "प्रसिद्ध वक्ता" के नाम से प्रसिद्ध थे। उनके व्याख्यान अत्यन्त रोचक, सरस, सरल और नैतिक एवं धार्मिक उपदेशों से परिपूर्ण होते थे। लाखों श्रोताओं ने उनकी पवित्र वाणी सुनकर अपना जीवन कृतार्थ किया है। खेद है तारीख १७-१२-५१ को कोटा नगर में गुरुदेव स्वर्ग सिधार गये! हमारे लिए यह बड़े से बड़े दुर्भाग्य की बात थी। गुरुदेव के कतिपय स्थानों के व्याख्यान संकेत लिपि द्वारा लिपि बद्ध करा लिये गये थे। उन्हीं व्याख्यानों को सम्पादित करवा कर आज "दिवाकर-दिव्य ज्योति" के द्वितीय संस्करण के रूप में हम पाठकों के समक्ष उपस्थित कर रहे हैं।

"दिवाकर दिव्य ज्योति" का यह दूसरा प्रकाश है। गुरुदेव की यही एक स्मृति अवशेष रह गई है जिसके सहारे हम अपने जीवन को उन्नत और पवित्र बना सकते हैं। अतएव पूर्ण विश्वास है कि पाठक दिवाकर दिव्य ज्योति को उसी भाव से अपनायेंगे, जिस भाव से उनके व्याख्यानों को अपनाते थे।

इन व्याख्यानों का सम्पादन पण्डित श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल सम्पादन कला विशारद ने किया है। सम्पादित होने के पश्चात्

साहित्य रत्न विद्वद्वर मुनि श्री प्यारचन्दजी महा० ने इनका आद्योपान्त सिंहावलोकन और आवश्यक संशोधन भी किये हैं। मुनि श्री जैन दिवाकरजी महाराज के प्रधान शिष्य हैं, और प्रवचनों के रूप में उनकी स्मृति को बनाये रखने के लिए प्रयत्न-शील हैं। वास्तव में आपकी गुरु भक्ति इस युग में एक सुन्दर एवं आदर्श उदाहरण है जो प्रत्येक के लिए अनुकरणीय है। मुनि श्री ने तथा पं० वर्य मुनि श्री कस्तूरचन्दजी म०, शास्त्रज्ञ पं० मुनि श्री सहस्रमलजी महा०, प्रसिद्ध वक्ता पं० मुनि श्री रामलालजी म०, पं० रत्न मुनि श्री प्रतापमलजी म०, पं० मुनिश्री हीरालालजी म०, सा० रत्न मुनि श्री मगनलालजी म०, मनोहर व्या० मुनि श्री चम्पालालजी म०, सा० रत्न मुनि श्री केवलचन्दजी म०, सा. रत्न मुनि श्री मोहनलालजी म०, व्या० मुनि श्री हुक्मीचन्दजी म० तपस्वी विजय राजजी म०, व्या० मुनि श्री वर्धमानजी म०, सेवाभावी मुनि श्री मन्नालालजी म०, प्रभाकर व्या० मुनि श्री चन्दनमलजी म०, सा० विशारद मुनि श्री विमलकुमारजी म० धर्म भूषण मुनि श्री मूलचन्दजी महा०, सा० रत्न अवधानी श्री अशोक मुनिजी म० आदि मुनिराजों ने इसमें संशोधन सिंहावलोकन प्रेरणा और उचित मार्ग दर्शन किया है। उसके लिए अतीव आभारी हैं। जिन उदार श्रीमंतो की आर्थिक सहायता से सम्पादन-प्रकाशन का कार्य आरंभ और अग्रसर हो सका है, उनकी नामावली पृथक् दी जा रही है। उनके प्रति भी हम अत्यन्त आभारी है।

यहाँ इतना निवेदन कर देना अनुचित न होगा कि गुरुदेव के व्याख्यानों के प्रकाशन का कार्य विराट है और एक सीरीज के रूप में वह चालू है। अतएव ज्योति की एक २ प्रति अपने वाचन में रखकर गुरु-भक्ति का परिचय तथा इस महान् कार्य मे प्रेरक बनकर

अनुष्ठान में आप सहायक होंगे। गुरुदेव की शिक्षाएँ जीवन को ऊँचा उठाने वाली और सारगर्भित हैं। आशा है पाठक इनसे पूर्ण लाभ उठाएँगे और इनका अधिक से अधिक प्रचार करने में सहायक होंगे। प्रकाशन में अगर किसी प्रकार की त्रुटि रह गई हो और सावधानी रखने पर भी कोई बात आगम से न्यूनाधिक हो गई हो तो विद्वज्जन सूचना करने की कृपा करें ताकि अगले संस्करण में संशोधन किया जा सके।

निवेदक:—

देवराज सुराणा, अध्यक्ष,
अभयराज नाहर, मन्त्री,
श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय
ब्यावर (राजस्थान)

प्रस्तावना

जिन महापुरुष के प्रवचनों के संग्रह में से यह द्वितीय पुष्प पाठकों के कर कमलों में पहुँच रहा है, उनके सम्बन्ध मे यहाँ कुछ अधिक लिखना न तो आवश्यक है और न प्रासंगिक ही। उन्हें स्वर्गासीन हुए अभी कुछ हो वर्ष ही हुए है। अतएव शायद ही कोई ऐसा पाठक होगा जो उन महापुरुष से परिचित न हो। पचास वर्ष से भी अधिक की अपनी संयम-साधना के दीर्घ काल में वे भारत के विभिन्न प्रदेशो में विचरे थे और अपने अद्भुत प्रभाव से जनसमाज को उन्होंने आकर्षित किया था। उनका व्यक्तित्व अनूठा था, उनके नेत्रों से करुणा का असाधारण प्रवाह बहता था, उनके हृदय में नवनीत की कोमलता थी, उनकी वाणी में सुधा की मधुरता थी, उनके समग्र जीवन व्यवहार में सरलता, संयतता और भद्रता का प्रशस्त सम्मिश्रण था। इन सब विशेषताओं के कारण कोटि-कोटि जनता के वे श्रद्धाभाजन बन सके थे। 'गुरुदेव' और 'जैन दिवाकरजी' के नाम से वे सर्वत्र प्रख्यात हुए। क्या बालक, क्या वृद्ध, क्या राजा और क्या प्रजा, क्या नर और क्या नारी, सभी के लिए उनकी जीवनी आज आदर्श है। आज उनके पावन व्यक्तित्व की स्मृति मात्र से हृदय अधीर हो उठता है।

गुरुदेव प्राय: प्रतिदिन प्रातःकाल प्रवचन किया करते थे। प्रवचन करने की उनकी शैली अद्वितीय थी। उनके कोमल कण्ठ

में न जाने क्या जादू भरा था कि जो एक दिन भी उनके प्रवचन को सुन लेता, वही उनका पुजारी बन जाता था! मगर पुजापे की उन्हें चाह नहीं थी। कभी माँगते तो बस एक ही चीज माँगते थे—दान करो, शील पालो, तप करो, सुन्दर भावना रखो! यही उनका चढ़ावा था। इस प्रकार जैन दिवाकरजी ने लेना नहीं, सिर्फ देना ही देना सीखा था। वे जब तक जीवित रहे, दुनिया को अनमोल भेंट, अपने प्रवचनों द्वारा भी और अपने जीवन-व्यवहार द्वारा भी, देते ही रहे।

जैन दिवाकरजी संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी और फारसी भाषाओं के विद्वान् थे। उनका शास्त्रीय ज्ञान काफी गहरा था। दूसरे साहित्य का अध्ययन भी विशाल था। फिर भी उनके प्रवचनों की भाषा बहुत सरल होती थी इतनी सरल कि अक्षरज्ञान से शून्य देहाती जनता भी उसे बिना किसी दिक्कत के सहज ही समझ लेती थी। भाषा की सरलता के साथ शैली की उत्तमता का बड़ा सुन्दर समन्वय हुआ था। वे जो कहते, बड़े मनोरंजक ढंग से कहते थे। अपने श्रोताओं को जिस किसी भावना के रस में डुबाना चाहते, उसी में सफलता के साथ डुबा देते थे। उनका भाषण सचमुच बड़ा प्रभावशाली होता था।

गुरुदेव के उपदेशों से प्रभावित होकर सहस्रों नर-नारियों ने अपने जीवन का सुधार किया है। राजस्थान के राजाओं, जागीरदारों और जमींदारों में उनका मान उतना ही था, जितना लगभग जैनसमाज में। यही कारण है कि गुरुदेव के प्रवचनों से प्रभावित होकर बहुतों ने जीवहिंसा का त्याग किया, शिकार खेलना छोड़ा, शराब पीना छोड़ा, मांसभक्षण छोड़ा, बहुतो ने बीड़ी-

सिगरेट आदि मादक द्रव्यों का परित्याग किया। इससे कोई यह न समझे कि जैन-दिवाकरजी उच्च वर्ग के ही गुरुदेव थे। नहीं, तेली, धोबी, कुम्भार, रेगर, मोची आदि कौमों में भी उनका वैसा ही मान था। इन कौमों से सैकड़ों आदमियों ने गुरुदेव की संगति करके अपनी आदतों को सुधार कर अपने जीवन को उन्नत बनाया है। कहाँ तक कहें, वर्ण, जाति आदि के भेदभाव के बिना उन्होंने प्राणी मात्र पर असीम अनुकम्पा बरसाई है। उनके पावन प्रवचनों को सुनकर अगणित मनुष्यों ने मनुष्यता पाकर अपने को धन्य बनाया है।

गुरुदेव के प्रवचनों को संकेत लिपि में श्री धर्मपालजी मेहता द्वारा लिपिबद्ध कर लिया गया था। वही प्रवचन जैन तत्त्व मर्मज्ञ संपादन कला विशारद पंडित श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल द्वारा सम्पादित होकर 'दिवाकर दिव्य ज्योति' नामक सीरीज के रूप में प्रकाशित हो रहे हैं।

प्रत्येक प्रवचन आदिनाथ भगवान् ऋषभदेव की स्तुति से प्रारम्भ होता है। गुरुदेव भक्तामर स्तोत्र के एक पद्य से अपना प्रवचन प्रारम्भ करते थे। उसी पर विवेचन करते हुए अपने अभीष्ट विषय पर जा पहुँचते थे और अन्त में प्रायः किसी चरित पर व्याख्यान करते थे। चरित का व्याख्यान भी उपदेशों से परिपूर्ण होता था। बीच-बीच में सुन्दर उपदेश फरमाते हुए चरित-व्याख्यान को वे अग्रसर किया करते थे। उनकी उसी मौलिक शैली को सुरक्षित रखते हुए व्याख्यानों का सम्पादन किया गया है।

गुरुदेव वक्ता होने के साथ कवि भी थे। उनके द्वारा विरचित पद्य-साहित्य काफी विशाल है। अकसर वे अपने प्रवचनों में

अपने ही रचे हुए पद्यों को सुनाया करते थे। इससे श्रोताओं का मन ऊबता नहीं था और वे अन्त तक एक रस होकर मुग्धभाव से प्रवचनों का श्रवण करते रहते थे। आवश्यकतानुसार संस्कृत, प्राकृत और उर्दू आदि भाषाओं के पद्यों का भी समावेश होता था, जैसा कि पाठक इन प्रवचनों में पाएँगे।

जैन दिवाकरजी के प्रवचन सार्वजनिक होते थे। बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय, ही उनकी समस्त प्रवृत्तियों का मूल आधार था। अर्थात् अधिक से अधिक जनता की भलाई के लिए ही वे प्रयत्नशील रहते थे। जनसमाज का हित सदाचार से ही हो सकता है, अतएव सूक्ष्म तत्त्व विवेचना की अपेक्षा उनके प्रवचनों में सदाचार के प्रति प्रेरणा ही अधिक दृष्टिगोचर होती है। ज्ञान के साथ जीवन को ऊंचा उठाने वाले आचार की ओर ही वे अधिक ध्यान आकर्षित किया करते थे। संभवतः उनकी सूक्ष्म दृष्टि से भारतीय जनता की आचार-हीनता–जो दिनोंदिन बढ़ती चली जाती है–छिपी नहीं रह गई थी और वे इस त्रुटि को दूर करना चाहते थे।

दिवाकरजी की सुधास्राविणी वाणी आज भी हमारे कर्ण-कुहारों में गूंज सी रही है। हमें वर्षों तक उनकी वाणी को श्रवण करने का सौभाग्य मिला है। परन्तु जिन्हें उनकी वाणी सुनने का अवसर नहीं मिला है उनके तथा भविष्य में होने वाली प्रजा के हित के लिए उनके प्रवचनों का सुरक्षित रह जाना अतीव उपयोगी है। उनकी सुरक्षा में जिन-जिन महानुभावों ने योग प्रदान किया है; वे हमारे धन्यवाद के पात्र हैं और भावीप्रजा के आशीर्वाद के भी पात्र बनेंगे।

व्यक्ति का असली व्यक्तित्व उसके आचार-विचार में ही है। महान् से महान् व्यक्ति का शारीरिक ढांचा तो वैसा होता है

जैसा साधारण से साधारण आदमी का। फिर भी दोनों में जो अन्तर है, वह उनके आचार विचार का ही है। इस दृष्टिकोण से देखा जाय तो कहा जायगा कि गुरुदेव का असली व्यक्तित्व, उनका अन्तर्जीवन, उनके उच्च और पवित्र आचार-विचार में ही निहित था। दुर्भाग्य से आज हम उनके आचार को नहीं देख सकते, मगर सौभाग्य से उनके विचार आज भी इन प्रवचनों के रूप में हमें सुलभ हो रहे हैं। अतएव कहना चाहिए कि इन प्रवचनों के रूप मे आज भी गुरुदेव जीवित हैं और जब तक पृथ्वीतल पर यह प्रवचन मौजूद रहेंगे, गुरुदेव भी जीवित रहेंगे। प्रवचनों के शब्द-शब्द मे गुरुदेव की आत्मा गूंज रही है। इनके अक्षर-अक्षर मे गुरुदेव समाये हुए है। यह सारे प्रवचन उनके अन्तर्जीवन के प्रतिबिम्ब हैं। यह उनके सच्चे स्मारक ही हैं। इनके प्रचार से बढ़कर गुरुदेव के प्रति अपनी श्रद्धा निवेदन करने का और कोई तरीका नहीं हो सकता। गुरुदेव की दिवंगत आत्मा को यह जान कर अवश्य सन्तोष होगा कि उनका आरम्भ किया हुआ कार्य आज समाप्त नहीं हो गया है। वे अन्तिम समय तक जो प्रचार करते रहे, वह आज भी जारी है।

अन्त में हम उन सब को, जो गुरुदेव को 'अक्षर' रूप मे जीवित रखने का प्रयास कर रहे हैं, अपनी मर्यादा मे रहते हुए धन्यवाद देना चाहते हैं और आशा करते हैं कि गुरुदेव के भक्तगण विशेष रूप से दिलचस्पी लेकर गुरुदेव के उपदेशों को घर घर मे पहुँचाने का प्रयत्न करेंगे, जिससे गुरुदेव का उपकारकार्य यथावत् जारी रह सके और जगत का कल्याण हो।

साहित्य रत्न केवलमुनि
साहित्य रत्न मोहनमुनि



— विषयानुक्रमणिका —







ज्ञान की महिमा

स्तुतिः—

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र ।
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य ॥
यादृक् प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा ।
तादृक्कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं—हे सर्वज्ञ सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान् पुरुषोत्तम, भगवन्! आपकी स्तुति कहाँ तक की जाय? भगवन्, आपके गुण कहां तक गाये जाएँ? धर्म का उपदेश देने की विधि जैसी आपकी है, वैसी दूसरे की नहीं। अंधकार का नाश करने में सूर्य जो काम देता है, वह तारे नहीं दे सकते। सूर्य के मुकाबले में ग्रह, नक्षत्र

और तारे कोई चीज नहीं हैं। सूर्य रात को दिन बना देता है। इसी प्रकार भगवान् ऋषभदेव ज्ञान में इतने ऊंचे हैं कि उनके मुकाबिले कोई दूसरा नहीं है। ऐसे भगवान् ऋषभदेवजी को मेरा बार बार नमस्कार हो !

भाइयों ! संसार में जो अनन्तानन्त जीव हैं, उन्हें दो हिस्सों में बांटा जा सकता है-(१) ज्ञानी और (२) अज्ञानी।

आप कह सकते हैं कि चेतना-उपयोग आत्मा का स्वरूप है। चेतना ज्ञान को कहते हैं। ऐसी हालत मे कोई भी जीव अज्ञानी कैसे हो सकता है ? आत्मा का स्वरूप ज्ञान जिसमें नहीं पाया जायगा, वह जीव ही कैसे कहलायगा ? स्वरूप कभी स्वरूपवान् वस्तु से अलग नहीं हो सकता। अतएव ज्ञानी कभी जीव से अलग नहीं हो सकता। ऐसी हालत में आपने जीवों को ज्ञानी और अज्ञानी इन दो हिस्सों मे क्यों बांटा ? कदाचित् यह मान लिया जाय कि कोई जीव अज्ञानी भी होता है तो फिर वह जीव ही कैसे रहेगा ? वह तो ईंट, घट, कपड़े आदि की तरह अजीव ही होगा। इस तरह विचार करने पर कोई भी जीव अज्ञानी नहीं ठहरता। जो जीव है वह ज्ञानवान् है और जो ज्ञानवान् है वह जीव है। फिर किसी भी जीव को अज्ञानी कैसे कहा जा सकता है।

यह शंका सही है। ज्ञान आत्मा का स्वरूप है और वास्तव में कभी किसी भी अवस्था में आत्मा पूर्ण रूप से ज्ञानहीन नहीं होता। निगोद की अवस्था जीव की सब से अधिक निकृष्ट अवस्था समझी जाती है। उससे ज्यादा गिरी हुई और कोई हालत

नहीं है। किन्तु उस अवस्था में भी मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का किंचित् क्षयोपशम मौजूद रहता है। इस दृष्टि से विचार किया जाय तो कोई भी जीव, किसी भी स्थिति में, एक क्षण के लिए भी उपयोग शून्य नहीं हो सकता। फिर भी हमने जीवों के जो दो विभाग किये हैं, वे उपयोग (ज्ञान) के सद्भाव और अभाव को लेकर नहीं किये हैं। वहां ज्ञान का अर्थ है सम्यग्ज्ञान और अज्ञान का मतलब है मिथ्याज्ञान। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जीव दो प्रकार के हैं-(१) सम्यग्ज्ञानी और (२) मिथ्याज्ञानी।

अब यह प्रश्न किया जा सकता है कि इस भेद का कारण क्या है ? कोई जीव सम्यग्ज्ञानी और कोई मिथ्याज्ञानी क्यों होता है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि ज्ञानावरण कर्म के उदय से ज्ञान का अभाव होता है, और उसके क्षयोपशम से अथवा क्षय से ज्ञान होता है, सभी संसारी जीवों को ज्ञानावरण का कुछ न कुछ क्षयोपशम होता ही है, मगर जो जीव मिथ्यात्व से युक्त हैं उनका ज्ञान मिथ्याज्ञान रूप परिणत हो जाता है। मतलब यह है कि मिथ्यात्व मोहनीय कर्म ज्ञान को कुज्ञान अर्थात् अज्ञान बना देता है। इसके विपरीत जो जीव सम्यक्त्व से विभूषित हैं, उनका ज्ञान सम्यग्ज्ञान होता है। इस तरह मिथ्यात्व के कारण कोई जीव अज्ञानी होता है। यही दो भेदों का कारण है।

ज्ञानी जीवों के भी दो भेद हैं-एक अल्पज्ञानी और दूसरे पूर्ण ज्ञानी। जो जीव मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, और मनः-पर्यायज्ञान के धारक हैं, वे अल्पज्ञानी कहलाते है। अल्पज्ञानियों में कोई कोई जीव केवल दो मति और श्रुत-ज्ञान के धारक होते हैं, किसी को अवधिज्ञान या मनःपर्यायज्ञान अथवा दोनों भी होते हैं।

इस प्रकार चाहे कोई दो ज्ञान का धारक हो, चाहे तीन ज्ञान का धारक हो, चाहे चार ज्ञान का धारक हो, वह अल्पज्ञानी ही कहलाता है। और जो केवल ज्ञानी हैं वे पूर्ण ज्ञानी कहलाते हैं।

अज्ञानी जीवों को तमाम बातें विपरीत मालूम होती हैं। उन्हें सच्ची बातें झूठी और झूठी बातें सच्ची जान पड़ती हैं। वे सच्चे साधु को देखें तो कहें कि ढोंगी है और ढोंगी दीख पड़े तो कहें कि सच्चा साधु है। उनकी निगाह में, जो परमात्मा है वह परमात्मा नहीं है, और जो परमात्मा नहीं है, वह परमात्मा है। वे जीव को अजीव समझते हैं और अजीव को जीव समझते हैं। उनके खयाल से धर्म, अधर्म है और अधर्म धर्म है। जो आत्मा तपस्या करके मोक्ष में चली गई है, वह मोक्ष में नहीं गई है और जो मोक्ष में नहीं गई है वह मोक्ष मे चली गई है। अज्ञानी मोक्ष के मार्ग को संसार का मार्ग समझता है और संसार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग समझता है।

जिसकी आंखों पर जिस रंग का चश्मा चढ़ जाता है उसे सब चीजें वैसी ही नजर आती है। कई कांच ऐसे होते है कि उनमें वस्त्र धारण किया हुआ आदमी भी नग्न दिखाई देता है। अज्ञानी जीव की दृष्टि पर मिथ्यात्व का उलटा चश्मा चढ़ा होता है, अतएव वह सभी पदार्थों को उलटे रूप में ही देखता है। वह यही कहता है कि भगवान्, स्वर्ग, नरक इत्यादि सब झूठे हैं। इन सबका अस्तित्व बतलाने वाले धर्मशास्त्र भी मिथ्या हैं! उनमें कोई सचाई नहीं है! उसकी निगाह में बस वही सच्चा है और सब झूठे हैं।

अज्ञानी जीव अज्ञान की दशा में बोल रहा है। उसकी

आंखों पर अज्ञान का पर्दा पड़ा हुआ है। वह समझता है कि संसार में मैं ही समझदार हूँ। किन्तु वास्तव में ऐसे लोग मूर्ख हैं, अज्ञान हैं, अविवेकी हैं। वे संसार के अन्य पदार्थों को क्या समझेंगे, अपने आपको ही नहीं समझते। वे आत्मा का निषेध करते हैं, सो अपना खुद का निषेध करते है। विचार करना चाहिए कि जो व्यक्ति स्वयं अपने अस्तित्व को भी स्वीकार नहीं करता, वह दूसरों के विषय मे सही जानकारी किस प्रकार रख सकता है ?

अज्ञानी जीव जब तक अज्ञान अवस्था में है, तब तक मोक्ष नहीं पा सकते। जिनकी समझ ही उलटी हो रही है, वे मोक्ष कैसे प्राप्त करेंगे ? प्रथम तो वे मोक्ष होना ही नहीं मानते और यदि मान भी लें तो उसका स्वरूप ठीक-ठीक नहीं जानते। मोक्ष के कारणों को उलटा जानते है, वे अपनी समझ के अनुसार ही मोक्ष के लिए प्रयत्न करते हैं मगर समझ उलटी होने से मोक्ष के बदले में उन्हें संसार की ही प्राप्ति होती है। वे दूसरों की कही हुई सच्ची बात पर भरोसा नहीं करते और अपनी सूझी हुई झूठी बात पर विश्वास करते हैं। इस कारण वे चौरासी के चक्कर में ही पड़े रहते हैं। वे स्वयं दुःखों के पात्र बनते हैं और उलटा उपदेश दे-देकर दूसरों को भी अपने ही समान दुःखों का पात्र बनाते हैं।

अज्ञानी जीव में एक प्रकार की वक्रता और अहंकार की वृत्ति होती है। उसमें विनय नहीं, विवेक नहीं, कृतज्ञता भी नहीं होती। उसे कोई बात समझ में न आती हो और दूसरे से पूछ कर समझनी पड़े तो वह पूछता है, समझ लेता है और फिर

अन्त में कह देता है कि यह बात तो मैं भी जानता हूँ। अल्पज्ञानी सरल होता है और किसी से कोई बात पूछता है और समझ लेता है। समझ लेने पर कहता है—'यह बात मुझे मालूम नहीं थी, आपने कहा सो ठीक है।' और वह बताने वाले के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करता है। मगर अज्ञानी का हाल तो यह है 'पढ्या न अक्षर एक टांग सब ही में राखे।' उसे आता जाता कुछ नहीं, मगर समझता है अपने आपको सर्ववेत्ता !

सर्वज्ञानी ने फरमाया है.—आगमे तिविहे पएणत्ते, तंजहा-सुत्तागमे, अत्थागमे, तदुभयागमे । एवं श्रीज्ञान के विषे जो अतिचार लगा हो तो आलोऊँ:—जं वाइद्धं, वच्चामेलियं, हीणक्खरं, अच्चक्खरं, पयहीणं, विणयहीणं, जोगहीणं, घोसहीणं ।

जो जानते हैं वही इन अतिचारों को टालते हैं। शास्त्र के पाठ का उच्चारण करने में जरा-सी गलती हो जाय, काना-मात्रा कम बोले या ज्यादा बोले तो उसके लिए पश्चात्ताप करना पड़ता है। न तो एक भी अक्षर कम बोलना चाहिये न ज्यादा बोलना चाहिए। पद के पद उड़ा देना तो और भी बड़ी गलती है। शास्त्र का अविनय भी नहीं करना चाहिए । इसके अतिरिक्त जो ज्ञान के योग्य हो उसी को ज्ञान देना चाहिये और जो जिस ज्ञान के लिए अयोग्य हो उसे वह ज्ञान नहीं देना चाहिए। अच्छी से अच्छी वस्तु का अगर दुरुपयोग किया जाता है तो उससे हानि ही होती है। तलवार से आत्म रक्षा होती है, मगर बालक के हाथ में वह दे दी जाय तो उससे हानि ही होती है। इसी प्रकार योग्य पात्र को ज्ञान दिया जाता है तो वह उससे अपना और दूसरों का कल्याण करता है। यदि वही ज्ञान अयोग्य को-अपात्र को,

दे दिया जाता है तो वह उसका दुरुपयोग करता है। आप डूबता है और दूसरो को भी डुबाता है। वह ज्ञान की आशातना करता है। ज्ञान की आराधना करने से जल्दी केवल ज्ञान होता है और ज्ञान की विराधना करने से केवल ज्ञान नहीं होता।

आप पूछ सकते हैं कि अज्ञानी और अल्पज्ञानी के बीच कोई स्थूल अन्तर तो नजर नही आता; फिर दोनों में भेद कैसे किया जाय ? किन लक्षणों से समझा जाय कि यह अज्ञानी है और यह अल्पज्ञानी है ? मगर अज्ञानी को पहचान लेना कोई कठिन बात नहीं है। मान लीजिए, कहीं शास्त्र का पाठ हो रहा है। किसी ने किसी से कहा—'चलो भाई, अपन भी शास्त्र सुन आवें। इस प्रकार प्रेरणा करने पर यदि वह कहता है कि-अजी क्या रक्खा है शास्त्र में ! यह भी कुछ लोगों ने अपना धंधा बना रक्खा है। शास्त्र सुन लेने से कौन-सा आत्मा का बड़ा कल्याण हो जायगा ! तो समझ लेना चाहिये कि अज्ञानी है इसके अतिरिक्त अज्ञानी के और भी लक्षण हैं। जैसे—ज्ञान का प्रचार करने वाले विद्यालय को तुड़वा देना। कोई उदारहृदय दाता अच्छी पुस्तकों का दान करता हो तो कहना कि—अजी, क्यों वृथा धन नष्ट करते हो ? इन पोथियों में क्या पड़ा है ! आदि। इस प्रकार ज्ञान के प्रकार में विघ्न डालने से नये ज्ञानावरणीय कर्म का बंध भी होता है। कोई धर्मशास्त्र आदि सिखाने के लिए पाठशाला, विद्यालय आदि खोलने का विचार करे तो अज्ञानी जीव यह सोचता है कि मुझे भी इसमें चन्दा देना पड़ेगा ! ऐसा सोच कर वह कहता है—अरे भाई ! सरकार ने मदरसे खोल ही रक्खे हैं; फिर अपनी अलग खिचड़ी पकाने से क्या लाभ है ? ऐसा कहने

वाला भी ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता है। विद्या पढ़ने से जीवन सुधरता है। ज्ञान से ही विवेक की उत्पत्ति होती है। जहाँ ज्ञान है वहीं विवेक है और जहाँ विवेक है वहीं धर्म है। ज्ञान के अभाव में विवेक नहीं रह सकता और विवेक के अभाव में धर्म नहीं टिक सकता। अतएव ज्ञान के बिना धर्म की भली-भांति आराधना होना सम्भव नहीं है। पर अज्ञानी जीव इस सत्य को समझता नही है। इस कारण वह ज्ञान की आसातना करता है और ज्ञानी की भी आसतना करता है। ज्ञानी जनो के प्रति वह अकारण ही द्वेष रखता है। मौके-बे-मौके ज्ञानियो की निन्दा करता रहता है। ऐसे दुष्कृत्य करके अज्ञानी जीव घोर चीकने कर्म बाँधता है।

अज्ञानी की अपेक्षा अल्पज्ञानी श्रेष्ठ है। अल्पज्ञानी भले ही पूर्ण नहीं हैं, मगर उनमें जितना भी ज्ञान होता है वह सम्यग्ज्ञान होता है। सम्यग्ज्ञान होने के कारण वह अपने कल्याण के मार्ग में अज्ञानी की तरह कांटे नहीं बिखेरता। वह सही राह पर चलता है और चलते चलते, अपने जीवन का क्रमशः अधिकाधिक विकास करते-करते बारहवी सीढ़ी (क्षीण मोहनीय नामक गुण स्थान) तक जा पहुँचता है। उसके बाद वह पूर्णज्ञानी होकर तेरहवीं और चौदहवीं सीढ़ी को पार करके शाश्वत सिद्धि का वरण कर लेता है।

इस संसार में अनन्तानन्त जीव अज्ञानी हैं। इनसे थोड़े अल्पज्ञानी है और पूर्णज्ञानी तो बहुत थोड़े हैं। अज्ञानी जीव सारे जगत् में भरे पड़े हैं। पृथ्वी, पानी, अग्नि, वनस्पति और वायु काय के जीव अज्ञानी है और द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय

और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव भी अज्ञानी है। संज्ञी पंचेन्द्रियों में भी अधिकांश अज्ञानी हैं। इस प्रकार अल्पज्ञानी और सर्वज्ञानी थोड़े ही पाये जाते हैं। यह बात तो आप सभी जानते हैं कि संसार में कंकर-पत्थर बहुत होते है और हीरा-मोती कम होते हैं। गोबर जितना मिल सकता है कस्तूरी उतनी नहीं मिल सकती। कस्तूरी तो प्रयत्न करने पर भी दो-चार सेर मिल सकेगी मगर गोबर के पहाड़ चाहे जहाँ खड़े मिल सकते हैं। इसी तरह अज्ञानी जीव बहुत बड़ी संख्या मे, जहाँ चाहो वहीं मिल जाएँगे मगर ज्ञानी बहुत कम हैं। जहां देखो वहीं धूल है, पत्थर हैं, कचरा है।

अज्ञानी जीव अपनी आत्मा के स्वरूप को नहीं समझता जब वह अपने स्वरूप को ही नहीं समझता तो आत्मा के श्रेयस् के लिए क्या करेगा? वह अगर प्रवृत्ति करता भी है तो मिथ्या-ज्ञान के कारण उलटी प्रवृत्ति ही करता है और उसके फल स्वरूप संसार में भटकता रहता है। अज्ञानी जीव कभी मोक्ष गया नहीं है और कभी मोक्ष जायगा भी नहीं। ज्ञान के विना मोक्ष नहीं होता। दशवैकालिकसूत्र में मोक्ष प्राप्ति का क्रम बहुत सुन्दर रूप से बतलाया है। कहा है:—

पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्वसंजए।
अन्नाणी किं काही, किं वा नाहीइ छेयपावगं?॥

अर्थात्—सर्व प्रथम ज्ञान की और फिर चारित्र की आरा-धना की जाती है। जिसे ज्ञान ही नहीं है, वह बेचारा अज्ञानी

क्या कर सकता है! वह अपने हिताहित को भी कैसे पहचान सकता है?

इसके बाद शास्त्रकार कहते हैं:—

सुच्चा जाणइ कल्लाणं, सुच्चा जाणइ पावगं।
उभयं पि जाणइ सुच्चा, जं छेअं तं समायरे ॥

अर्थात्—देव या गुरु के मुख से सुन कर कल्याण का पता चलता है और सुन कर ही अकल्याण का पता चलता है। कल्याण और अकल्याण दोनों का ज्ञान भी सुनने से ही होता है। कल्याण और अकल्याण का स्वरूप समझ कर कल्याण में प्रवृत्ति करनी चाहिए।

इसके पश्चात् इसी शास्त्र में बतलाया है कि जो जीव, जीव और अजीव तत्त्व को नहीं समझता, वह संयम को भी नहीं समझ सकता। जीव-अजीव को बिना समझे संयम का पालन करने के लिए लोग उलटे असंयम में पड़ जाते हैं। अज्ञान के प्रताप से ही कई लोग कन्द-मूल आदि सचित्त का भक्षण करते हैं, अग्निकाय का घोर आरंभ करते हैं और शुचिता के लिये सचित्त जल का उपयोग करते हुए धर्म मानते हैं। यह सब जीव और अजीव को न समझने का ही प्रताप है।

जो जीव और अजीव का भेद नहीं जानता वह सब जीवों की नाना प्रकार की गतियों को भी नहीं जान सकता। जीव-अजीव को पहचानने वाला ही नाना गतियों और योनियों को जान पाता है। जब गतियों का ज्ञान हो जाता है तो स्वयं जिज्ञासा

उत्पन्न होती है कि नाना गतियों का कारण क्या है? कोई जीव देवगति मे स्वर्ग के लोकोत्तर सुखों को भोगता है, दिव्य ऋद्धि और वैभव उसके चरणो में लोटते हैं, वह इच्छा के अनुसार चाहे जैसा रूप बना सकते हैं और संसार के सभी सुखों के भोक्ता बनते हैं। इनसे विपरीत कोई-कोई जीव नरक को भीषण यंत्रणाएं भोगते है। कोई-कोई तिर्यञ्च गति में वध, बंधन आदि की दुस्सह वेदनाएं भुगत रहे हैं। आखिर इस भेद का कारण क्या है? इस प्रकार की जिज्ञासा जब मनुष्य के हृदय मे उत्पन्न होती है, तब उसे पुण्य और पाप का पता लगता है। तब वह सोचता है कि पुण्य के उदय से संसार के सुखों की प्राप्ति होती है और पाप के उदय से दुःखों का वेदन करना पड़ता है। अगर पुण्य और पाप न होते तो संसार में दुखो-सुखी, रंक-राजा, रोगी-निरोगी आदि का भेद भी न होता, इस भेद का जो कारण है वही पुण्यतत्त्व और पापतत्त्व है।

इस प्रकार जीव जब पुण्य, पाप को जान लेता है और यह भी जान लेता है कि पूरी तरह इन दोनों का क्षय हो जाना ही मोक्ष कहलाता है, तब वह मनुष्य संबंधी भोगों से विरक्त हो जाता है और देव संबंधो भोगोपभोगो की भी कामना नही करता। अर्थात् उसका चित्त वैराग्य के रंग में रँग जाता है।

हृदय में जब सच्चा वैराग्य उत्पन्न होता है तो वह राग का परित्याग कर देता है। वह बाह्य संयोगों का (धन-धान्य, महल-मकान, स्त्री-पुत्र आदि का) त्याग करता है और अभ्यन्तर संयोगों का (क्रोध आदि विकार भावों का) भी त्याग करता है। संयोगों से हट कर वह संयम धारण कर लेता है। संयम

धारण करके संवर धर्म का स्पर्श करता है। संवर-धर्म के प्रभाव से वह समस्त घातिया कर्मों का क्षय कर डालता है। कर्मों का क्षय होते ही सर्वज्ञ-सर्वदर्शी अवस्था प्राप्त हो जाती है। यह अवस्था प्राप्त होने पर संसार का कोई भी पदार्थ अनजाना नहीं रह सकता। इसके बाद वह आत्मा योगों का निरोध करके शैलेशी अवस्था प्राप्त करके शेष अघातिया कर्मों को भी नष्ट करके सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

शास्त्र के इस वर्णन से स्पष्ट मालूम हो जाता है कि मोक्ष-मार्ग का प्रारम्भ सम्यग्ज्ञान से ही होता है। जैसे मकान का आधार नींव है, उसी प्रकार मुक्ति का मूलाधार सम्यग्ज्ञान है। सम्यग्ज्ञान के अभाव में मोक्ष मार्ग की आराधना कदापि नहीं हो सकती। इस प्रकार शास्त्र में ज्ञान का माहात्म्य बतलाया गया है। अतएव जो मुमुक्षु जन अपनी आत्मा का परम और चरम कल्याण चाहते हैं, उन्हें सर्व प्रथम ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। जिनके ज्ञानावरण का तीव्र उदय है, उन्हें कम से कम ऐसे कामों से तो बचना ही चाहिए, जिनसे ज्ञानावरण कर्म का नया बंध न हो।

मगर अज्ञानी जीव ऐसा विचार नहीं करते। वे स्वयं ज्ञान प्राप्त नहीं करते, दूसरों को प्राप्त नहीं करने देते और यदि कोई करता है तो बाधा डालते हैं। कई लोग तो ऐसे होशियार होते हैं कि न पूछो बात! उन्हें निज की कोई अक्ल नहीं होती और कोई ज्ञान देता है तो कहते हैं—अजी यह कौन-सी नवीन बात है! यह तो हम भी जानते हैं! ऐसे लोग हमेशा अपनी टांग ऊँची ही रखते हैं।

एक नौजवान था। उसकी शादी हुए बहुत दिन नहीं हुए थे। उसके घर में कोई बड़ी-बूढ़ी औरत नहीं थी। नयी बहू घर में अकेली ही थी। नवयुवक ने अपने पड़ौस की बुढ़िया से कह रक्खा था कि मेरी पत्नी घर के काम-काज के बारे में कुछ पूछें तो बतला देना। उसने अपनी पत्नी से भी कह दिया था कि तुम्हें कोई बात मालूम न हो और मालूम करना हो तो पड़ौसिन बुढ़िया से पूछ लिया करो। उसे ही अपनी सासू समझना।

नववधू वास्तव में जानती तो कुछ नहीं थी, मगर अपना पोजीशन सदैव ऊँचा रखती थी। वह एक दिन पड़ौसिन के पास गई और उससे पूड़ियाँ बनाने की विधि पूछी। बुढ़िया ने बड़े प्रेम से, आदि से अन्त तक की समस्त विधि बतला दी। उसकी बतलाई विधि सुनकर बहू ने कहा—'यह तो मैं भी जानती थी!'

बहू ने घर जाकर पूड़ियाँ बनाई। पति ने जीम कर बड़ी तारीफ की।

दूसरे दिन बहू फिर बुढ़िया के पास पहुंची। पूछा—माँजी, 'बिराज' किस प्रकार बनाया जाता है? बुढ़िया ने उत्तर दिया—बहू, पहले शक्कर की चासनी बना लेना। फिर वह चांवलों में डाल देना उसमें घी जरा ठीक ठाक डालना। ऊपर से बादाम पिश्ता, केशर आदि डाल देना। यह तरकीब सुनकर बहूरानी ने कहा—'यह तो मैं भी जानती थी!'

इसी प्रकार कई बार बहू बुढ़िया के पास गई। हर बार वह अन्त में यही कह देती कि—'यह तो मैं भी जानती थी!'

एक दिन बहू बेसन के गट्टों की खिचड़ी बनाने की विधि पूछने गई। बुढ़िया ने सोचा—यह बहू हर बार यही कहती है कि 'यह तो मैं भी जानती थी' तो एक बार इसकी अक्ल का नमूना देखना चाहिये। यह सोच कर बुढ़िया ने खिचड़ी बनाने की सम्पूर्ण विधि बतला कर अन्त मे कहा—बहूजी, मगर एक बात ध्यान में रखना। खिचड़ी स्वादिष्ट बनाना हो तो उसमें एक मुट्ठी रेत मिला देना। बहू यह सुनकर बोली 'यह तो मैं भी जानती थी।'

बुढ़िया मन ही मन मुस्किराई और बोली—ठीक है बहू, तुम बड़ी चतुर हो। तुम्हारी जैसी चतुर बहू लाखों में एक मिलती है। तुमने बचपन में ही सब कुछ सीख रक्खा है!

बहू अपनी तारीफ सुनकर फूली नहीं समाई। उसने सोचा मैंने भी इस बुढ़िया को खूब उल्लू बनाया है! यह सोचती सोचती वह घर आई। बुढ़िया की बतलाई तरकीब से उसने गट्टों की खिचड़ी बनाई और एक मुट्ठी राख भी उसमें डाल दी!

पतिदेव भोजन करने बैठे। बड़े प्रेम के साथ खिचड़ी परोसी गई। परन्तु ज्यों ही कौर मुँह में डाला कि 'हाय थू, हाय थू' की आवाज होने लगी। वह बोला आज यह खिचड़ी ऐसी क्यों बनी है? पत्नी ने पड़ौसिन का नाम ले दिया। कहा मांजी ने एक मुट्ठी राख डालने को कहा था, मैंने एक ही मुट्ठी डाली है!

पति पड़ौसिन के पास गया। पूछा—मांजी! आज राख डालने की विधि कैसे बतला दी? उसने उत्तर दिया—बेटा, तेरी बहू जब जब भी मेरे पास कोई चीज बनाने की विधि पूछने आई, मैंने बतला दी। हर बार उसने कहा 'यह तो मैं भी जानती

थी !' आज मैं इसकी अक्ल की परीक्षा करना चाहती थी। राख डालने की विधि बतलाने पर भी उसने यही कहा—'यह तो मैं भी जानती थी !'

इसके बाद बहूरानी को अक्ल आई !

भाइयो ! यह तो एक उदाहरण है। इस उदाहरण का अर्थ यही है कि अज्ञानी जीवों में सरलता नहीं होती, ! कृतज्ञता नहीं होती, ! वे समझते है कि हमने दूसरों को ठग लिया, पर वास्तव मे वे स्वयं ठगे जाते हैं। ऐसे लोगों का कल्याण नहीं होता। कल्याण के भागी वे होते हैं जो विनीत प्रकृति के हों। जिससे ज्ञान प्राप्त किया जाय, उसके प्रति आदर का भाव रखना चाहिये, उसके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए। तभी ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त होता है और वह ज्ञान सार्थक होता है। जो नर या नारी हृदय को कोमल रख कर ज्ञान प्राप्त करेगा और ज्ञानदाता के प्रति आदर का भाव रक्खेगा, वही ज्ञानी बन सकेगा और वही मोक्ष प्राप्त कर सकेगा। कहा है—

सज्जन ! मुक्ति पाना हो तो ज्ञानी बनो,
बिना ज्ञान मुक्ति नहीं पावें,
चाहें जितना कष्ट उठावे,
संशय दूर हटाना हो तो ज्ञानी बनो ॥ध्रु॥

हे सज्जनो ! मित्रो ! अजीजो ! और दोस्तो ! यदि सचमुच ही तुम अपना परम कल्याण चाहते हो, अगर तुम्हें मोक्ष प्राप्त करना हो तो ज्ञानी बनो। ज्ञान के बिना तीन काल में भी कल्याण

होने वाला नहीं है। ज्ञान के अभाव में, भले ही कोई महीने महीने का उपवास करे, तपस्या करे, शरीर पर राख लपेटे, धूनी रमावे, जटा बढ़ावे, गंगाजी में गोते लगावे और तरह तरह के कष्ट सहन करे, मगर आत्मा का कल्याण होने वाला नहीं है। अगर किसी विषय में, तुम्हारे मन में संशय है तो ज्ञानी पुरुषों की संगति करो। ज्ञानी तुम्हारे संशय को दूर कर देंगे। याद रखना—

जड़—चेतन मिल पिण्ड रचाया,
जिसके अन्दर मन ललचाया,
विवेक इसका पाना हो तो ज्ञानी बनो ॥

शरीर का यह पिण्ड जड़ और चेतन के मेल से बना है। अकेले जड़ से या अकेले चेतन से ऐसा पिण्ड नहीं बन सकता। मकान की दीवार खड़ी करने के लिए ईंट-पत्थर और चूना की आवश्यकता होती है! इसी तरह शरीर के निर्माण मे जड़ और चेतन-दोनों की आवश्यकता होती है।

भाइयो! अज्ञानी जीव इस पिण्ड में ही मग्न रहता है। वह इसी मे आत्मभाव धारण करता है। अपने शरीर के रूप-रंग को देखकर कांच मे अपनी सुन्दरता निहार कर प्रसन्न होता है। मगर समझ लेना चाहिए कि ऐसा करने वाला घोर अज्ञानी है। उसने न आत्मा का सच्चा स्वरूप समझा है और न शरीर का ही असली रूप जाना है। अरे चेतन! क्यों भ्रम में पड़ा है? तू सच्चिदानन्द है, चित्-चमत्कारमय है। अनन्त ज्ञान और अनन्त-दर्शन का पिण्ड है। तू अक्षय ज्योति है, ऐसी ज्योति जिससे यह सारा विश्व आलोकित हो सकता है! मगर तू अपने को पह-

चानता नहीं। दुनियां भर की बातें समझना-बूझना चाहता है, किन्तु अपने आपको समझने में ही प्रमाद करता है! तू कैसा समझदार है कि अपने को ही भूल रहा है! अरे आत्मन्! कहाँ जड़ शरीर और कहाँ चेतनमय आत्मा! दोनों में प्रकाश और अन्धकार जितना अन्तर है। इस शरीर के कारण ही तेरा समस्त सुख, दुःख के रूप में परिणत हो गया है। शरीर ने ही तुझे राजा से भिखारी बना रक्खा है! फिर भी तू शरीर पर इतनी गहरी ममता रखता है! शरीर को अपना सर्वस्व समझता है और आत्मा को नगण्य मानकर उसकी उपेक्षा करता है! अपनी भूल सुधार चेतन! अपनी भूल सुधार! कल गाया था:—

दो दिन रहि जा रे जीवराज! धनी!
फिर कदी मिलेगा रे!

हे हंस! दो दिन और रह ले। पाहुने! जाना तो है ही, हिलमिल कर थोड़ा समय बिता लें! मगर यह मनुहार काम नहीं आती।

भाइयो! शरीर और चीज है, आत्मा और चीज है। शरीर आत्मा का बनाया हुआ मकान है। मकान का स्वामी आत्मा है। मकान और मकान का मालिक एक नहीं—अलग-अलग होते हैं। तू इसे अपना आपा क्यों समझता है? शरीर और आत्मा का यह भेदविज्ञान ज्ञान से उत्पन्न होता है।

कल्पना करो कि किसी आदमी ने, किसी सेठ के पास सुरक्षा के लिए गहनों का एक संदूक रख दिया है। उस संदूक को देखकर और अपने पास रखते हुए भी सेठ के मन में उसके प्रति

ममता नहीं होती; क्योंकि वह समझता है कि यह अपनी नहीं, पराई वस्तु है। किसी भी समय इस संदूक का मालिक इसे उठा कर ले जायगा। इसी प्रकार धाय माता बालक को खिलाती-पिलाती है, उसकी सार-सँभाल रखती है, फिर भी उसे अपना नहीं मानती। वह मन ही मन समझती है कि यह बालक बड़ा होते ही मुझसे छिन जाने वाला है। यद्यपि ईमानदार धाय बालक के प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा करने मे प्रमाद नहीं करती; बालक को गैर समझ कर उसकी उपेक्षा नहीं करती फिर भी वह बालक मे आत्मीयता की भावना नहीं रखती इसी प्रकार ज्ञानी जन शरीर के विषय मे सोचते हैं। वे मानते हैं कि कर्म के उदय से मुझे इस शरीर की प्राप्ति हुई है, पर वह वास्तव मे मेरा नहीं है, क्योंकि मुझसे भिन्न है और एक दिन मुझे इसका परित्याग कर देना पड़ेगा। ज्ञानी जन प्राप्त शरीर को अपना न समझते हुए भी उसकी सार-संभाल रखते हैं, भोजन-पानी देकर उसका रक्षण करते हैं, फिर भी उसमें अपनापन नहीं समझते। वे आत्म कल्याण के लिए शरीर को उपयोगी साधन समझते हैं और इसीलिए उसका हठात् परित्याग नहीं करते।

ऐसी सच्ची समझ ज्ञान से ही आती है। जो अज्ञानी है, बहिरात्मा हैं, उन्हें ज्ञान का सच्चा प्रकाश अभी नहीं मिला है और इस कारण वे अपने शरीर में 'अहं' की भावना रखते हैं। ज्ञान प्राप्त होने पर स्पष्ट दिखाई देने लगता है कि शरीर अलग है और आत्मा अलग है।

कहा जा सकता है कि आत्मा और शरीर अलग अलग कभी भी नहीं पाये जाते। जहां कहीं देखते हैं वहां दोनों साथ-साथ दिखाई देते हैं। शरीर से अलग करके आत्मा को आज

तक किसी ने देखा नहीं है। फिर कैसे मान लिया जाय कि आत्मा और शरीर भिन्न-भिन्न हैं? इसका उत्तर ज्ञानी पुरुषों ने यह दिया है कि अनादि काल से आत्मा कर्मों के आधीन है। कर्मों के आधीन होने से वह सशरीर बना रहता है। सशरीर होने के कारण वह स्वभाव से अरूपी होते हुए भी रूपी मालूम पड़ता है। आत्मा के असंख्यात प्रदेश हैं और प्रत्येक प्रदेश पर अनन्त अनन्त कर्म-परमाणु चिपटे हुए है। दोनों एकमेक हो रहे हैं। यही कारण है कि आत्मा और शरीर अलग-अलग प्रतीत नहीं होते।

तो फिर दोनों को एक ही क्यों न समझ लें? इस शंका का उत्तर यह है कि लक्षण की भिन्नता से शरीर और आत्मा मे भेद सिद्ध होता है। शरीर का लक्षण अलग है। और आत्मा का लक्षण अलग है। इस कारण दोनों अलग-अलग है। जिन वस्तुओं के लक्षण मे भेद होता है, उनके स्वरूप मे भी भेद होता है। आत्मा का लक्षण क्या है और शरीर का लक्षण क्या है, यह बात पहले आ चुकी है। फिर भी सरलता से सबको समझाने के विचार से कहता हूँ कि आत्मा का लक्षण जानना और देखना है। आत्मा अरूपी है, उसमे रूप नहीं, रस नहीं, गंध नहीं, स्पर्श नहीं है। आत्मा के वर्त्तमान काल में जितने प्रदेश हैं, उतने ही भूतकाल में थे और उतने ही अनन्त भविष्यत् काल मे भी रहेगे। आत्मा किसी भी गति मे जाय और कैसी ही योनि में उत्पन्न हो, उसका एक भी प्रदेश कभी कम या ज्यादा नहीं हो सकता।

क्या शरीर भी इसी प्रकार है? नहीं, शरीर ऐसा नहीं है। शरीर पुद्गलमय है। उसमें रूप भी है, रस भी है गंध भी है, और स्पर्श

भी है। उसमें जानने और देखने की शक्ति नहीं है। पुद्गल के परमाणु बिखरते रहते हैं और मिलते भी रहते हैं। आप जब चाहें तभी एक पुद्गल-स्कंध के दो हिस्से कर डालते हैं। पर आत्मा के हिस्से नहीं हो सकते। इसी कारण आत्मा को अमर और अविनाशी कहते हैं और पुद्गल को विनाश-शील कहते हैं। इस तरह दोनों के लक्षण अलग अलग हैं। लक्षण के भेद से दोनों का भेद स्पष्ट ही समझा जा सकता है।

दोनों की भिन्नता को समझने के लिए एक युक्ति और लीजिए। कोई भी प्राणी जब जीवित होता है तो उसका शरीर स्वतः नाना क्रियाएँ करता है। हाथ पैर हिलते हैं, मुंह चलता है, आँखों के पलक झपते हैं, हृदय मे धड़कन होती रहती है, सारे शरीर में अविराम गति से खून चक्कर काटता रहता है। जब वही प्राणी मर जाता है तो यह सब क्रियाएँ बंद हो जाती हैं। कभी आप सोचते हैं कि इसका कारण क्या है? अगर शरीर से जुदा आत्मा नहीं है और शरीर ही शरीर है तो मृतक अवस्था में सब क्रियाएँ क्यों बंद हो जाती हैं? इससे पता चलता है कि शरीर के कारण ही पूर्वोक्त सब क्रियाएँ नहीं हो रही थीं। ऐसा होता तो शरीर तो मृतक हालत मे मौजूद ही है, फिर सब क्रियाएँ बन्द क्यों हो जातीं? अतएव यह निश्चित होता है कि शरीर अलग और आत्मा अलग है। जब तक शरीर में आत्मा विद्यमान रहती है तब तक वह शरीर को हलन चलन आदि देती है और जब आत्मा शरीर को त्याग कर अन्यत्र चली जाती है तो शरीर बेकार पड़ा रहता है।

भाइयों! इस प्रकार का विवेक ज्ञान से ही प्राप्त होता है। ज्ञानी जन अभेद में भी भेद देखते हैं। कहा है:—

पय-पानी एक रंग रंगाया,
हंस चोंच से भिन्न बनाया।
आतम शुद्ध बनाना हो तो ज्ञानी बनो।

दूध और पानी जब एकमेक होते हैं तो पानी भी दूध की शक्ल में दिखाई देता है। मगर जब उसी दूध मे हंस अपनी चोंच डुबाता है तो दूध अलग और पानी अलग हो जाता है। वह दूध दूध पी लेता है और पानी-पानी छोड़ देता है। ठीक इसी प्रकार शरीर और आत्मा एकमेक हो रहे हैं, फिर भी ज्ञानी जन लक्षण के भेद से दोनों को भिन्न-भिन्न समझते है। सिर्फ अज्ञान जन ही दोनों को एक मानते हैं।

चेतन अपना रूप विचारण,
सकल कर्म ज्ञान से संहारण,
खुद को ईश बनाना हो तो ज्ञानी बनो ॥

हे चेतन! तुझको मोक्ष प्राप्त करना है, अव्याबाध सुखमय स्थिति प्राप्त करनी है तो अपने स्वरूप की ओर दृष्टि कर। तू कौन है? कहाँ से आया है? और कहाँ जायगा? तू यह समझ कि शरीर अनित्य है और आत्मा नित्य है। तू अपने आपको राजा या मालदार समझ कर प्रसन्न होता है, पर यह तेरा स्वरूप नहीं है। 'कोऽहमस्मि ?' इस छोटे से मालूम होने वाले किन्तु गंभीरतम प्रश्न का सही उत्तर जब तुझे मिल जायगा तो तू निहाल हो जायगा। उस समय संसार का सम्पूर्ण वैभव भी तुझे तुच्छ दिखाई देगा और अपने ही स्वरूप से आनन्द की प्राप्ति होगी।

एक राजा का लड़का साधु बन गया। साधुओं में यह नियम होता है कि बाद में दीक्षा लेने वाला, पहले दीक्षा लिये हुए सब साधर्मी साधुओं को वंदना-नमस्कार करता है। चाहे कोई राजा हो या राजकुमार हो या चक्रवर्ती भी क्यो न हो, उम्र के लिहाज से चाहे कितना भी बूढ़ा क्यो न हो पहले दीक्षित निर्धन और बालक साधु को भी नमस्कार करना होगा। साधुओं मे 'गुणाः पूजास्थानं' की उक्ति पूरी तरह चरितार्थ होती है। अर्थात् जो चारित्र मे-संयमपर्याय में वृद्ध है, वही पूज्य होता है। साधु बन जाने पर एक मात्र संयम से ही उसके व्यक्तित्व का नाप होता है—न उम्र से, न धन से, न ज्ञान से और न किसी अन्य वस्तु से।

वह राजा का लड़का श्रमण भगवान् महावीर का उपदेश सुनकर साधु बन गया। रात्रि के समय उसे सब से आखिर में सोने की जगह मिली। वह जगह दरवाजे के पास ही थी और आने-जाने का रास्ता वही होकर था। रात्रि में जो साधु उधर से निकलता तो अंधेरा होने के कारण उस नवदीक्षित साधु को ठोकर लगती थी। रात भर ठोकरें खाते खाते वह उकता गया। उसे नींद नहीं आई। वह सोचने लगा—माँ ने मुझे बहुत समझाया था, लेकिन मैं नहीं माना! उसीका नतीजा यह है कि मुझे यह मुसीबतें उठानी पड़ रही हैं!

राजमहल मे मखमल और फूलों की सेज पर सोने वाले सुकुमार राजकुमार को इस तरह सोने में कितनी तकलीफ हुई होगी, यह बात तो वही जान सकता है। वह तकलीफ के कारण

घबरा कर सोचने लगा—मैं तो कल घर चला जाऊँगा। मुझ से यह सब बर्दाश्त नहीं होगा।

सबेरा हुआ। उसने घर लौट जाने की तैयारी की। फिर सोचा—भगवान् से कहे बिना जाना उचित नहीं है अतएव जाने की उन्हें सूचना दे दूं। यह सोचकर वह भगवान् महावीर की सेवा में उपस्थित हुआ। देखते ही भगवान् ने कहा—मेघकुमार! रात्रि में तुझे नींद नहीं आई! साधुओं की ठोकर लगने के कारण तू वापिस घर लौट जाना चाहता है? परन्तु हे कुमार! तुम्हें यह भी मालूम है कि तुम राजा के लड़के किस प्रकार बने हो? देखो, पहले तुमः—

वीर कहे सुन मेघ ! हमारी,
मेघ ! हमारी, मेघ हमारी।

ए मेघकुमार! तेरी आत्मा पर अज्ञान का पर्दा पड़ा है। मैं तुझे पहले का वृत्तान्त बतलाता हूँ। सुन—

पूछन काज आज मुझ आये,
जो दुख पाये रैन गुझारी।
गज-भव में तुम शशक बचाया,
पड़त किया संसारी तिवारी॥

देख, पूर्वभव में तू कजलीवन में हाथी था और पाँच सौ हथनियों का सरदार था। उस जंगल में कभी-कभी आग लग जाया करती थी। उससे तुझे बड़ा कष्ट होता था और अपनी

जान बचाना कठिन हो जाता था। इस संकट से बचने के लिए तू ने चार कोस के इर्दगिर्द की सारी जमीन साफ कर डाली। चार कोस के घेरे में जितने भी पेड़ थे सब उखाड़ डाले। सारी झाड़ियों का सफाया कर दिया।

एक बार उस जंगल मे फिर आग लगी। तब तू अपने सारे परिवार को लेकर उस घेरे (मंडल) मे आ गया। जंगल में सब जगह आग ही आग फैल गई थी। अतः दूसरे जानवर भी अपने प्राण बचाने के लिए उस घेरे मे आये। धीरे धीरे वह घेरा ठसाठस भर गया। एक खरगोश भी कूदता फाँदता वहाँ आया, पर उसे जगह नहीं मिली। उस समय तेरे शरीर में खुजली चली। शरीर खुजाने के लिए ज्यों ही तूने पैर ऊपर उठाया और थोड़ी-सी जगह खाली हुई कि उसी समय खरगोश वहाँ आ गया। अब हालत यह थी कि अगर तू अपना पैर जमीन पर टेके तो खरगोश कुचल जाय। तू ने खरगोश को देखा और उस पर दया की भावना उत्पन्न हुई। अतएव तू ने अपना पैर ऊपर ही उठाये रक्खा। तीन दिन बाद आग शान्त हुई और सब जानवर भागे और वह खरगोश भी चला गया। तब तूने अपना पैर जमीन पर टेकने का विचार किया। मगर लगातार तीन दिन ऊँचा रहने के कारण पैर अकड़ गया था। वह नीचा नहीं हुआ तू धरती पर पड़ गया और मर गया। मरते समय तेरी भावना बहुत उज्ज्वल रही। खरगोश पर दयाभाव रखने और उज्ज्वल भावना धारण करने से तू राजा श्रेणिक का पुत्र हुआ है।

मेघ ! यह तेरे पूर्वभव का वृत्तान्त है। आज तू थोड़े से

कष्ट से ही घबरा गया है किन्तु गज के भव मे तूने कितना कष्ट उठाया था ? इतना सुनकर—

जाति–सुमरन ज्ञान हुआ है।
हस्त–कमलवत् लिया निहारी ॥

भाइयो ! भगवान् महावीर के मुख से इतनी बात सुनते ही मेघकुमार को जाति स्मरण ज्ञान हो गया। उन्हें अपना पूर्व भव हाथ की रेखाओं की तरह स्पष्ट दिखाई देने लगा। शुद्ध भावना आई तो अज्ञान का पर्दा हट गया। मेघकुमार ने कहा- भंते ! आपने आज मेरे नेत्र खोल दिये। मैं अभी तक भ्रम में था–अंधकार मे भटक रहा था। मैं अपनी भूल के लिए क्षमा चाहता हूँ। मुझे प्रायश्चित्त दीजिए। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि दोनों नेत्रो को छोड़कर मेरा यह सारा शरीर मुनियों की सेवा मे समर्पित है।

संयम पाल विजय विमान में,
देव हो गये एका भवतारी,
चौथमल्ल कहे गांव बड़ावदे,
दो हजार के साल मुझारी,

आखिर मेघकुमार ने ज्ञान के द्वारा जान लिया कि-यह शरीर अनित्य है। इससे जितनी सेवा, जितना वैयावृत्य हो सकेगा, दूसरों को जितना आराम पहुँचेगा, उतना ही आत्मा का कल्याण होगा। उस दिन से मुनि मेघकुमार पूर्ण रूप से संयमनिष्ठ हो गये। शुद्ध संयम का पालन करके अन्त में वे

अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए। वहाँ से चल कर, मनुष्यगति में आकर वे मोक्ष प्राप्त करेंगे।

कहने का अभिप्राय यह है कि जब तक अज्ञान का पर्दा पड़ा रहता है तब तक वास्तविक तथ्य मालूम नहीं होता। ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य को सोचना चाहिए कि मै कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? और कहाँ जाऊँगा? जब इन प्रश्नों का सही तौर पर ज्ञान हो जायगा तो आपको श्रेयस् का मार्ग मिल जायगा और उस मार्ग पर चलकर आप स्वयं भगवान् बन जाएँगे।

दो हजार दो नीमच आया,
गुरु–प्रसादे चौथमल गाया॥
पद निरंजन पाना हो तो ज्ञानी बनो॥

भाइयो! निश्चय समझो कि ज्ञान के अभाव मे आवागमन नहीं छूट सकता। ज्ञान के बिना अमर पद प्राप्त नहीं हो सकता।

जम्बूकुमार की कथा

जम्बूकुमार को भी ऐसा ही ज्ञान प्राप्त हुआ था। श्री सुधर्मा स्वामी ने उनके भीतर के नेत्र खोल दिये थे। उस ज्ञान के प्रभाव से वे अपने संकल्प पर अडिग रहे। धन्य हैं ऐसे नरवीर!

आठो कन्याओं ने विचार किया कि जगत् में नारी की शक्ति दुर्लंघ्य है। हम आठों मिलकर कुमार के वैराग्य को काफूर कर देंगीं। अतएव हमें जम्बूकुमार के साथ ही विवाह करना चाहिए।

इस प्रकार आपस में निश्चय करके कन्याओं ने अपने-अपने माता-पिता को अपने निश्चय की सूचना दे दी। उधर जम्बूकुमार के माता-पिता के पास भी यह सम्वाद पहुँचा दिया गया। अब तक वे दुविधा में पड़े थे। कन्याओं के विचार-विनिमय का परिणाम जानकर उन्हे बहुत प्रसन्नता हुई। नौ ही घरों में विवाह की धूम मच गई। बीच में निराशा और अनुत्साह की जो हवा फैल गई थी, वह दूर हो गई। निराशा के बाद की आशा अधिक स्फूर्तिजनक होती है। अतएव बड़ी स्फूर्ति और आशा एवं हर्ष के साथ फिर विवाह की तैयारियाँ होने लगीं।

आखिर विवाह का दिन आ पहुँचा। आठों कन्याओं का पीठमर्दन हुआ। सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और आभूषण पहनाये गये। कन्याओं मे नैसर्गिक सौन्दर्य था ही, शृंगार ने उसे कई गुना बढ़ा दिया। कन्याएँ ऐसी दिखाई देने लगीं, मानो स्वर्ग से अप्सराएँ उतर कर आई हो!

इधर जम्बूकुमार को भी दूल्हा का बाना पहनाया गया। बड़े ठाठ के साथ बिंदौरी निकली। आखिर बरात रवाना हुई। आठों कन्याओं से एक ही साथ विवाह हो गया। सब कन्याओं के माता-पिता से ९९ करोड़ सोनैया का दहेज मिला। सब के यहाँ से सोनें-चाँदी और रत्नों के पलंग मिले। थाली-गिलास आदि-आदि ११९ तरह की चीजें दहेज में दी गई। बरात लौट कर घर आ गई। घर आते ही जम्बूकुमार ने माता-पिता के चरणों मे नमस्कार किया। तत्पश्चात् वे अपने भवन के सातवें खण्ड पर चले गये।

उधर आठों बहुओं के आने से घर मानों खिल उठा। रौनक ही कुछ और हो गई। बहुओं ने आकर जम्बूकुमार की माता को अत्यन्त आदर के साथ प्रणाम किया। गद्गद् भाव से माता ने उन्हें आशीर्वाद दिया—बेटियो ! फूलो, फलो ! तुम्हारा सुहाग बढ़ता रहे !

रात्रि का समय आया। सभी स्त्रियाँ सुन्दर से सुन्दर श्रृंगार करके अपने पति से मिलने गईं। भाइयो ! आज योग और भोग की लड़ाई है। लड़ाई भी साधारण नहीं, बड़ी जबर्दस्त ठनने वाली है। आज संसार की दो विरोधी शक्तियों का तुमुल संग्राम है। उसमें वही विजय पाएगा, जो ज्यादा शक्तिशाली होगा।

जम्बूकुमार ध्यान में मग्न अपने पलंग पर बैठे हैं। उनके मुख पर त्याग और वैराग्य की झलक दिखाई दे रही है। शान्ति और सौम्यता का नृत्य सा हो रहा है। इसी समय आठों सद्यः परिणीता वधुएँ रुमझुम-रुमझुम करती हुई कुमार के कमरे में प्रविष्ट हुईं। उन्होंने कुमार को ध्यान में लीन देखा तो हृदय को ठेस लगी। उन्हें ऐसा लगने लगा, मानों हमारी पराजय होने वाली है। फिर भी धीरज धर कर, कुमार को चारों ओर से घेर कर वह बैठ गईं। मगर कुमार का ध्यान नहीं टूटा। वे नाक के अगले भाग पर नजर जमाये, मौन भाव से ज्यों के त्यों बैठे रहे।

आठों वधुएँ कुमार पर दृष्टि लगाये बैठी रहीं और उनके ध्यान समाप्त होने की राह देखने लगी। उस समय उन नवविवाहिता वधुओं के चित्त में कैसी-कैसी भावनाएँ उत्पन्न हो रही होंगी,

यह कल्पना करना भी कठिन है। वह विवाह की पहली रात्रि थी। इसे सुहाग-रात कहते है। सुहाग-रात दुनिया में असाधारण समय समझा जाता है। न मालूम कितने और कैसे-कैसे मंसूबे लेकर, कितनी कोमल, हरी-भरी और रंगीन भावनाएँ लेकर नवविवाहित पति-पत्नी इस समय मिलते हैं। उनका हृदय धड़कता हुआ, छलकता हुआ, उछलता हुआ और नाचता हुआ होता है। पर जम्बूकुमार की सुहाग रात अनोखी है। जगत् के इतिहास में, किसी दूसरे नवयुवक ने इस प्रकार सुहाग-रात मनाई हो, यह देखने-सुनने में नहीं आया ! जम्बूकुमार ने विस्मयपूर्ण और अनोखे इतिहास की सृष्टि की है। धन्य है, धन्य है, ऐसे विकार विजयी वीर पुरुषों को !

आखिर ध्यान भंग होने की प्रतीक्षा करते-करते बहुत समय बीत गया और भंग होने के कोई लक्षण दिखाई न दिये। वधुओं का धैर्य टूटने लगा। विषाद से हृदय भारी हो गया। उनकी उमंगें और कल्पनाएँ कुमार के वैराग्य-सागर में डूबने लगीं, तब उनसे चुपचाप न बैठा गया। उन्होंने कहा-प्राणनाथ ! कई दिन का भूखा कोई आदमी भोजन करने बैठे, उसके सामने सुन्दर सरस और स्वादिष्ट भोजन मौजूद हो, और पहला कौर उठाते ही मक्खी पड़ी नजर आ जाय तो उसका क्या हाल होता होगा ? ऐसा ही हाल हमारा है। न जाने कितनी उत्कंठा के बाद आपके दर्शन हुए है ! कितनी लुभावनी भावनाएँ लेकर हम आपके आगे आई हैं। हमने अपना सारा जीवन आपके ऊपर निछावर कर दिया है। मगर आप प्रथम मिलन के समय ही रूठे बैठे है बोलते नहीं और आँख उठा कर देखते भी नहीं है ! क्या हमने आपका

परोक्ष में कोई अपराध किया है? कभी किसी रूप में कोई भूल हो गई हो तो क्षमा प्रदान कीजिए! मुँह खोल कर उस भूल को सुझाइए तो सही! मगर जम्बूकुमार ने बड़ा ही कठोर मनोभाव धारण किया। वे पत्नियों के इस प्रकार की हृदय को पिघला देने वाली बात को सुन कर भी पिघले नहीं। जम्बू कुमार अब भी अपने ध्यान में मग्न बैठे है।

एक ओर यह हो रहा था और दूसरी ओर दूसरी घटना का सूत्रपात हो रहा था। बात यों हुई। उसी नगर में प्रभव नामक एक जबर्दस्त चोर था। उसने सुना कि ऋषभदत्त सेठ के यहाँ, लड़के के विवाह में ६६ करोड़ का दायजा आया है। आज ही उस माल पर हाथ साफ करने का उत्तम अवसर है। यह सोचकर प्रभव ने अपने ५०० साथियों को इकट्ठा किया और रात्रि जब काफी बीत गई तो वह उनके साथ सेठजी के घर आया। प्रभव चोर कोई मामूली आदमी नहीं था। उसने कई विद्याएँ सीखी थीं। उनमें से ताला तोड़ने की विद्या भी एक थी इस विद्या के प्रभाव से उसने तमाम ताले तोड़ डाले। दूसरी विद्या का प्रयोग करके उसने सब आदमियों को सुला दिया। इसके बाद उसने अपने साथियों को हुक्म दिया—मोहरों की गठड़ियाँ बाँधो और जल्दी करो। प्रभव के साथी बड़ी तत्परता के साथ मोहरें बटोरने में लग गये!

भाइयो संसार एक बड़े रंगमंच के समान है। यहाँ तरह-तरह के दृश्य दिखलाई पड़ते हैं। एक दृश्य पूरा नहीं हो पाता कि दूसरा तैयार है! न मालूम कितनी घटनाएं घटती रहती हैं!

इधर चोर जल्दी-जल्दी माल समेटने में लगे हैं, उधर शासन देवता का ध्यान इस ओर आकर्षित होता है। जब शासन देवता को यह बात मालूम हुई कि कुमार कल दीक्षा लेने वाले हैं और आज रात्रि में ही उनके घर जबर्दस्त चोरी हो रही है। अगर चोरी हो गई और उसके बाद कुमार ने प्रातःकाल दीक्षा ली तो संसार में अपवाद होगा। लोग कहेंगे कि सम्पत्ति चली गई है, इसी कारण कुमार साधु हो रहे हैं। उक्ति प्रचलित है—

नारि मुई घर सम्पति नासी,
मुंड मुड़ाय भये संन्यासी,

लोगों को इस प्रकार की बातें कहने का मौका मिल जायगा। कुमार की दीक्षा का महत्त्व दुनिया की नजरों में कम हो जायगा। जम्बूकुमार की दीक्षा दुनिया के इतिहास में एक अनोखी घटना है। दीक्षाएँ तो बहुत हुई हैं और होंगी भी, परन्तु इस प्रकार की यह दीक्षा निराली है! इस दीक्षा की उत्तमता खत्म हो जायगी और जनता के अपवाद का विषय बन जाएगा।

शासन-देवता ने इस प्रकार विचार कर अपने दैवी सामर्थ्य से, धर्म की महिमा बढ़ाने के उद्देश्य से, चोरों को स्तंभित कर दिया। जो चोर जहाँ जिस हालत में था, वह वहीं उसी हालत में स्थिर हो गया। किसी में हिलने-डुलने की भी शक्ति नहीं रही। रह गया सिर्फ प्रभव, जो स्तंभित नहीं हुआ था। उसे अपने साथियों का अचानक यह हाल देखकर आश्चर्य हुआ। वह बुरी तरह परेशान हुआ। थोड़ी देर तक वह भौंचक्का

सा हो रहा। उसे सूझा ही नहीं कि क्या करूं और क्या न करूं।

सेठ ऋषभदत्त का घर बहुत विशाल था। प्रभव उसमें इधर उधर पागल सा घूमने-फिरने लगा। वह अकस्मात् आ-पड़ी मुसीबत का इलाज सोचने लगा। प्रभव बहुत होशियार चोर था। उसकी होशियारी और चालाकी के सामने किसी की कुछ चलती नहीं थी। राजा श्रेणिक की राजधानी में ही वह बड़ी सफलता के साथ अपना धंधा चला रहा था। किस की मजाल है कि उसके रास्ते का काँटा बन सके! परन्तु आज उसकी सारी चालाकी हवा हो गई। वह विवश, लाचार और दीन बन गया। बहुत माथापच्ची करने पर भी उसे कोई उपाय न सूझा कि अपने साथियों की रक्षा कर सके।

सेठजी के घर में घूमता फिरता प्रभव वहीं जा पहुँचा जहां जम्बूकुमार और उनकी आठों पत्नियां मौजूद थीं। जम्बूकुमार के सामने पहुँचते ही उसने अपने आपको उनके सिपुर्द कर दिया। वह बोला-कुमार कृपा करके मुझे स्तम्भित करने की विद्या सिखलाइए। उसके बदले मैं आपको दो विद्याएं सिखलाए देता हूँ। क्षमा कीजिए, मुझे पता नहीं था कि आपको यह विद्या आती है! अब स्वप्न में भी कभी मैं आपके यहां चोरी करने नहीं आऊँगा।

जम्बूकुमार रात्रि के समय, अचानक, प्रभव को सामने पाकर चकित रह गये। तिस पर उसने एकाएक विद्या सीखने और सिखाने का जो प्रस्ताव रक्खा, वह तो उनकी समझ में ही न आया! वे समझ ही नहीं सके कि आखिर यह ऐसी बातें क्यों

कर रहा है ? उन्हे क्या पता था कि–मेरे घर में चोर स्तंभित हो गये है और प्रभव समझता है कि यह सब मेरी ही करामात है ! अतएव जम्बूकुमार ने कहा—प्रभव, तुम किस भ्रम मे पड़े हो ? क्या कह रहे हो ?

प्रभव बोला—कुमार ! बनिये मत। समय ज्यादा नहीं है। सुबह हुआ ही चाहता है। देरी हुई तो हम सब मारे जाएँगे। जल्दी कीजिए। अगर आप मुझे विद्या सिखा देंगे तो बड़ी दया होगी।

भाइयो ! आगे का वृत्तान्त फिर सुनाने की भावना है। अगर आप जम्बूकुमार की तरह ज्ञान प्राप्त करेंगे तो आनन्द ही आनन्द होगा।

जोधपुर,
ता. २३-८-४८



भयभंजन भगवान् !



स्तुतिः—

श्च्योतनमदाविलविलोलकपोलमूल,
मत्तभ्रमद्भ्रमरनाद विवृद्धकोपम् ।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं,
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त-शक्तिमान्, पुरुषोत्तम ऋषभदेव भगवन्! कहाँ तक आपके गुण गाये जाएँ? किस प्रकार आपकी स्तुति की जाय?

भगवान् के नाम में अद्भुत शक्ति है। कल्पना कीजिए, कोई आदमी कार्य-वश किसी जंगल, गाँव या शहर की गली में

होकर जा रहा है। सामने से एक मदोन्मत्त और उद्धत हाथी आ गया। हाथी मद से मतवाला हो रहा है। उसके गंडस्थलों से मद चू रहा है। चूते हुए मद की गंध से बहुतेरे भ्रमर भी मतवाले बन रहे हैं। मतवाले भौंरे गुन-गुन करके शोर मचा रहे है। भौंरों के शोर से हाथी का क्रोध बहुत अधिक बढ़ गया है। हाथी कोई मामूली नहीं ऐरावत के समान विशाल-काय और शक्तिशाली है। मतवाला और कुपित है। ऐसी स्थिति मे अगर कोई मनुष्य उसके सामने आ जाय तो वह क्षण भर में उसका कचूमर निकाल सकता है। बलवान् से बलवान् और बुद्धिमान् से बुद्धिमान् मनुष्य भी ऐसे हाथी के सामने क्या कर सकता है?

किन्तु जो भव्य जीव भगवान् ऋषभदेवजी के भक्त हैं, जिन्होंने प्रभु के पाद-पद्मो मे अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया है, जिन्होंने अपनी ताकत का घमंड छोड़ कर भगवान् के नाम के लोकोत्तर बल का सहारा पकड़ लिया है, उन्हें ऐसा भयानक हाथी सामने आया देख कर तनिक भी भय नहीं होता। उन्हें विकराल से विकराल हाथी भी खरगोश के समान प्रतीत होता है। भगवान् का ध्यान करके 'ॐ उसभ' इस प्रकार तीन बार उच्चारण करने से हाथी उसे नहीं सताता। वह आनन्दपूर्वक अपने घर पहुंच जाता है। उसे कोई कष्ट नहीं होता। यह भगवान् के स्मरण की महिमा है। भगवान् ऋषभदेवजी के नाम में ही जब इतनी महिमा है तो साक्षात् भगवान् का तो कहना ही क्या है? ऐसे भगवान् ऋषभदेव को हमारा बार बार नमस्कार हो।

भाइयो! मनुष्य को सब से पहले श्रद्धा होनी चाहिये। वह भी अचल और अटल होनी चाहिए। संसार मे श्रद्धा बड़ी चीज

है। जो सम्पूर्ण भाव से श्रद्धामय होता है, वही अपने लक्ष्य मे सफलता पाता है। आत्मा की दृढ़ता होनी चाहिये। जिसमे सच्चा आत्मबल है, कोई विघ्न उसके सामने बाधक नहीं बन सकता।

अन्तगड सूत्र में एक घटना का वर्णन आता है। करीब पच्चीस सौ वर्ष पहले की बात है राजगृही नगरी मे, जो आजकल के विहार प्रान्त मे थी, एक माली रहता था। वह अर्जुन माली के नाम से प्रसिद्ध था। उसकी पत्नी बड़ी ही रूपवती, सुकुमारी और पुण्यवती थी। उसमे अच्छी स्त्रियो के दक्षता आदि गुण विद्यमान थे। शहर में मेले-महोत्सव हुआ ही करते हैं। तदनु-सार उस समय भी राजगृही मे कोई उत्सव था। अर्जुन माली अपनी पत्नी के साथ प्रातः काल जल्दी उठकर बगीचे में गया। उसने पत्नी से कहा—आज नगर में उत्सव है। फूलों की बिक्री अच्छी होगी। जल्दी चल कर फूल चुन लाएँ। दोनों बगीचे में पहुंचे।

इसी नगर में छह नवयुवक थे, जो बलवान् और शक्तिशाली थे। वे सेठों के लड़के थे। उनके पिताओं ने राज्य-हित के कोई ऐसे काम किये थे, जिनसे उन्हें बड़ी-बड़ी रियायतें मिली थीं, यहाँ तक कि खून कर देना भी उन्हें माफ था।

उसी दिन इन नवयुवकों ने विचार किया कि चलो, अर्जुन माली के बगीचे में चलें और वहीं मनोरंजन करके समय बिताएँ। वे छहों उस बगीचे में जा पहुँचे। अर्जुन माली के पहुँचने से पहले ही वे वहाँ पहुँच गये।

अर्जुन माली और उसकी पत्नी ने बगीचे मे जाकर फूल चुने और टोकरी मे भर लिये। उन्होंने सोचा—पहले देवता को

फूल चढ़ा दें, फिर उन्हें बेंचने के लिए ले चलेंगे। यह सोचकर दोनों फूल चढ़ाने के लिए जा रहे थे कि उन छहों नवयुवकों की निगाह माली की स्त्री पर पड़ी। स्त्री की खूबसूरती देख कर उनकी नीयत बिगड़ गई। उन्होंने आपस मे सलाह करके निश्चय किया—अर्जुन को पकड़ कर बाँध लें और इसकी स्त्री से अपनी इच्छा की पूर्त्ति करें। यह अकेला है और अपन छह हैं! उसका कुछ भी वश नहीं चलेगा !

छहों नवयुवक मन्दिर के दो दरवाजों के पीछे तीन-तीन की संख्या में छिप रहे। अर्जुन को इस घटना का तनिक भी आभास नहीं मिला। उसका खुद का बगीचा था और वह हमेशा वहाँ आया करता था। अतएव न तो उसे किसी प्रकार की आशंका थी, न कोई भय था। वह सहज भाव से अपना काम कर रहा था। वह अपनी पत्नी के साथ मंदिर में प्रविष्ट हुआ। दोनों ने देवता के आगे फूल चढ़ाए। किन्तु ज्यों ही वे नमस्कार करने के लिए नीचे झुके कि उसी समय उन नवयुवकों ने हमला बोल दिया। उन्होंने अर्जुन को पकड़ लिया। उसी की पगड़ी से उसकी मुश्कें बाँध दीं। फिर उसे एक किनारे पटक दिया और उसीके सामने उसकी स्त्री के साथ दुराचार का सेवन किया।

अर्जुन के मन में उस समय कैसे-कैसे विचार आये होंगे, कौन कह सकता है ? वह क्रोध के मारे जलने लगा। उसने सोचा—मेरा वश नहीं चल रहा है, मगर हम अपने बाप-दादाओं से इस देवता की पूजा करते आये हैं। यह देवता इस भीषण अत्याचार को कैसे सहन कर रहा है ? अब शायद इस मूर्ति में देव नहीं रहा है, सिर्फ लकड़ी की मूर्ति रह गई है। अगर इसमें देव होता

तो क्या वह ऐसा अत्याचार होने देता ? हर्गिज नहीं। अब इस मूर्ति में कोई करामात नहीं है।

अर्जुन माली ऐसा विचार कर ही रहा था कि किसी देवता का उपयोग लग गया। उसने अर्जुन के शरीर में प्रवेश किया। देवता के प्रवेश करते ही अर्जुन के शरीर में असाधारण बल आ गया। उसकी मुश्कें कच्चे सूत की तरह अनायास ही टूट पड़ीं। वह स्वतंत्र हो गया। वहाँ पड़े हुए एक भारी मुद्गर को उठाकर वह उन घोर अत्याचारी और दुराचारी नवयुवकों की तरफ झपटा। उसने छहों के प्राण ले लिये और साथ ही अपनी पत्नी का भी खात्मा कर दिया, क्योंकि उसकी नीयत भी खराब हो गई थी।

इस प्रकार सात मनुष्यों का खून करके वह बगीचे से बाहर निकला। हाथ में भारी मुद्गर लिये वह घूमने लगा। वह प्रतिदिन छह पुरुषों का और एक स्त्री का वध करने लगा। यह उसका दैनिक कार्य हो गया। एक दिन, दो दिन, महीना, दो महीने यावत् चार महीने हो गये। अर्जुन की रक्त-पिपासा नहीं बुझती। उसका आवेश कम नहीं होता। वह साक्षात् यमराज की भांति मुद्गर लिये घूमा करता है और नर-संहार किया करता है। उसकी यह प्रवृत्ति छूटती ही नहीं है।

सारी राजगृही नगरी में तहलका मच गया। अर्जुन के डर के मारे लोग काँपने लगे। उन्हें ऐसा मालूम होने लगा— मानों मौत शरीर धारण करके घूम रही है। पर किसी का वश नहीं चला। अर्जुन माली को पकड़ लेने का किसी को साहस

नहीं हो सका और विकराल रूप धारण किये अर्जुन प्रतिदिन छह पुरुषों तथा एक स्त्री को यमलोक भेजने लगा।

राजा ने निरुपाय होकर नगर के चारों दरवाजे बन्द करवा दिये और डोंडी पिटवा दी कि अगर कोई नगर के बाहर गया तो हम उसकी जान के जिम्मेदार नहीं हैं। इससे लोगों को और खास तौर से गरीबों को बड़ा कष्ट हो गया। जो लोग जंगल से लकड़ी, पत्ता या दूसरी चीजें लाकर और उन्हें बेच कर अपना उदर-निर्वाह करते थे, उनकी आजीविका के द्वार भी बंद हो गये। वे बेचारे संकट में पड़ गये। यों करते-करते आखिर पाँच महीना बीत गये।

छठा महीना चल रहा था कि एक नवीन घटना घटी। उस समय श्रमण भगवन्त महावीर मौजूद थे। भगवान् ग्राम, नगर, पुर पाट्टन आदि में विचरते-विचरते राजगृही नगरी के बाहर बगीचे में पधारे। भगवान् अपने ज्ञान से जान चुके हैं कि अर्जुन माली राजगृही में भारी गजब ढा रहा है। उसने आज तक ग्यारह सौ से भी कुछ अधिक आदमियों के प्राण ले लिये है।

राजगृही में सुदर्शन नामक एक सेठ थे। उन्होंने अपने पिता की पदवी में ही सेठ की पदवी प्राप्त की थी। सुदर्शन सेठ भगवान् के भक्तों में प्रधान, धर्मपरायण और दृढ़ शीलव्रती थे। उन्हें भगवान् के पधारने का समाचार मिला। तीर्थङ्कर भगवान् नगर में पधारें और उनके दर्शन न किये जाएँ, यह कल्पना ही सुदर्शन को अरुचिकर थी। उन्होंने भगवान् के दर्शन करने के लिए जाने का पक्का निश्चय कर लिया। अपने निश्चय की

सूचना माता-पिता को भी दे दी। माता पिता का पुत्र पर गहरा स्नेह होता है। उन्होंने सुदर्शन से कहा—बेटा! कौन अभागा ऐसा होगा जो भगवान् के दर्शन न करना चाहेगा? तीर्थङ्कर प्रभु के दर्शन का सौभाग्य तीव्र पुण्य के उदय से मिलता है। उनका दर्शन परम पावन है। जीवन को धन्य और पुण्यमय बनाने वाला है। मगर तुझे क्या पता नहीं है कि अर्जुन के कारण भगवान् के पास पहुचना ही संभव नहीं है। वह बाहर निकलने वाले मनुष्यों का वध कर डालता है। ऐसी स्थिति में तुम्हारा वहाँ जाना उपयुक्त नहीं है। भगवान् अनन्त ज्ञानी हैं घट-घट की बात जानते हैं। तुम्हारे हृदय का भक्ति-भाव उनसे छिपा नहीं है। अतएव यहीं से भगवान को वन्दन-नमस्कार कर लो। भगवान् तुम्हारी वन्दना अवश्य स्वीकार कर लेंगे।

सुदर्शन ने कहा—आपकी मुझ पर असीम ममता है। इसी कारण आप मुझे जाने की मनाई कर रहे हैं, जिस काम में आप मेरा अहित मानते हैं, उससे रोकते हैं; यह मेरे सौभाग्य का चिह्न है। मगर मेरी अन्तरात्मा मुझे प्रेरित कर रही है कि मैं भगवान् महावीर के चरण कमलों में वहीं जाकर वन्दना करूँ। मैं अंतिम निश्चय कर चुका हूँ।

पिता—तुम कहते क्या हो? क्या तुम्हें जिंदगी पसंद नहीं है?

सुदर्शन—पिताजी! आपकी छत्र-छाया में रहते मुझे जिन्दगी नापसन्द क्यों होगी? मुझे कोई कष्ट नहीं है। मगर मुझे विश्वास है कि मेरा कुछ भी अनिष्ट नहीं होगा। अर्जुन में यदि शक्ति है तो क्या धर्म में शक्ति नहीं है? अर्जुन मारेगा तो क्या धर्म रक्षा नहीं

करेगा ? मैं अपने धर्म की रक्षा करूँगा तो धर्म भी अवश्य ही मेरी रक्षा करेगा। संसार में यदि भौतिक बल है तो आध्यात्मिक बल भी है और आध्यात्मिक बल भौतिक बल से अधिक प्रबल है। शस्त्र स्थूल वस्तु है और आत्मा सूक्ष्म है। स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म की शक्ति ज्यादा जबर्दस्त होती है। अतएव आप चिन्ता न करें। धर्म के प्रसाद से कोई अमंगल नहीं हो सकता।

इस प्रकार किसी तरह माता-पिता को समझा-बुझा कर सुदर्शन सेठ घर से बाहर निकले। जिस किसी ने उन्हे जाते देखा, उसी ने टोका, रोका और कहा—आज क्या प्राण देने की इच्छा हुई है ? मगर भक्त प्रवर सेठ सुदर्शन, बिना किसी की सुने आगे बढ़ते ही चले गये। चलते-चलते वे नगर के फाटक पर पहुँचे। वहाँ तैनात सिपाहियों ने भी उन्हें रोका। कहा—सेठजी ! आप सारी हालत समझते हैं, फिर भी बाहर जाने का विचार करते हैं ! प्राणों की जोखिम उठाना ठीक नहीं है। आप लौट जाइए।

मगर सुदर्शन पर किसी के समझाने का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। कवि ने कहा:—

राई घटे न तिल बढ़े, रह-रह जीव निशंक।

अर्थात्–केवली भगवान् ने अपने ज्ञान में जैसा देखा है वैसा ही होगा। उसमे न राई भर घट सकता है, न तिल भर बढ़ सकता है। कहा है:—

मैं अखंड अविनाशी हूँ, परिशुद्ध धर्म यह मेरा है।
इस तन से मेरे क्या मतलब, यह नाशवान निस्सारा है॥

सुदर्शन सेठ कहते हैं—मैं इस सिद्धान्त को मानता हूँ कि मैं अखंड हूँ, अविनाशी हूँ, अजर अमर हूँ। निष्कलंकता मेरा धर्म है। इस शरीर से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। प्रयोजन हो सकता है तो यही कि यह धर्म की आराधना मे सहायक बने। अगर यह धर्म में सहायक नहीं होता बल्कि बंधक होता है तो इसका पालन-पोषण करने से क्या लाभ है? मैं धर्म के लिये शरीर का परित्याग कर सकता हूँ, मगर शरीर के लिए धर्म का परित्याग नहीं कर सकता। कारण यह है कि एक शरीर त्याग देने पर दूसरा शरीर अनायास ही मिल जाता है, मगर धर्म का त्याग कर देने वाले को फिर धर्म की प्राप्ति होना सरल नहीं है।

सुदर्शन सेठ फिर बोले—जो आज लोग शरीर की रक्षा के लिए अपने धर्म का परित्याग करते हैं, उनसे बढ़कर मूर्ख संसार मे कौन होगा? वे धर्म को छोड़ कर शरीर की रक्षा करना चाहते हैं, मगर क्या वे शरीर की रक्षा कर सकेंगे? ऐसा होता तो अधर्मी लोग अजर-अमर बन गये होते और अनादि काल के सभी अधर्मी इस पृथ्वी पर ही मौजूद रहते। मगर ऐसा होना सम्भव नहीं है। हजार और लाख प्रयत्न करने पर भी शरीर सदा स्थायी नहीं रह सकता। इस प्रकार शरीर तो नाशवान है, छूटने वाला ही है, फिर उसकी रक्षा के लिए धर्म का त्याग करना कहाँ तक उचित है?

भाइयो! यों तो बहुत लोग 'घणी खमा, घणी खमा' के नारे लगाते रहते हैं, मगर जब कसौटी का काल आता है तब खरे और खोटे भक्तों की परख होती है।

भौंदू भैया ! क्या तेरा विश्वासा ?
तेरा पड़े न पूरा पाशा !

लोग कहते है-हम भी भक्त हैं, हम भी शीलधर्म को मानते है, ईश्वर पर श्रद्धा रखते है, मगर कवि कहता है, भौंदू भाई ! तुम्हारा भरोसा क्या है ? बहिने बड़ी भाग्यशालिनी है। उनमे धर्म के प्रति अच्छी अवस्था देखी जाती है, मगर असलियत का पता तो समय आने पर ही लगता है। समय आने पर शूरवीर पुरुष अपने पथ से रंचमात्र भी नहीं डिगता, मगर कायर क्या करता है ?:—

कायर तो डिग गया हो गया चकनाचूर ।
कोइक नर सेंठा रया, जाने वीर बखाण्या शूर ॥

कायर पुरुष भाग जाता है और चकनाचूर हो जाता है। कोई विरले ही पुरुष दृढ़ता धारण करते हैं। भगवान् ने उन्हीं की तारीफ की है और हम भी उन्हीं की तारीफ करते हैं।

भगवान् की शक्ति तो अनन्त है ही, मगर भगवान् के भक्त की शक्ति भी मामूली नहीं होती। भक्त को भी भगवान् की शक्ति का अंश प्राप्त रहता है। मगर सच्ची भक्ति का जागना बहुत मुश्किल है। सच्ची भक्ति के सामने तलवार की तीखी धार बेकार साबित होती है। अलबत्ता बनावटी भक्ति में यह सामर्थ्य नहीं है। काम सचाई से चलता है इमीटेशन से क्या काम चलेगा ?

हाँ, तो सुदर्शन सेठ ने सिपाहियों से कहा तुम मेरी चिन्ता मत करो। अपनी चिन्ता करने को मै आप बस हूँ। दरवाजा खोल दो। मुझे जाने दो।

बेचारे सिपाहियों ने दरवाजा खोल दिया । सेठ सुदर्शन गम्भीर चाल से आगे बढ़े। इधर लोगों के कुतूहल का पार नहीं था। बहुत-से लोग अपनी छतों पर चढ कर और बहुतेरे राजगृह नगर के शहरपनाह की दीवार पर चढ़ कर बड़ी उत्कंठा के साथ देखने लगे कि अब आगे क्या होता है ? वे सोच रहे थे कि अर्जुन माली आया नहीं कि सुदर्शन यमलोक पहुँचे नहीं ! मगर सेठजी अपनी स्वाभाविक गति से चलते चले जा रहे हैं। उन्हें न कोई झिझक है, न भय है, न घबराहट है। वे जानते हैं-करना तो डरना नहीं और डरना तो करना नहीं। कहा है—

डगमग नहीं करना, नहीं करना, प्रभुजी के मारग चलना।

अर्थात्-भगवान् के सत्य पथ पर चलने में ढिलमिल नीति नहीं रखना चाहिये। दृढ़ भावना और पूर्ण विश्वास के साथ भगवान् के मार्ग पर चलने से ही सिद्धि प्राप्त होती है।

आखिर जो आशंका थी, सत्य साबित हुई। इधर सेठ सुदर्शन चले जा रहे थे और उधर से अर्जुन माली लपका चला आ रहा था ! नगर के दर्शक लोगों ने यह दृश्य देखा तो तरह-तरह की बातें आरम्भ कर दीं। किसी ने कहा—'कितना मना किया था, मगर सेठ नहीं माने ! उनकी मौत उन्हें जबर्दस्ती घसीट ले गई ! अर्जुन आ पहुंचा है और अब सुदर्शन के दर्शन दुर्लभ हो जाएँगे !' दूसरे बोले—'धन्य हैं भक्त सुदर्शन जो अपनी जान हथेली पर लेकर भी भगवान् की उपासना के लिए चल दिये ! संसार में ऐसे पक्के भक्त विरले ही हो सकते हैं !' तीसरे ने कहा—'देखो, क्या होता है ? भौतिक और आत्मिक

बल मे से किसकी विजय और किसकी पराजय होती है ?' चौथा बोला—'बात ठीक है। यह तो धर्म और अधर्म का संग्राम है। देखें, धर्म विजयी होता है कि नहीं।' इस प्रकार बातें करने वाले कभी सुदर्शन को और कभी अर्जुन माली को देख रहे थे।

दोनो के बीच का फासला कम होता जा रहा था। दोनों एक दूसरे के पास बढ़ते चले जाते थे। ज्यों-ज्यों दूरी कम होती जाती थी, त्यों-त्यो देखने वालों की घबराहट ज्यादा बढती चली जाती थी। सब के सब सांस रोक कर शीघ्र ही होने वाली घटना की प्रतीक्षा कर रहे थे।

इसी समय सेठ सुदर्शन ने जब अर्जुन माली को पास आया देखा तो आगे बढ़ना बंद कर दिया। उन्होंने अपने दुपट्टे से भूमि का प्रमार्जन किया और सीधे खड़े होकर ध्यान में लीन हो गये उन्होने भगवान् की साक्षी से, विघ्न शान्त न हो तो जीवन पर्यन्त के लिए अन्न-पानी आदि का, यहाँ तक कि अपने शरीर का भी त्याग कर दिया। अठारहों पापो का भी त्याग कर दिया। उन्होंने सोचा—अगर मैं इस उपद्रव से बच गया तो मुझे पूर्व की भाँति आचरण करने का आगार है। इतना सब करते हुए भी सुदर्शन कर हृदय में भय का लेश मात्र भी संचार नहीं हुआ। उनके साढ़े तीन करोड़ रोमों में से एक भी रोम में भय का आभास नहीं हुआ।

भाइयो ! हम भी तारीफ ऐसे ही महापुरुषों की करते हैं। हम ऐरे गैरे पंचकल्याणी लोगो की तारीफ नही करते।

इस बीच अर्जुन नजदीक आ पहुँचा। उसने सुदर्शन सेठ पर प्रहार करने के लिए मुद्गर को बड़े जोर से ऊँचा उठाया। लोगों ने समझा अब सुदर्शन चकनाचूर हुए! राजगृह का भूषण चला-मगर सुदर्शन तो पहले ही कह चुके थे—

धर्मो रक्षति रक्षितः।

जो धर्म की रक्षा करता है, उसकी रक्षा धर्म करता है। सुदर्शन ने धर्म की रक्षा की थी तो क्या धर्म उनकी रक्षा न करता ? यदि धर्म मे इतना सामर्थ्य न होता तो उसकी इतनी महिमा क्यों होती ? यह धर्म का ही प्रताप था कि अर्जुन ने मुद्गर का प्रहार करने के लिए हाथ ऊपर उठाया तो हाथ ऊँचा ही रह गया। उसने बहुत जोर मारा, अपनी सारी शक्ति लगा दी किन्तु हाथ नीचा नहीं हुआ। उसने चारों दिशाओं में घूम-घूम कर प्रयत्न किया, मगर कोई भी प्रयत्न कारगर नहीं हुआ। इसके विपरीत सुदर्शन के आत्मबल से पराजित होकर अर्जुन के शरीर मे प्रविष्ट हुआ देवता निकल कर भाग गया। देवता के निकलते ही अर्जुन धड़ाम से धरती पर जा गिरा।

जो लोग सुदर्शन सेठ के लिए पश्चात्ताप कर रहे थे कि अब उनके जीवन का अन्त आ पहुंचा है, उनके विस्मय की सीमा न रही। यह अद्भुत चमत्कार देख कर लोग चित्र-लिखित से रह गये। उन्हें अपनी आंखों पर विश्वास ही नहीं होता था। वे भ्रम में पड़ गये कि हम जो देख रहे है सो यह भ्रम है या सत्य है ? अचानक क्या से क्या हो गया ? मगर आखिर सत्य तो सत्य ही है !

सुदर्शन सेठ ने अर्जुन को धरती पर गिरते देखा तो वह समझ गये कि मेरे ऊपर आया हुआ विघ्न टल गया है। उन्होंने विधि पूर्वक सागारी संथारा पारा और अर्जुन पर प्रेम का हाथ फेरा। थोड़ी देर बाद अर्जुन होश मे आया। उसने सुदर्शन से पूछा-आप कौन हैं? उत्तर मिला—मैं सुदर्शन सेठ हूँ। भगवान् महावीर का भक्त हूँ। भगवान् का दर्शन करने जा रहा था कि रास्ते मे तुम मिल गये। कहो, चित्त स्वस्थ तो है?. तबियत ठीक है?

अर्जुन ने कहा—सब ठीक है। मैं भी आपके साथ भागवन् महावीर स्वामी के दर्शन करना चाहता हूँ। कोई बाधा तो नहीं है?

सुदर्शन—श्रमण भगवान पतितपावन हैं। वे जगत् के समस्त जीवों के बन्धु हैं, हितैषी है। तीन लोक के नाथ हैं। वे ऊँच-नीच राजा-रंक, नर-नारी यहाँ तक कि मनुष्यों और कीट-पतंगों को भी समभाव से देखने वाले महाप्रभु हैं। उनका द्वार किसी के लिए बन्द नहीं है, बल्कि उनके द्वार ही नहीं हैं। भगवान् के चरणों मे सब को समान रूप से स्थान मिलता है। वीतराग प्रभु की छत्रछाया मे आकर पापी से पापी पुरुष भी निष्पाप हो जाता है, निस्ताप हो जाता है और परम शान्ति के सुख का आस्वादन करता है। भगवान् का उपदेश किसी खास जाति के लिए नहीं है, किसी एक वर्ग के लिए नहीं है। जैसे सूर्य के प्रकाश से जीव मात्र लाभ उठा सकता है, उसी प्रकार भगवान् के उपदेश को प्राणी मात्र ग्रहण कर सकता है, उनके पथ पर चल सकता है। अतएव हे अर्जुन, किसी प्रकार की शंका न रखते हुए प्रभु को

शरण में चलो। प्रभु की शरण महा मंगल रूप है।

इस प्रकार आश्वासन देकर सेठ सुदर्शन अर्जुन माली को साथ ले प्रभु के समीप पहुंचे, भगवान् को वन्दना-नमस्कार करके बैठ गये। भगवान् ने उन्हें मानव-जीवन की क्षणविनश्वरता समझाई।

कुसग्गे जह ओस बिन्दुए, थोवे चिट्ठइ लंबमाणए।
एवं मणुआण जीवियं, समयं गोयम! मा पमायए॥

—श्री उत्तराध्ययन, अ. १०

मनुष्य की जिंदगी दूब की नोक पर लटकते हुए ओस के बूँद की तरह किसी भी क्षण समाप्त हो जाने वाली है। उसके खत्म होने में देर नहीं लगती। इसलिए हे भव्यो! तुम्हे जो उत्तम अवसर मिला है, उसका सदुपयोग करलो। अवसर का सदुपयोग किसमें है, यह एक विचारणीय प्रश्न है। बहुत-से लोग अधिक से अधिक विषयभोग भोगने में जीवन की सार्थकता समझते हैं, बहुत से ऐसे भी हैं जो धन-वैभव को ही अपने जीवन का आराध्य समझते हैं। मगर यह दोनों प्रकार के लोग भ्रम में पड़े हुए हैं, ऐसे लोगों को यह भान ही नहीं है कि उन्हें परलोक में जाना होगा। जो पूर्वोपार्जित पुण्य को इस जन्म में भोगते हैं, मगर आगामी जन्म के लिए पुण्य का संचय नहीं करते, उनका भविष्य घोर अंधकारमय है। वे परभव में जाकर किस प्रकार सुख-साता पाएँगे? ऐसे लोग ज्ञानी नहीं, अज्ञानी हैं। उनका अज्ञान उन्हें भयानक कष्टों में ले जायगा। ज्ञानी वह है जो पूर्वसंचित पुण्य को भोगता हुआ भी नवीन पुण्य का संचय

करता है और अपनी आत्मा के विकारों को दूर करने का प्रयत्न करता है। जो सिर्फ वर्तमान मे ही भूले हैं और भविष्य की उपेक्षा करते है, वे भविष्य मे सुखी नहीं हो सकते। अतएव विवेकशील पुरुषों को वर्तमान के साथ भविष्य का भी ध्यान रखना चाहिए। याद रक्खो, जैसा पहले किया था वैसा अब पाया है और जैसा अब करोगे वैसा भविष्य में पाओगे।

पूर्वजन्म का किया मिला अब करो वही फिर पाओगे।
अब गफ़लत के बीच रहे तो मित्र बहुत पछताओगे॥

पूर्व जन्म में जो किया था वह मिल गया है। अब जो करोगे उसका फल आगे मिलेगा। जो इस बात को ध्यान में नहीं रक्खेगा, वह क्या पाएगा? किये बिना क्या मिलने वाला है? फिर तो पश्चात्ताप ही हाथ आने वाला है।

एक आदमी गौना (आणा) लेने गया। रास्ते में खाने के लिए उसने पूड़ियाँ साथ मे ले लीं। चलता-चलता वह ससुराल के गाँव के बाहर पहुंचा। थकावट मिटाने के लिए किसी पेड़ की छाया में बैठ गया। वह सोचने लगा अब ससुराल आ गया है। पहुँचते ही दाल का गरम-गरम हलुवा मिलेगा! साथ में बँधी हुई इन पूड़ियों का क्या करूंगा? अब यह बेकार हैं। ऐसा सोच कर उसने अपने पास की पूड़ियां फेंक दी। फिर वह ससुराल वालो की दुकान पर पहुँचा। देखा दुकान बंद है। समझा, सब लोग घर पर होंगे। अतएव वह घर पर आया तो घर भी बंद था। वहाँ भी ताला लगा हुआ था। पड़ौस वालो से पूछताछ करने पर पता चला कि ससुराल के सभी लोग, तीन दिन हुए, बाहर

गये हैं। उसे बड़ी निराशा हुई। आखिर भूखा रह कर अपने घर लौटा।

जो मनुष्य पूर्वोपार्जित पुण्य को भोगोपभोग, मौज-मजा आदि करके नष्ट कर देते है और आगे का विचार नहीं करते, उनकी दशा ऐसी ही होती है, जैसी इस पाहुने की हुई! विवेकवान् व्यक्ति अपनी पुण्य की कमाई को भोगते समय भविष्य का भी विचार करता है। वह पुण्य कर्म करके नवीन पूंजी भी इकट्ठी करता है। मगर जो अविवेकी है, वह वर्तमान में ही मस्त रहता है। उसे आगामी भव का खयाल नहीं आता। वह सोचता है कि वर्तमान मे जो सुख मिले हैं, उन्हे भोग लूं। कौन जाने पर-लोक है भी या नहीं? होगा तो आगे की आगे देखी जायगी। भविष्य के सुख के लिए अभी के सुखो का परित्याग क्यो करूँ। मगर इस प्रकार सोचते-सोचते जब जीवन का अन्तिम समय आ उपस्थित होता है और परलोक के लिए प्रयाण करने का अवसर आता है तो उसकी आत्मा कॉप उठती है। रोम-रोम में घबराहट होती है। वह चिन्ता, विषाद और पश्चात्ताप से जलने लगता है। मानसिक वेदनाओं का शिकार हो जाता है। चिन्ता के कारण पल भर भी शान्ति नहीं पाता। वह रोता कलपता और चीखता चिल्लाता हुआ अपने प्राणों का परित्याग करता है। इस तरह धर्म-हीन जीवन व्यतीत करके, मृत्यु को प्राप्त होकर वह नरक का अतिथि बनता है।

जीव-दया पाली नहीं रे, पाली नहीं छह काय।
मोत्या वाला मानवी, इतो धक्का नरक में खाय॥

जिसने जीवों पर दया नहीं की, परोपकार नहीं ईश्वर का भजन नहीं किया, अष्टमी और चतुर्दशी को नहीं किया, शील नहीं पाला, दान भी नहीं दिया और व्यर्थ गवाँ दिया, वह जब इस पर्याय को त्याग कर जायगा तो सू के पाहुने की तरह दुःख पायेगा। अगर साथ मे पुण्य जायगा तो सुख पायेगा। मगर यह सुख कैसे मिलेगा ?

जीव-दया पाली सही रे पाली है छह काय
बसतां घर को पाहुनो वो तो मीठा भोजन पाय

भाइयो ! जो ज्ञानी पुरुष जीवों पर दया करते हैं षट्काया के जीवो की रक्षा करते हैं, वे बसते घर के मेहम तरह मधुर फल पाते है। कल्पना कीजिए, कोई लखपति मनुष्य ससुराल जाता है। साथ मे पाँच आदमी भी है खाने-पीने का सामान भी है। बादाम की चक्कियाँ हैं, जामुन है, रसगुल्ले है, कचौड़ियाँ और पूड़ियाँ हैं। सब गांव के बाहर पहुंचते है। हाथ-मुँह धोकर जीमने बैठते हैं मे ससुराल वालों को मालूम होता है। साले, ससुर और लोग मोटरें ले-लेकर उनके स्वागत के लिये आते हैं और हैं—पधारिये, पधारिये आपका स्वागत है !

ससुराल वाले अपने जामाता को बढ़िया सजे हुए में उतारते हैं जिसमे टेबुल, कुर्सियाँ आदि उत्तम फर्नीचर स्थान रक्खा है। बिजली के पखे चल रहे है। उधर जीम लिए बादाम का सीरा और दूसरी मिठाइयाँ तैयार हो रह समय पर आनन्द के साथ भोजन होता है।

कहो भाई ! यह फल किस कारण मिला है ? जिसने जीवों की दया पाली, दान दिया, शील पाला, तपस्या की, जो दुखियों का दुःख दूर करने में तत्पर हुआ, अनाथों का दुःख मिटाया, उन्हे पूंजी आदि देकर व्यवसाय-धंधे में लगाया, जिसने अपने देश और समाज को फायदा पहुँचाया और परोपकार किया, वह यहां से शरीर त्याग कर गये तो वहां स्वर्ग में भी पाहुने की तरह हैं। उन्हे वहां भी मधुर फल की प्राप्ति हुई। इस प्रकार जो इस जीवन में सुकृत करता है वह बसते घर के पाहुने की तरह परभव मे सुख का भाजन बनता है। और जो इस भव में सुकृत नहीं करता वह सूने घर के पाहुने की तरह दुःख उठाता है।

बिगड़ी खोपड़ी के लोग कहते हैं—आगे की किसने देखी है ? कौन देख कर आया है कि परलोक है या नहीं ? पर अंधे भाई ! जिन्होंने देखा है उन्होंने तो परलोक बतलाया है ! ऐसी स्थिति में धर्मध्यान नहीं करोगे तो पछताओगे। हे मित्र। तुझे फिर पश्चात्ताप करना पड़ेगा। सूने घर का पाहुना बनना पड़ेगा और अपना-सा मुँह लेकर लौटना पड़ेगा। और दूर क्यों जाते हो ? यहीं देख लो न; जो पूर्व जन्म में पुण्य उपार्जन करके नहीं आये हैं, जो खाली हाथ आये हैं, पहनने के लिये धोती तक नसीब नहीं होती। वे अपनी लज्जा ढँकने को चींथड़ा भी नहीं पाते !

कहो भाई ! क्या लाये ? यों ही खाली हाथ हिलाते हुए आ गये ! औरत कहती है—घाघरा फट गया है। मर्द कहता है—पास में फूटी कौड़ी भी नहीं है ! क्या करूँ, कहां से लाऊँ ? यह

सुनकर औरत को क्रोध आ जाता है। वह जली-कटी बातें सुनाती है। कहती है—ऐसा था तो कुँवारे ही क्यों नहीं रह गये ? शादी करने का शौक क्यों चर्राया था ? जानते नहीं थे कि औरत आएगी तो उसे घाघरा भी बनवाना पड़ेगा ! वह नंगी नहीं रहेगी। घाघरा भी नहीं बनवा सकते थे तो अपना अकेले का ही पेट पाल लेते ! औरत का यह उत्तर सुनकर कई मर्दों के कलेजे में आग लग-जाती है। कई जो समझदार और इज्जतदार होते हैं, रोने लगते हैं। कई जगह ऐसा हाल होता है। इसका असली और भीतरी कारण कभी सोचा है ?

हे मालदार लोगो ! तुम अपने धन के घमंड में बावले होकर मत फिरो। अगर तुम्हे अगले जन्म मे पूर्वोक्त परिस्थिति से बचना है और इस जीवन को भी सुख-शान्ति के साथ व्यतीत करना है तो जल्दी सावधान हो जाओ। गरीबों की सुध लो। अगर तुम अपने इस कर्त्तव्य से विमुख होते हो तो याद रक्खो परलोक में तुम्हारी दुर्दशा तो होगी ही, इस लोक में भी शान्ति नहीं पा सकोगे। आज की दुनिया में बहुभाग मनुष्य गरीब है और थोड़े-से पूंजीपति हैं। गरीबों में एक नयी चेतना का विकास हो रहा है। उनके हृदयों मे भयानक आग सुलग रही है। उस आग में से ऐसी ज्वालाएँ फूटने वाली हैं, जिनमें तुम्हारी शान्ति भस्म हो जायगी। उस समय कोई भी शक्ति तुम्हारी सहायता नहीं करेगी। मैं तुम्हें दुराशीष नहीं दे रहा हूँ, आने वाले भविष्य का चित्र तुम्हारे सामने खींच रहा हूँ। इस प्रयोजन से कि आज तुम चाहो तो उस भयानक स्थिति से अपना बचाव कर सकते हो। बचाव का एक मात्र उपाय यही

है कि स्वार्थ में अंधे मत बनो। गरीबों को अधिक गरीब बना कर अपनी अमीरी बढ़ाने के तरीके छोड़ दो। ऐसी परिस्थिति पैदा करो जिससे गरीबों का असंतोष दूर हो सके, वे शान्ति और सन्तोष के साथ अपना जीवन व्यतीत कर सकें। मत समझो कि हमारा पेट भरा है तो दुनिया का पेट भरा है। उनकी असली स्थिति पर विचार करो। हृदय में दया की भावना रक्खो। गरीबों की कुटिया में जाकर देखो, उन्हें छाती से लगाओ और उनके अभावों को दूर करो। ऐसा करने में गरीबों का ही नहीं, तुम्हारा भी हित है। मैं कहता हूँ कि ऐसा करने में ही तुम्हारा हित है। गरीबों से शिक्षा ग्रहण करो। ऐसा कोई काम न करो जिससे तुम्हें भी आगे कष्ट उठाना पड़े।

खयाल आता है मुझे दिलजान तेरी बात का,
फिक्र तुझको है नहीं आगे अंधेरी रात का।
यौवन तो कल ढल जायगा दरयाव है बरसात का,
दो बेर कोई न खाएगा इक रोज तेरे हाथ का॥

जब अज्ञानी जीव अपने अहित के कार्यों में प्रवृत्त होते हैं, और कल्याण के पथ से विमुख होते हैं, तो ज्ञानी पुरुषों का स्वभाव से ही दयामय हृदय पिघलने लगता है। वे उन्हें समझाते हैं—मुझे बड़ा तरस आता है—कि तू कुछ नहीं सोचता है! आगे अन्धकार है और तू आंखें मोंचकर चलता जा रहा है। तुझे खयाल ही नहीं है कि तू ठोकर खा जायगा! तू अपनी जवानी के नशे में झूम रहा है। तुझे नहीं मालूम कि यह जवानी बरसाती नदी है, जिसका वेग बहुत दिनों तक कायम नहीं रहने वाला है।

यह सोडा वाटर के उफान के समान है। देखते ही देखते बीत जाती है। अरे, जवानी क्या, सारे जीवन का ही यही हाल है।

भगवान् ने अपने उपदेश में आत्मा का स्वरूप और जीवन की अनित्यता पर प्रकाश डाला होगा। आत्मकल्याण के उपायों का दिग्दर्शन कराया होगा। सुदर्शन सेठ और अर्जुन माली भगवान् का प्रभावशाली प्रवचन सुनकर गद्‌गद हो गये। प्रवचन समाप्त हुआ तो सुदर्शन भगवान् को वन्दना-नमस्कार करके लौट गये। अर्जुन माली ने हाथ जोड़ कर कहा—दीनानाथ मैं अत्यन्त पतित हूँ। मैंने अपने मस्तक पर पापों का पहाड़ रख छोड़ा है। प्रभो! आप अन्तर्यामी हैं। आपसे क्या छिपा है? मेरी जिन्दगी कितनी कलुषित है, कितनी पापमयी है। घोर से घोर पाप करके मैंने अपने जीवन को बर्बाद कर लिया है। आज मैं सारे संसार की घोर घृणा का पात्र हूँ। मैं स्वयं अपनी ही नजरों में घृणित बन गया हूँ। इतने बड़े संसार में मेरे लिए कहीं आश्रय नहीं है। कौन मुझे सहारा दे सकता है? मेरे पिछले जीवन को याद करके लोग मुझे दुत्कारेंगे और ठुकराएँगे! प्रभो! दुत्कार, तिरस्कार, घृणा और अपमान के सिवाय और क्या पाने की मैं आशा कर सकता हूँ? मैं इन्हीं का पात्र हूँ। मैं सत्कार और सन्मान नहीं चाहता, प्रतिष्ठा नहीं चाहता। परन्तु अपने पापों का प्रक्षालन करना चाहता हूँ। हे पतित पावन! इस विश्व में आपके अतिरिक्त और कौन है जो मुझे गले लगा सके? आपके सिवाय मेरे लिए कोई शरण नहीं है, त्राण नहीं है। हे धर्म धुरन्धर! मैं आपकी शरण चाहता हूँ। आपके चरणों की नौका का आश्रय लेकर संसार-सागर को पार करना चाहता हूँ।

प्रभो ! प्रसाद करो। अगर मेरी आत्मा का उद्धार हो सकता हो तो दया करो। मुझे मंगल-मार्ग पर ले चलो। मुझे आत्मा का कालुष्य धो डालने का उपाय बताओ। मुझे अपने शिष्य के रूप में स्वीकार करो। मैं मुनि बनना चाहता हूँ।

महामहिम प्रभु महावीर ने धीर, गम्भीर स्वर में कहा-आयुष्मन् ! कर्मों की गति अनोखी है। उनके प्रभाव से आत्मा कलुषित, अति कलुषित बन जाता है। फिर भी आत्मा अपने मूल स्वरूप में तो दिव्य ज्योति का ही पिण्ड है। उसका स्वरूप प्रत्येक दशा में स्थिर रहता है जब कर्मों की प्रबलता हट जाती है तो आत्मा का स्वरूप उभर आता है। ज्यों ज्यों कर्मों का लेप क्षीण होता जाता है, त्यों त्यों आत्मा का सहज प्रकाश बढ़ता चला जाता है। अतएव प्रत्येक आत्मा में परिपूर्ण विकास की सम्भावनाएँ छिपी हुई हैं। तुम्हें निराश नहीं होना चाहिए।

अर्जुन ! अपने पापों का विचार तो करना चाहिये, मगर आत्मा के निष्कलंक स्वरूप को भी नहीं भूलना चाहिए। आत्मा की अनन्त शक्ति पर भी विश्वास रखना चाहिए। मैं अपने भीतर जो शक्तियाँ पाता हूँ, वही सब तुम्हारे भीतर भी देख रहा हूँ। मुझमें और तुममें कोई मौलिक अन्तर नहीं है। अन्तर है कक्षा का। मैंने अपने स्वरूप का विकास कर लिया है और तुम्हें अब करना है। इसलिए हे वत्स ! निराश न होओ। पापियों और पतितों के लिए धर्म आधार है ! धर्म के सहारे ही वे ऊँचे उठते हैं। धर्म के स्नेहमय गोद में सब के लिए स्थान है। तुम अपना कल्याण करना चाहते हो, जीवन को पवित्र बनाना चाहते हो और अपने पहले के पापों का प्रक्षालन करना चाहते हो तो आओ

मैं तुम्हें पथ-प्रदर्शन करूँगा। हे देवों के प्यारे! धर्म-कार्य में विलम्ब न करो।

भगवान् के मुखारविन्द के फूल से कोमल वचनों को सुन कर अर्जुन को कितना आश्वासन मिला होगा! उसमें कैसी आत्मश्रद्धा जगी होगी

अर्जुन उसी समय साधु-वेष धारण करके नम्र भाव से भगवान् के सामने खड़ा हो गया। उसने फिर प्रार्थना की--प्रभो! मुझे अपने चरणों में ग्रहण कीजिए, मेरा उद्धार कीजिए। मैं आज कृतार्थ हुआ। अनुग्रह कीजिए।

भगवान् ने अर्जुन माली को मुनि-दीक्षा दी। दीक्षा लेने के बाद अर्जुन मुनि ने भगवान् से निवेदन किया-भंते! मैंने अपने पिछले जीवन मे बहुत पाप किये हैं। पापों का वह भारी बोझ मेरे लिए असह्य हो रहा है। मैं उसे शीघ्र ही हल्का करना चाहता हूँ। तप ही उसका उपाय है। अतः मैं जीवन पर्यन्त बेले-बेले की तपस्या करना चाहता हूँ।

भगवान् ने तपस्या करने की आज्ञा दे दी। तपस्या पूरी होने पर अर्जुन मुनि उसी नगर में गोचरी के लिए जाते हैं। मगर उन पर नजर पड़ते ही लोगों का वैर भाव उमड़ पड़ता है। उनमे बदला लेने की भावना उत्पन्न होती है। कोई पत्थर मारता है, कोई लाठी लगाता है, कोई गालियाँ देता है। कोई आहार देता है और कोई नहीं देता। कोई कहता है इसने मेरी माँ को मार डाला है, कोई कहता है इसने मेरे बाप का वध किया है, कोई कहता है इसने मेरे पुत्र के प्राण लिये हैं, कोई कहता है यह मेरे

भाई का काल है लोग तरह तरह से मुनि को सताते हैं। मगर अर्जुन मुनि तो प्रायश्चित्त करने को उद्यत ही थे। उन्होंने ऐसी क्षमा और समता धारण कर ली कि चूं तक नहीं करते। इतना ही नहीं, वे अपने मन मे लेश मात्र भी दुर्भाव नहीं उत्पन्न होने देते। उलटा यही सोचते है इन बेचारों का क्या अपराध है? अपराध तो मेरा है। मैंने इनके निर्दोष आत्मीय जनों का वध किया है और इन लोगों को संताप पहुँचाया है। यह चाहें तो अपने कुटुम्बी के प्राणों के बदले मेरे प्राण ले सकते हैं, मगर इनकी सज्जनता है कि यह दुर्वचन कह कर अथवा थोड़ी-सी मार-पीट करके ही मुझे छोड़ देते हैं।

इस प्रकार तपोमय और क्षमासय जीवन व्यतीत करते हुए अर्जुन मुनि को छह माह हो गए। तब एक दिन उन्हें केवल-ज्ञान और केवलदर्शन की प्राप्ति हो गई। वे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो गये। भगवान् महावीर की शरण ग्रहण करके उन्होंने मानव-जीवन की सर्वोत्कृष्ट सिद्धि प्राप्त की।

भाइयो! सुदर्शन सेठ की कथा सुनकर आपने क्या नतीजा निकाला? अर्जुन माली के वृत्तान्त से आपने कौन सी शिक्षा ग्रहण की? आपके मनोरंजन के लिए मैंने यह कथानक नहीं सुनाया है। इसमें से सार लेकर आपको अपने जीवन को सुधारना है। आज स्तुति में कहा गया था कि जो भव्य ज्ञानी भगवान् का आश्रय लेते हैं, उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं सताता। स्तुति में जो बात कही गई है. चरित से उसी का समर्थन किया गया है। उस समय राजगृह नगर में बड़े से बड़ा भय अर्जुन माली का ही था। मगर भगवान् के भक्त सुदर्शन सेठ

उस भय से तनिक भी भयभीत नहीं हुए। उन्होंने भगवान् के नाम का स्मरण किया तो सारा भय दूर हो गया। विशेषता तो यह है कि भगवान् के स्मरण से न केवल सुदर्शन का ही, वरन् सभी लोगों का भय जाता रहा। सर्वत्र निर्भयता और शान्ति का वातावरण फैल गया। सचमुच भगवान् के नाम की महिमा अपरिमित है। उसमें अनन्त सामर्थ्य है। भगवान् के नाम से सब संकट सहज ही टल जाते हैं। समस्त विघ्न समूल नष्ट हो जाते हैं।

कई लोग मन में सोचते होंगे कि हम भगवान् का नाम रटते रहते हैं, फिर भी हमारे संकट क्यों नहीं टलते? उन्हें समझना चाहिए कि भगवान के नाम-स्मरण में तो अपूर्व शक्ति है, मगर फल की प्राप्ति तो उसी को होती है जिसके अन्तःकरण में दृढ़ विश्वास हो। मन ढीला है, विश्वास नहीं है और भय से हृदय कांप रहा है और सिर्फ जीभ भगवान् का नाम बोल रही है तो काम नहीं चल सकता। बगुला भक्ति से दूसरो को ठगा जा सकता है, आत्मा को और परमात्मा को नहीं ठगा जा सकता। अकसर लोग दिखावटी भक्ति करते हैं, मगर उस नकली भक्ति से नकली ही फल मिलेगा वास्तविक फल कैसे मिल सकता है?

एक आदमी सौ रुपया नौली में बांध कर दूसरे गांव को रवाना हुआ। रास्ते में चार ठग महात्माओं का भेष बनाकर बैठ गये। जब वह आदमी उनके पास से निकला तो रुपयों कि खनखनाहट हुई। ठगों में से एक ने कहा-'दामोदरम्, दामोदरम्'। ['दामोदर का अर्थ श्रीकृष्ण है और व्यंग मे रुपया अर्थ भी है।] दूसरा ठग बोला-'वृन्दावन, वृन्दावन'! तात्पर्य यह था कि जरा

सुनसान वन में चलने दे। तीसरे ने कहा—'कृष्ण कृष्ण'! फिर चौथा बोला—'हर हर'!

चारों ठगों के मुख से यह बातें सुनकर वह आदमी उनके पास गया। चौथे के सामने जाकर उसने नौली कमर से खोल-कर रख दी। दंडवत करके वह बोला—मेरी भक्ति है, कृपा करके इसे स्वीकार कीजिए। मगर मेरी पत्नी की भक्ति के मुकाबिले मेरी भक्ति तुच्छ है। वह आपकी भक्ति देखेगी तो लाखों का जेवर आपके चरणों पर निछावर कर देगी।

ठग यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा—ऐसी भक्ति-परायणा नारी को मैं अवश्य दर्शन दूंगा। तुम अपनी नौली संभाल लो। मुझे इसका क्या करना है?

राहगीर ने हाथ जोड़ कर कहा—मैं तो पुण्य कर चुका हूँ। अब इसे नहीं ले सकता। हाँ, आपकी आज्ञा से मैं इसे अपने पास रख लेता हूँ मगर है यह आपकी ही।

राहगीर ने नौली अपने पास रखली। वह चारों को साथ लेकर अपने घर लौटा। स्त्री ने उन्हें देखा तो दंडवत किया और अपना सारा जेवर खोल कर भेंट कर दिया। इसके बाद घर-मालिक ने कहा—महाराज! यहीं प्रसाद पाने की कृपा कीजिए। जब महाराजों ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली तो उन्हें नसैनी से ऊपर के मंजिल पर चढ़ा दिए और कहा—मैं प्रसाद लेकर अभी आता हूँ। इतना कह कर और अपनी स्त्री के कान में धीमे-से कोई बात कह कर वह बाहर चला गया। उसके जाते ही स्त्री ने

नसैनी हटा कर अलग कर दी। ठगों को खयाल ही न हुआ कि कुछ गोलमाल हो रहा है।

घर-मालिक थोडी देर बाद ही पुलिस को साथ लेकर आ पहुँचा और बोला-बाबाजी ! सावधान !

बाबाजी ने पुलिस को देखा तो चेहरे का रंग उड़ गया। है बच्चा, हैं बच्चा कह कर दीनता दिखलाने लगे। पुलिस ने हिरासत में ले लिया। तलाशी ली तो सब के पास छुरे निकले। पुलिस ने खूब पिटाई की और अन्त में उन्हें कैदखाने की हवा खानी पड़ी।

कहने का प्रयोजन यह है कि नकली महात्मापन या दिखावटी भक्ति से काम नहीं चलता। नकली चीज असली चीज का काम नहीं दे सकती। सुदर्शन सेठ के मन में दृढ और सच्ची श्रद्धा थी, इसी कारण अर्जुन माली उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सका बल्कि वह स्वयं सुधर गया।

जम्बूकुमार की कथा:—

जम्बूकुमार के हृदय मे भी सच्ची श्रद्धा उत्पन्न हुई थी। उनके चित्त पर वैराग्य का पक्का रंग चढा था। जब प्रभव चोर उनके पास पहुँचा और स्तंभित करने की विद्या सिखलाने का आग्रह करने लगा तो वह बोले-प्रभव ! मैंने ऐसी कोई विद्या नहीं सीखी है। सीखने की कभी इच्छा भी नहीं की है। विद्या, मंत्र या जादू-टोने से आत्मा का वास्तविक कल्याण नहीं होता। यह सब संसार में भटकाने वाली चीजें हैं। अतएव इनकी तरफ मेरी कोई रुचि

नहीं है। न मैं ऐसी विद्या सीखना चाहता हूँ और न जानता ही हूँ। मनुष्य भव अनमोल है। ऐसे अनमोल रत्न को वृथा गंवाना उचित नहीं है। यह जन्म पाकर कोई उत्तम कार्य करना चाहिए जिससे इह-लोक और परलोक दोनों का सुधार हो।

प्रभव ! परोक्ष वस्तु में भ्रम होना सहन किया जा सकता है, मगर आँखों दिखाई देने वाली वस्तु को भी उलटा समझना कहाँ तक उचित है ? तुम, हम और सभी प्रत्यक्ष देखते हैं कि कोई भी सम्पत्ति पर-भव में साथ नहीं जाती। सिर्फ पाप और पुण्य ही साथ जाता है। फिर धन और सम्पत्ति के लिए पापों का उपार्जन करना क्या बुद्धिमता है ? नहीं, यह अविवेक है, मूर्खता है।

एक आदमी नींद में सो रहा है। वह स्वप्न देखता है-मैं छत्र-पति बन गया हूँ। तब उसकी प्रसन्नता का पार नहीं रहता। वह हाथियों और घोड़ों की फौज खड़ी देखता है। अपने आपको राजा समझता है। मगर जरा-सी आहट पाकर उसकी नींद भंग हो जाती है और तब देखता है कि सामने कुछ भी नहीं है। यही हाल हम लोगों के जीवन का है। जब तक सांस चल रही है, हृदय में धड़कन हो रही है, तब तक आदमी समझता है कि मैं राजा हूँ, महाराजा हूँ, सेठ हूँ, सम्पत्ति का स्वामी हूँ। पर ज्यों ही सांस रुकी, हृदय की धड़कन बंद हुई कि सभी कुछ नदारद हो जाता है ! ऐसी क्षणिक सम्पत्ति और विभूति के लिए आत्मा के कल्याण में बाधा डालना क्या उचित है ?

प्रभव ! मैंने आत्मा के कल्याण के पथ पर चलने का निश्चय किया है। कल मैं साधु बनने वाला हूँ। फिर मैं तुम्हारी

संसार में भटकाने वाली विद्याएँ सीख कर क्या करूँगा ? मैं तो तुमसे भी कहता हूँ भाई, कि अपनी वृत्ति को बदल डालो। तुम चतुर हो, निर्भीक हो, साहसी हो। मगर तुम्हारे यह सब गुण गलत रास्ते पर हैं। तुम इनका दुरुपयोग कर रहे हो। तुम्हारे भीतर जो शक्ति विद्यमान है, उसका अगर सदुपयोग करो तो महान् बन सकते हो। जगत् आज तुम्हारे नाम से घृणा करता है। यदि तुम सही रास्ते पर आ जाओ तो जगत् सन्मान करेगा। क्यों चक्कर में पड़े हो ? कब तक सोते रहोगे ? जागो और भीतर के नेत्रों से सचाई को देखो।

प्रभव विचारों में डूबने-उतराने लगा। उसे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि कुमार कल साधु बनेंगे ! वह सोचने लगा—अभी-अभी इनका विवाह हुआ है, एक से एक सुन्दरी स्त्रियाँ इन्हें मिली हैं और इतना विराट वैभव प्राप्त हुआ है, फिर भी कहते हैं कि मैं कल साधु बनूंगा ! एक मैं हूँ जो धन के लिए मारा-मारा फिरता हूँ ! नीति-अनीति, पाप-पुण्य किसी की परवाह नहीं करता ! आखिर प्रभव ने कहा—इतनी ऋद्धि पाकर भी आप साधु बन रहे हैं, यह बात मेरी समझ में नहीं आ रही है !

जम्बूकुमार बोले—तुम यह लक्ष्मी देखकर ललचा रहे हो, मगर यह नहीं सोचते कि लक्ष्मी से कितना सुख मिलता है और कितना दुःख प्राप्त होता है ? लक्ष्मी का उपार्जन करने में कष्ट, उपार्जन करके उसकी रक्षा करने में कष्ट और रक्षा करने पर भी उसके चले जाने में कष्ट ! इस तरह लक्ष्मी आदि, अन्त और मध्य में कष्ट ही कष्ट देने वाली है। उससे अत्यल्प सुख की प्राप्ति

होती भी है तो अनन्त दुःख भी प्राप्त होता है। इस संबंध मे मधुबिन्दु का उदाहरण दिया जाता है।

एक काफिला दूसरे देश जाने को रवाना हुआ जंगल का मामला था, अतः काफिले के सब लोग साथ-साथ ही चलते थे। रास्ते में एक जगह डेरा डाला गया। उनमे से एक आदमी सोना चाहता था, मगर कोलाहल के कारण उसे वहाँ नींद नहीं आई। वह कुछ दूर जाकर सो गया। थका हुआ था–गहरी नींद आ गई। सुबह काफिला जल्दी रवाना हो गया और वह आदमी सोता ही रह गया। जब उसकी नींद खुली तो काफिला काफी दूर निकल चुका था। वह पछताता और घबराता हुआ पीछे-पीछे भागा। मगर उसे एक हाथी मिल गया और उस हाथी ने उसका पीछा किया। उसे पास ही वड़ का एक पेड़ दिखाई दिया अपनी जान बचाने के लिए वह उसी पेड़ पर चढ़ गया। वह एक टहनी को पकड़ कर लटक गया, क्यों कि नीचे कुआ था और हाथी की सूंड वहाँ तक पहुंचती नहीं थी। उसने कुएँ की तरफ देखा तो उसके भीतर एक अजगर मुँह फाड़े बैठा था। ऊपर से दो चूहे उस टहनी को कुतर रहे थे। हाथी पेड़ को उखाड़ने मे जुट गया। पेड़ में मधु--मक्खियों का एक छत्ता था पेड़ के हिलनें से मक्खियां उड़ी और उस आदमी को काटने लगीं।

इस प्रकार वह आदमी चारों ओर से संकट में पड़ा हुआ था। मगर इतने दुःखों के बीच उसे एक सुख भी था। सुख यह कि पेड़ के हिलने से छत्ते से रह–रह कर शहद के बूंद टपक रहे थे और वह उन बूंदो को अपने मुँह में ले-लेकर चाट रहा था। वह मनुष्य इस नगण्य से सुख के लिए प्राणाघातक संकटों की

परवाह नहीं कर रहा था। हाथी पेड को उखाड़ने में लगा है, कदाचित् वह न भी उखाड़ सके तो चूहे उस डाल को कुतर रहे हैं। पेड़ गिरा या डाली टूटी तो उसका कुएँ मे गिरना अनिवार्य है और कुएँ में अजगर मुँह फाड़े तैयार बैठा है! वह जितनी देर नहीं गिरा है उतनी देर भी मधु मक्खियां उसे डँस ही रही हैं! फिर भी उसे इन सबकी चिन्ता नहीं है।

संयोग से उसी समय एक विद्याधर उधर से निकला। विद्याधर की पत्नी उसके साथ थी। दोनो विमान में बैठे उड़ रहे थे। विद्याधर की पत्नी ने सब ओर से घोर मुसीबतों मे फँसे हुए उस आदमी को देख कर अपने पति से कहा—यह आदमी भयानक संकटों में फँसा है। इसे बचाना चाहिए। नाथ! मनुष्य ही मनुष्य की रक्षा नहीं करेगा तो उसकी मनुष्यता कैसे टिकेगी ?

होकर मनुष्य मनुष्य की करते दया अगर नहीं।
फिर कहां रही मनुष्यता कहती है दुनिया सारी ॥

जो मनुष्य मुसीबत मे पड़े मनुष्य की रक्षा नहीं करता वह वास्तव मे मनुष्य नहीं है। मैंने रतलाम मे अपनी आंखों से देखा था कि एक कुत्ते ने किसी पालतू हिरन को पकड़ लिया। कितने ही लोगों ने उसे लकड़ियों से मारा मगर कुत्ते ने उसे नहीं छोड़ा, नहीं छोड़ा। तब एक गाय आई। उसने अपनी पूंछ ऊँची करके कुत्ते और हिरन के बीच में सींग लगाए। ऐसा करने से दोनों अलग-अलग हो गये।

भाइयो! जरा विचार करो कि जिसे आप पशु कहते हैं, उसमें भी प्राणियों की रक्षा करने की कितनी उग्र भावना है!

फिर मनुष्य में कैसी भावना होनी चाहिये ? मनुष्य में अधिक विवेक होता है और इसी कारण मनुष्य तमाम जीवधारियों में श्रेष्ठ समझा जाता है। जब वह सर्वश्रेष्ठ प्राणी है तो उसका कर्त्तव्य भी सर्वश्रेष्ठ होना चाहिए। मनुष्य होकर भी जो अपने बुद्धिबल का उपयोग सिर्फ स्वार्थ के लिए करता है और दूसरों की विपत्ति के समय भी सहायता नहीं करता, सच पूछिए तो वह पशुओं से गया-बीता है।

तो विद्याधर की पत्नी ने कहा—पतिदेव ! इस मनुष्य की रक्षा करो। विद्याधर ने भी उसकी रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझा। उसने सोचा—साधारण मनुष्यों में विमान बनाने या चलाने की योग्यता नहीं है। मुझे पुण्य के योग से यह विद्या प्राप्त हुई है तो इसका सदुपयोग करना ही चाहिए। इस प्रकार विचार कर विद्याधर अपना विमान उस आदमी के पास ले गया। उसने कहा—भाई, भयानक संकट तेरे ऊपर मँडरा रहे हैं। तू मेरे विमान में आ जा। सहज ही छुटकारा पा जायगा। मगर वह मनुष्य कहता है—'जरा ठहर जाइए। शहद का वह बूंद आ रहा है। उसे चाट लेने दीजिए।' विद्याधर ने कुछ देर प्रतीक्षा की। मगर वह फिर दूसरे बूंद की प्रतीक्षा करने लगा। इस प्रकार वह विमान मे नहीं आया। आखिर विद्याधर चला गया। थोड़ी-सी देर में चूहों ने डाल काट दी। वह कुएँ में जा गिरा और अजगर उसे खा गया।

हे प्रभव ! गुरु महाराज ने कहा है कि मनुष्य का शरीर वृक्ष के समान है। काल रूपी हाथी शरीर को गिराने नष्ट करने का उद्योग कर रहा है। रात और दिन रूपी दो चूहे आयु रूपी

डाली को निरन्तर काट रहे हैं। नीचे नरक-गति रूपी कुआ है और क्रोध, मान, माया, लोभ रूपी अजगर है। कुटुम्ब-परिवार रूपी मक्खियां हैं। इन सब संकटों के बीच शहद का बूंद चाटने के समान नगण्य-सा सांसारिक सुख है। संसारी जीव उस अल्प सुख में भविष्य के दुःखों को भूला हुआ है। सद्गुरुरूपी विद्याधर जीव को नरक-निगोद के दुःखों से उबारने के लिए धर्मरूपी विमान उपस्थित करते हैं। मगर विषय-सुख का लोभी संसारी प्राणी कहता है कि अभी जल्दी क्या है ? थोड़ा-सा सुख और भोग लें, फिर धर्म का सेवन कर लेंगे। मगर इसी बीच आयु समाप्त हो जाती है और संसारी जीव नरक का मेहमान बनता है।

संसार में दुःख अनन्त हैं और सुख अत्यल्प है, यह बात शास्त्र में इस प्रकार कहा है:—

खणमित्त सुक्खा बहुकाल दुक्खा,
पगामदुक्खा अणिगामसुक्खा।
संसारमोक्खस्स विपक्खभूया,
खणी अणत्थाण उ कामभोगा॥

—उत्तराध्ययन, अ. १४, गा, १३

भव्य जीवो ! काल के आधार पर तुलना की जाय तो प्रतीत होगा कि कामभोग क्षण भर सुख देने वाले हैं और चिर-काल पर्यन्त दुःख देने वाले हैं। कामभोगों से जो सुख प्राप्त होता है वह बहुत ही अल्प है और दुःख असीम है बहुत अधिक है। इन काम भोगों में आसक्त होकर ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती मर कर सातवें

नरक में गया ! यह विषय भोग संसार में भी हितकारी नहीं है और मोक्ष के अक्षय-सुख में बाधक तो हैं ही। संसार में जितने भी अनर्थ हैं उन सब के मूल को खोजा जाय तो प्रतीत होगा कि विषयभोग ही से सारे अनर्थ उत्पन्न होते हैं।

जम्बूकुमार प्रभव से कहते हैं—हे प्रभव ! आखिर क्या सोच कर इस संसार में अनुरक्त हो रहे हो ? प्रबल पापों का उपार्जन करने के साथ अगर थोड़ी-सी धन-संपदा का भी उपार्जन कर लोगे तो क्या तुम्हारा परलोक सुधर जायगा ? नहीं, तुम्हारा परभव कष्ट परिपूर्ण बनता जा रहा है। उस धन-सम्पदा से तुम न इस लोक में सुख पाते हो और न परलोक में ही सुख पा सकोगे ! इसलिए तुम इस प्रपंच से बाहर निकलो। यह झूठा माया है। मैं प्रातःकाल होते ही सब कुछ त्याग कर साधु बन रहा हूँ और तुम से भी यही कहता हूँ कि मनुष्यभव पाया है तो इसे सफल बना लो।

जम्बूकुमार का कथन सुनकर प्रभव ने कहा—कुमार ! मैं चोर हूँ और निर्दयतापूर्ण कार्य भी किया करता हूँ। मगर यह सब परिस्थितियों का चक्कर है ! उन्होंने मुझे ऐसा करने के लिए बाध्य किया है । मेरे भीतर भी धड़कता हुआ हृदय है और उसमें विवेक भी है, दया भी है। आपका उपदेश सही है, उत्तम है। मगर कल ही विवाह हुआ है। इन आठों सुकुमारी कुमारियों को छोड़ कर आपका साधु बनना मुझे उचित नहीं मालूम होता। आपके इस व्यवहार से माता-पिता आदि कुटुम्बीजनों का भी हृदय विदीर्ण हो जायगा । अतएव आप अपने संकल्प पर फिर विचार कीजिए।

जम्बूकुमार बोले—भाई प्रभव ! मैं इन्हें अचानक नहीं त्याग रहा हूँ। विवाह होने से पहले ही मैंने अपने निश्चय की सूचना इन्हें दे दी थी। रह गई कुटुम्ब परिवार की बात, सो जरा उदार हृदय से देखोगे तो पता चलेगा कि साधु अपने परिवार का त्याग नहीं करता वरन् वह जगत के प्राणी मात्र को अपना परिवार बना लेता है। उसका स्नेह संकीर्ण सीमाओं को लांघ कर जगत् व्यापी बन जाता। साधु किसी पर कम और किसी पर ज्यादा सद्भाव नहीं रखता—सब को समान सद्भाव प्रदान करता है। संसार के क्षुद्र नातों का कोई मूल्य नहीं है। वह तो बनते और बिगड़ते रहते हैं। प्रत्येक जीव के साथ अनन्त-अनन्त बार ऐसे संबंध कायम हो चुके हैं। यहां तक कि एक ही जन्म में, एक ही जीव के साथ अठारह नाते-रिश्ते भी हो जाते हैं। उनकी क्या कीमत है? अतः जो व्यक्ति गम्भीरता पूर्वक विचार करता है, वह संसार की यथार्थता को समझ लेता है। वह भूल-भुलैया मे नहीं पड़ता। ऐसा विवेकवान् व्यक्ति आनन्द ही आनन्द पाता है।

जोधपुर,
ता. २४-८-४८ }



अचौर्य



स्तुतिः—

भिन्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्त ।
मुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभागः ॥
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि ।
नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं:—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, ऋषभदेव भगवन् आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? भगवन् ! आपके गुण कहाँ तक गाये जाएँ ? प्रभो ! आप जगत् का दुःख निवारण करने वाले हैं। आपके नाम स्मरण से भीषण से भीषण संकट टल जाते हैं।

मान लीजिए, कोई मनुष्य कार्यवश गाँव को जा रहा है। मार्ग में जंगल मे एक सिंह हाथी को दबोच रहा है। उसने हाथी के गंडस्थल को फाड़ डाला है। उसमें से आसपास में मोती बिखर रहे हैं, शेर हाथी को मार कर खा रहा है। भाग्यवश वह आदमी वहाँ जा पहुंचा। शेर से उसका सामना हो गया। अब कौन उसे बचा सकता है ? तो वहाँ कोई दूसरा आदमी है ही नहीं; कदाचित् हो भी तो क्या वह बचाने मे समर्थ हो सकता है ? नही। जब मनुष्य को जंगल में सिंह दिखाई दे जाता है तो उसके पैरों तलो की जमीन खिसक जाती है। उस समय धैर्य रखना कठिन हो जाता है। जब वह मनुष्य हाथी को भक्षण करते सिंह को देखता है तो उसके देवता कूच कर जाते हैं। ऐसी संकटपूर्ण परिस्थिति में वह मनुष्य भगवान् का स्मरण करता है—भगवान् के चरणों का सहारा लेता है। वह ओं उसभ, ओ उसभ, ओ उसभ ! का जाप करता है तो उसमें ऐसा आत्मबल प्रकट हो जाता है कि उसके सामने सिंह गाड़र की तरह नम्र हो जाता है। वह सिंह उसको नहीं छेड़ता है और वह सकुशल नियत स्थान पर पहुंच जाता है।

इस प्रकार प्रभु के नाम की अपरिमित महिमा है। यह आचार्य महाराज ने फरमाया है और उसी का मैं जिक्र कर रहा हूँ मगर जैसा कि पहले व्याख्यान में बतला चुका हूँ, भगवान् के प्रति प्रगाढ़ और अखण्ड श्रद्धा होनी चाहिए। केवल जीभ से कोई शब्द उच्चारण करने मात्र से काम नही चलता।

भाइयो ! प्रभु-स्मरण की एक घटी हुई घटना आपको सुनाता हूँ। कजेड़ा गाँव का जिक्र है। यह गाँव मालवा प्रदेश

में है और जंगली झाड़ियों के बीच में बसा हुआ है। इस गाँव में एक श्रावक रहते थे। उनके रात्रि मे चौविहार का खंद था—रात्रि में वह पानी तक नहीं पीते थे। एक दिन वह घोड़े पर सवार होकर किसी दूसरे गाँव से आ रहे थे। रास्ते मे कुछ आगे एक शेर था, जिसकी बू पाकर घोड़ा रुक गया। आगे नहीं चला। तब वह श्रावक घोड़े से नीचे उतरे। घोड़े को वहीं दरख्त से बाँधकर वह अकेले आगे चले। कुछ आगे चलकर उन्होंने देखा कि रास्ते में शेर बैठा हुआ है। तब उन्होंने णमोकार मंत्र का उच्चारण किया:—

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

इस प्रकार महामंत्र का उच्चारण करके वह बोले—मेरे रात्रि में भोजन-पानी ग्रहण करने का त्याग है। अगर तुम रास्ता नहीं छोड़ोगे तो मैं दिन रहते घर नहीं पहुंच सकूँगा और मुझे भूखा-प्यासा रह जाना पड़ेगा। इसलिए तुम रास्ता छोड़ दो और मुझे जाने दो। श्रावक की यह बात सुनकर सिंह चला गया और श्रावक घोड़े पर चढ़ कर अपने घर आ पहुँचा। यह एक सच्ची घटना है।

भाइयो! अन्तःकरण में दृढ़ श्रद्धा रक्खो। दृढ़ श्रद्धा के बिना कोई ऐसा कार्य सिद्ध नहीं होता। कल के व्याख्यान में बतलाया जा चुका है कि सुदर्शन सेठ ने ऐसा दृढ़ विश्वास पकड़ा कि देवता भी उसका कुछ बिगाड़ नहीं कर सका। भूत-प्रेत आदि कायर को लगते हैं, शूरवीर को नहीं। आपने सुना होगा कि जिन लोगों के

संस्कार हीन कोटि के होते हैं, उन्हीं को भूत-प्रेत तथा डाकिन आदि की बाधा होती है। उच्च संस्कार वाले, विवेकवान् और विद्वान् को कभी कोई भूत नहीं सताता।

पन्नालालजी नामक एक साधु एक बार श्मशान की छतरी मे ठहरे थे। रात्रि का समय था। साधुजी बड़े तपस्वी और निर्भीक थे। थोड़ी सी रात बीती कि एक देवता उनके पास आया और बोला—आप मेरी छतरी मे आ जाइए। इस छतरी का देवता मिथ्यादृष्टि है। वह आपको कष्ट पहुँचायगा। महाराज ने कहा—जहाँ ठहर गये सो ठहर गये। मगर उनकी तपस्या और निर्भीकता के कारण कोई उपद्रव नही हुआ। उस मिथ्यात्वी देवता का कोई जोर नहीं चला। मतलब यह है कि दृढ़ विश्वास सयम, तपस्या और आत्मबल हो तो कोई भी बाधा उत्पन्न नहीं कर सकता।

जिनके अन्तःकरण में भगवान् के प्रति निरन्तर श्रद्धा का अखण्ड दीपक प्रज्वलित रहता है और जो भगवान् के द्वारा प्रदर्शित पथ पर अग्रसर होने की भावना रखते है, उन्हे कोई भी संसार की शक्ति परास्त नही कर सकती। भगवान् के द्वारा बतलाया हुआ मार्ग है अहिंसा का पालन करना, सत्य भाषण करना और बिना आज्ञा लिए किसी की कोई चीज न लेना, शीलव्रत का पालन करना और मोह ममता का यथा संभव त्याग करना। इन पांच बातों मे से अहिसा पर प्रकाश डाला जा चुका है, सत्य के संबंध में भी थोड़ा बहुत कहा जा चुका है। चोरी के विपय मे आज कहूँगा।

चोरी करना घोर पाप है। यह ऐसा दुष्कर्म है कि इसके विषय में ज्यादा कहने की आवश्यकता नहीं है। दुनिया में कोई

ऐसा मत, पंथ या धर्म नहीं है जिसने चोरी को पाप न माना हो और चोरी का त्याग करने का उपदेश न दिया हो। सभी मत, सभी पंथ और सभी धर्म एक स्वर से चोरी को त्याज्य बतलाते हैं। नीतिकार भी चोरी की निन्दा करते हैं। संसार में जितने भी शिष्ट पुरुष हैं, सभी चोरी को बुरा कर्म मानते हैं। चोरी करने वाला पुरुष एक प्रकार से सभी पापों का सेवन करता है। चोर जब किसी की सम्पत्ति चुरा ले जाता है तो उस सम्पत्ति के स्वामी को घोर वेदना होती है। संसारी जीव सम्पत्ति को प्राणों की तरह चाहते हैं। जब उनकी सम्पत्ति कोई हर लेता है तो उन्हें ऐसा दुःख होता है, मानों उनके प्राण ही किसी ने हर लिये हों। चोरी हो जाने पर धन के मालिक को बड़ी ही व्यथा होती है। अतएव चोरी करने वाला हिंसा के पाप का भागी होता है। इसी प्रकार चोर झूठ आदि अन्यान्य पापों से भी नहीं बच पाता।

चोरी का खाता बहुत बड़ा और व्यापक है। कोई आदमी अनाथालय को, विद्यालय को, निराश्रितों को और दरिद्रों को कुछ दान देता हो और कोई उसे दान देने से मना करे कि इसे दान देकर क्या करोगे; तो यह भी चोरी में शुमार है। दान देने में क्या धरा है? क्यों धन बिगाड़ते हो? सब को हाथ-पैर प्राप्त हैं, आप ही कमा-कमा कर खाएँगे! इस प्रकार कह कर किसी को दान देने से विमुख करना, किसी का चित्त दान देने से फेर देना भी भगवान् ने चोरी में शुमार किया है।

दूसरों की चुगली खाना भी चोरी है। किसी को आराम में देखकर जलना, डाह करना भी चोरी है। किसी के पुण्य का उदय हुआ है और वह न्याय-नीति के साथ व्यापार करता हुआ

लखपति बन गया है; अथवा किसी की नौकरी में तरक्की हो गई है, या किसी के लड़के की सगाई हो रही है, किसी के घर पुत्र-पौत्र आदि अच्छा परिवार है, और दूसरा यह सब देख-देखकर जलता है, ईर्षा करता है तो वह एक प्रकार से चोरी करता है।

तात्पर्य यह है कि जिस काम को करने का तुम्हे हक हासिल नहीं है, ऐसा कोई काम मत करो। अगर ऐसा काम करते हो तो समझ लो कि तुम चोरी कर रहे हो। अतएव जिसे चोरी के भयानक पाप से बचना है उसे न्याय-नीति और प्रामाणिकता के साथ जीवन व्यतीत करना चाहिए। अत्यन्त खेद की बात है कि जो भारतभूमि धर्मभूमि कहलाती है, जिस भूमि पर तीर्थङ्कर जैसे लोकोत्तर महा-पुरुषों ने जन्म धारण किया है और धर्म का उपदेश दिया है, जिस भूमि पर अवतारी महा-पुरुष पैदा हुए है, जिस भूमि पर बड़े बड़े ऋषि-मुनि, साधु-सन्तो ने जन्म लेकर उग्र-तपस्या की है और जिस देश मे आनन्द, कामदेव आदि के समान पवित्र जीवन व्यतीत करने वाले आदर्श श्रावक हो गये हैं, जहाँ के बालकों को बचपन में ही धर्म के संस्कार दिये जाते हैं; उसी देश का आज घोर नैतिक पतन हो गया है ! आज जिधर नजर डालो उधर ही अप्रामाणिकता और अनीति दिखाई देती है। राजा से लगा कर रंक तक सभी अपने कर्तव्यों से गिर कर चोरी के पाप के भागी हो रहे हैं। राजा अथवा राज्य-शासक अगर ईमानदारी के साथ अपना कर्तव्य अदा नहीं करता, अपनी ड्यूटी का पाबन्द नहीं रहता, अपने कर्त्तव्य की उपेक्षा करता है तो वह चोर है। न्यायाधीश का कर्त्तव्य है कि वह छानबीन करके सच्चा न्याय दे—दूध का दूध और पानी का पानी कर दे। इसके विपरीत

अगर वह किसी के लिहाज में आकर, किसी के दबाव मे पड़कर, लोभ-लालच में फँस कर या रिश्वत लेकर अन्याय करता है, सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा ठहराता है तो वह चोर है, वह अपने कर्त्तव्य का चोर है, धर्म का चोर है, सरकार का चोर है और प्रजा का चोर है। इसी प्रकार कोई दूसरा कर्मचारी भी अगर अपने वास्तविक कर्त्तव्य से गिरता है तो वह चोरी के अंधे कुएँ में गिरता है।

व्यापारिक क्षेत्र मे जब हम दृष्टि डालते है तो भी बड़ी निराशा होती है। प्राचीन काल मे व्यापारी लोगों की बड़ी धाक थी। बड़ी प्रतिष्ठा थी और बड़ी भारी इज्जत थी। उनके शब्दो की कीमत होती थी। अदालतो मे उनके बहीखाते इस प्रकार सही और प्रमाणिक माने जाते थे जैसे कानून के शब्द सही माने जाते हैं। प्रजा मे व्यापारियो के प्रति बड़ी श्रद्धा और सद्भावना थी। लोग उन्हे अपना सहायक और संरक्षक समझते थे। पर आज क्या स्थिति है? क्या आज व्यापारियों के प्रति जनता के हृदय मे वह सहानुभूति रह गई है? पहले जैसा विश्वास बचा है? क्या आज अदालत में उनकी बात उतनी प्रामाणिक मानी जाती है? नहीं। इसका कारण चोरी है। व्यापारी वर्ग आज प्रामाणिक नहीं रहा है और इसी कारण अब उनकी प्रतिष्ठा भी नहीं रह गई है। कम तोल कर देना, ज्यादा तोल कर लेना, अच्छी वस्तु में बुरी वस्तु मिला कर देना, नापने तोलने के बांट या गज आदि छोटे-बड़े रखना आदि-आदि ऐसी बातें हैं जिनके कारण व्यापारी चोरी के पाप के भागी होते है। इन्हीं बातों से उनकी प्रतिष्ठा उठ गई है। प्राचीन काल के व्यापा-

रियों ने प्रतिष्ठा की जो पूंजी संचित की थी, वह आज के व्यापारियों ने प्रायः नष्ट कर डाली है।

मेरा यह कथन अधिकांश व्यापारियों को लक्ष्य में रख कर है। आज भी कोई-कोई व्यापारी प्रामाणिकता के साथ अपना धंधा करते हैं। अपनी प्रामाणिकता के लिये धन्यवाद के पात्र है। यह वे लोग है जिन्होने भगवान् के मार्ग को समझा है, अपने कर्त्तव्य को समझा है! मै चाहता हूँ कि सभी व्यापारी उनका अनुकरण करें और अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करें।

इसी प्रकार अगर कोई मजदूर पूरी मजदूरी लेकर भी पूरा काम नहीं करता, काम करने से जी चुराता है और ऐसी कोशिश किया करता है कि किसी तरह काम न करना पड़े, तो वह भी चोर है। मतलब यह है कि अपने कर्त्तव्य को ईमानदारी के साथ अदा न करने वाला चोर कहलाता है। चाहे वह किसी भी जाति का हो, कोई भी धंधा करता हो। चोर की कोई जात-पाँत नहीं होती। जो चोरी करे वही चोर है, डाका डाले वही डाकू, रंडी के यहाँ जावे वही रंडीबाज और बुरे काम करे वही बदमाश कहलाता है। इन सब दुर्गुणों का संबंध किसी जाति से नहीं होता, व्यक्ति से होता है। कई लोग ऊँची जाति में उत्पन्न होकर भी चोर और बदमाश हो सकते हैं और कई नीची समझी जाने वाली कौम में जन्म लेकर भी प्रामाणिकता और नीति के साथ अपना निर्वाह करते है।

कई लोग सत्संग के लिए आते हैं और किसी की नयी जूतियां, छतरी या और कोई चीज़ उठा ले जाते हैं। मगर सच्च

पूछो तो वे सत्संग करने नहीं आते बल्कि चोरी करने के प्रयोजन से ही आते हैं। अकसर मेले महोत्सव या सभा–व्याख्यान आदि के अवसरों की वे राह देखते रहते हैं। उन्हें पता नहीं है कि ऐसा करके वे चोरी के पाप मे फँस कर अपना अहित कर रहे हैं। बालक नासमझी से जहर खा लेता है और पूर्वोक्त सभी लोग समझ-बूझ कर यह जहर खा रहे हैं।

चोरी करना बड़ा भयानक पाप है। परलोक में उसकी बुरी गति होती है। उसे नरक और तिर्यंच योनियों में जन्म लेकर भीषण मुसीबतें सहनी पड़ती हैं। परन्तु परलोक की बात जाने भी दो और सिर्फ इसी वर्त्तमान भव का विचार करो तो भी चोरी की बुराई समझ में आ जायगी। चोरी करने वाले का हृदय निरन्तर व्याकुल और अशान्त रहता है। उसे क्षण भर भी कभी चैन नहीं मिलती। कहीं चोरी करते किसी ने देख न लिया हो, मेरी चोरी प्रकट न हो जाय, इस प्रकार की आशंकाएँ उसे सदैव सताती रहती हैं। वह दबा हुआ सा बना रहता है। वह छिपने की कोशिश करता है। दिल खोलकर कभी बात नहीं कर सकता। उसे सदा सावधान रहना पड़ता है। फिर भी कभी कभी उसका पाप प्रकट हो ही जाता है। चोरी जाहिर होने पर चोर की कैसी दशा होती है, यह कौन नहीं जानता ? चोर लोगों की निगाह में गिर जाता है। सब लोग उसकी करतूत पर थूकते हैं। सभी उससे घृणा करते हैं। भूलकर भी कोई उस पर विश्वास नहीं करता। इसके अतिरिक्त सरकार उसे गिरफ्तार कर लेती है, हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ पहनाती है, मुकदमा चलाती है और फिर वर्षों के लिए कारागार में बंद कर देती है।

भाइयो ! कभी अपनी नियत मत बिगाड़ो । किसी की चीज बिना इजाजत मत लो । यह बड़ा भारी पाप है । चोरी करने वाला अपने निर्मल कुल को कलंक लगाता है । वह अपने पुरखों की कीर्ति में धब्बा लगाता है और अपनी सन्तान को भी घृणा का पात्र बनाता है । उसके दुष्कर्म के लिए उसकी भावी संतान को भी लांछन लग जाता है ।

मनुष्य मे चोरी की आदत पड़ जाना ही बुरा है । किसी प्रकार के अभाव से प्रेरित होकर चोरी करने वाले लोग बहुत कम मिलेंगे, पर आदत से लाचार होकर चोरी करने वालों की संख्या बेशुमार है । बहुत लोगों में बचपन से ही चोरी की आदत शुरु हो जाती है और वह अक्सर माता-पिता की गलती से शुरु होती है । बालक पहले-पहल मामूली–नगण्य सी चीजों की चोरी शुरु करता है । माता-पिता उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं अथवा उसकी चतुराई की सराहना करते है । इस प्रकार आदत बढ़ती जाती है, पक्की होती जाती है और वह बड़ी-बड़ी चोरी करने लगता है ।

एक लड़का बाजार से चार आम चुरा लाया । माता ने आम देखे तो कुछ नहीं कहा और सब ने खा लिये । लड़के की हिम्मत बढ़ी । वह दूसरे दिन दूसरी और तीसरे दिन तीसरी चीज चुरा कर घर लाया । माता ने फिर भी कुछ नहीं कहा, बल्कि मौन रह कर उसकी चोरी का समर्थन किया । यों करते-करते लड़के की आदत चोरी करने की हो गई । एक बार वह चोरी करते पकड़ा गया । मगर बालक होने के कारण थोड़े कोड़े खा कर ही छूट गया । फिर भी उसकी आदत नहीं छूटी । वह क्रमशः

बड़ी-बड़ी चोरियां करने लगा। वह एक बार फिर पकड़ा गया और जेलखाने का मेहमान बना। उसको बुढ़िया माँ रोती कलपती जेलखाने में उससे मिलने गई। जेलर ने उससे कहा—तेरी मां मिलने आई है। क्या तू उससे मिलना चाहता है ? कैदी बोला—मेरी माँ तो मर गई है।

जेलर ने कहा—पगले! वह रोती-चीखती तुझसे मिलने आई है और तू कहता है कि वह मर गई!

कैदी—नहीं, वह मेरी माँ नहीं है।

आखिर बुढ़िया उसके पास लाई गई तो वह पीठ फेर कर खड़ा हो गया। बुढ़िया ने कहा—बेटा, मैं तेरी माँ हूँ। आज तू मुझे देखना भी नहीं चाहता ?

लड़के ने उत्तर दिया—तू मेरी माँ नहीं, दुश्मन है। तेरी बदौलत ही मेरी यह दुर्दशा हुई है!

जेलर ने लड़के से प्रश्न किया—तू चोरी करने के कारण कैदी की सजा का भागी हुआ है, माँ को क्यों लांछन लगाता है ?

जेलर के प्रश्न का उत्तर देते हुए उसने अपने पिछले जीवन का वृतान्त सुनाकर कहा—यदि पहले दिन ही चार आमों के बदले इसने मेरे गाल पर चार चांटे जड़ दिये होते तो आज मुझे यह दिन न देखना पड़ता।

कहने का मतलब यह है कि तुम्हारा लड़का, लड़की, बहिन, भाई अथवा कोई और सम्बन्धी यदि बुरा काम करता है तो उसे सहन मत करो, उसकी उपेक्षा मत करो, उसकी सहायता मत

करो। उसे तत्काल अच्छी नसीहत दे दो तो उसका आगे का जीवन आराम से निकलेगा। ऐसा करने में ही तुम्हारी और उसकी भलाई है।

एक मुनीम ने किसी सेठ की दुकान पर कम-कम तोल कर सेठ का फायदा किया। सेठजी ने दुकान की चीजें बढ़ी हुई पाई तो मुनीम से इसका कारण पूछा। मुनीम ने कहा—आपका नमक खाता हूँ तो फर्ज भी बजाना चाहिये। मैंने अपना फर्ज अदा किया है। ग्राहकों को कम तोल-तोल कर इतनी बचत की है। यह सुन कर सेठजी को बड़ा अफसोस हुआ। उन्होंने कहा—मुझे ऐसी कमाई पसंद नहीं है। व्यापारी को उचित रूप से जो नफा मिलता है, वही उसके लिए काफी है। उससे अधिक मुनाफे की मुझे भूख नहीं है। मैं अपनी प्रामाणिकता, नीतिनिष्ठता या ईमानदारी के बदले में थोड़े से पैसे ऐंठ लेना पसंद नहीं करता। चोरी करके कमाया हुआ पैसा मोरी में ही जाने वाला है। उससे आत्मा का भी हनन होता है। चोरी करने वाला व्यापारी अन्त तक अपनी साख कायम नहीं रख सकता। एक न एक दिन उसकी साख खत्म हो जाती है और व्यापारी की साख उठ जाना एक प्रकार से व्यापार उठ जाना है।

अन्त में सेठजी ने अपने मुनीम से कहा—जिन जिन को कम तोला है उन सबको बुलाकर लाओ। सेठजी की इस आज्ञा से मुनीम चकित-सा रह गया, मगर लाचार होकर उसे आज्ञा का पालन करना पड़ा। सब ग्राहक दुकान पर इकट्ठे हुए। सेठजी ने उनसे कहा—मुनीम ने आपको कम माल तोल कर दिया है, मगर मैं बेईमानी की कमाई खाना नहीं चाहता। अतः आप लोग

अपने-अपने हिस्से का बाकी माल ले जाइए। इस प्रकार सब ग्राहकों को बाकी का माल तोल दिया गया। इस ईमानदारी का नतीजा यह हुआ कि सेठजी की साख जम गई। सब लोग उन पर विश्वास करने लगे। सेठजी का व्यापार ऐसा चमका कि उनके पास चालीस लाख की आयदाद हो गई।

दूसरे विश्व-युद्ध ने भारत को एक नया उपहार दिया है—ब्लेक मार्केट अर्थात् काला बाजार। पहले विश्व-युद्ध ने लाल बुखार का उपहार दिया था और इस दूसरे युद्ध ने काला बाजार दिया है। लाल बुखार भी एक भयानक रोग था मगर काला बाजार उससे भी अधिक भयंकर रोग है। यह सारे भारत में फैला हुआ है। इसके कारण देश की शासन व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो रही है। गरीबों का संकट बढ़ता जा रहा है! व्यापारियों में अनैतिकता बढ़ रही है। कहा जाता है कि भारत में इतनी अप्रामाणिकता और स्वार्थ-परायणता पहले कभी नहीं थी, जितनी आज है! लेकिन व्यापारी कान खोल कर सुन लें कि ब्लेक मार्केट एक प्रकार की चोरी है और इस तरीके से अगर कमाई करना शीघ्र ही नहीं छोड़ दिया जायगा तो उसकी प्रति-क्रिया बड़ी ही भयंकर हो सकती है। ब्लेक मार्केट करने वाले व्यापारी अपने भविष्य को भूल रहे हैं। वे समाज में आर्थिक क्रांति का आह्वान कर रहे हैं। कहना चाहिये कि आज अज्ञान-वश पूंजीपति ही पूंजीवाद के विरुद्ध वातावरण का निर्माण कर रहे है।

भाइयो! नीति की राह पर चलने वाले क्या भूखे मरते हैं? नहीं, तो फिर क्यों पेट के लिए अनीति का आसरा लेते हो? अनीति की कमाई टिकने वाली नहीं है। वह न मालूम कब किस

खोटे रास्ते से चली जायगी ! ऐसी कमाई तो किसी शुभ कार्य में भी नहीं लगने वाली है । कई लोग कहते हैं कि यह मालदार होते हुए भी परोपकार में पैसा खर्च नहीं करते ! मगर भाई, उनका पैसा हराम का है, हलाल का नहीं, अनीति का है, नीति का नहीं । अतः ऐसे पैसे का वे कैसे सदुपयोग कर सकते हैं ? पाप का पैसा पुण्य का साधन शायद ही बन सकता है । इसलिए नीयत साफ रक्खो । गलत तरीके से किसी का माल हड़पने का विचार मत करो । बुरी भावना मत रक्खो । अन्याय का पैसा अव्वल तो सामने ही समाप्त हो जायगा, कदाचित् रह गया तो तीसरी पीढ़ी में तो दिवालिया बना ही देगा । ईमानदारी का एक पैसा भी मोहर के बराबर है और बेईमानी की मोहर भी पैसे के बराबर नहीं है ।

जो स्वयं प्रामाणिकता नहीं रक्खेगा, उसकी सन्तान में भी प्रामाणिकता नहीं आ सकेगी । बेईमानी करना बाल-बच्चों को बेईमानी सिखलाना है । बागवान पौधा जब कुछ बड़ा होता है तो उसे सीधा रखने के लिए वह एक लकड़ी बाँध देता है । इसी तरह अगर बालक को शुरु से ही सुधारना हो तो उसे सचाई और नीति की लकड़ी पकड़ा दो । ऐसा करने से वह नीतिनिष्ठ और सच्चा बन जायगा ।

जो नर और नारी पिता और माता बनने का उत्तरदायित्व अपने माथे पर ले लेते हैं, परन्तु ठीक तरह उनका संरक्षण नहीं करते; उन्हे सुसंस्कारी बनाने की ओर ध्यान नहीं देते उनके जीवन निर्माण की परवाह नहीं करते, वे अपने कर्त्तव्य की चोरी करते हैं । माँ-बाप का कर्त्तव्य है कि वे लड़के-लड़कियों के कार्यों

पर पूरी-पूरी निगाह रक्खें। उन्हें सभ्य और संस्कारी बनाने के लिए खुद का जीवन पवित्र बनावें। मगर खेद है कि इस ओर माता-पिता ध्यान नहीं देते। बालकों को अच्छी शिक्षा देना तो दूर रहा, उलटी बुरी शिक्षा देते हैं। पहले-पहल तो 'हाऊ आया, बावा आया' आदि कह कर उनके कोमल हृदय को भयभीत बना देते हैं, उनमें डरपोकपन और कायरता के बीज डाल देते हैं। भाइयो और बहिनो ! बालको को कायर क्यों बनाते हो ! उन्हें शूरवीर और निर्भीक बनाने में तुम्हारा क्या बिगड़ता है ?

बहुत से लोग बात बात में अपने मुंह से अपशब्द बोला करते हैं। साधारण बातचीत करते समय भी उनके मुख से गंदी गालियाँ निकला करती हैं। जिन लोगों को यह अत्यन्त घृणित आदत पड़ गई है, वे सभ्य और शिष्ट समाज में बैठने योग्य भी नहीं रहते। उन्हें बोलने का भान नहीं रहता। माँ बहिन और बेटी के सामने भी वे अश्लील शब्दों का प्रयोग करने से नहीं हिचकते तो बालकों के सामने क्यों हिचकने लगे ? वे समझते हैं कि बालक नादान और नासमझ है, मगर सच पूछो तो वे स्वयं ही नादान और नासमझ हैं। बालक उनके शब्दों को सीखता है और उसकी भी वैसी ही आदत हो जाती है। अतएव अगर तुम चाहते हो कि तुम्हारी सन्तान सभ्यतापूर्ण बोली बोलना सीखे तो पहले तुम स्वयं सभ्य बनो। बच्चों को खराब रिवाज मत सिखाओ।

अगर तुम्हारा बालक सुधरा होगा तो तुम्हारे कुल को उज्ज्वल कर देगा। वह अपनी भी इज्जत बढ़ाएगा और तुम्हारी भी इज्जत बढ़ायगा। लड़की सुधरी होगी तो जिस घर में जायगी,

उस घर के भी लोग तुम्हारे गुण गाएँगे। कहेंगे कि अमुक घर की लड़की ने आकर हमारे घर मे उजेला कर दिया! इससे तुम्हारी प्रतिष्ठा बढ़ेगी। मगर यह सब तभी होगा जब तुम अपने कर्त्तव्य को चोरी करना छोड़ोगे।

इस प्रकार जो मनुष्य व्यापक चोरी का विचार करके उसे त्याग देगा, जो प्रामाणिकता के साथ अपने कर्त्तव्य का पालन करेगा उसमें सभी सद्गुण आकर निवास करेंगे। जो चोरी नहीं करेगा वह कपट भी नहीं करेगा, झूठ भी नहीं बोलेगा, परस्त्री की तरफ निगाह भी नहीं करेगा, खून भी नहीं करेगा और दूसरे बुरे कामों से भी बच जायगा।

भाइयो! याद रखना, जो चोरी करता है वह तो चोर है ही, परन्तु जो मदद करे वह भी चोर, चोरी का माल ले वह भी चोर, औजार देवे वह भी चोर और चोर को घर में छिपावे वह भी चोर। यह सब चोर हैं। इसलिए कभी भूल कर भी ऐसे काम नहीं करने चाहिए। भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिए कि—प्रभो! मुझे सुमति मिले कभी चित्त में कुमति का उदय न हो। मेरी कुबुद्धि मिटे और सुबुद्धि जागे। जब कभी भगवान् से प्रार्थना करो, यही करो कि मेरी भावना पवित्र हो। भगवन्! चाहे सम्पत्ति हो या न हो, सम्मति अवश्य हो। ऐसी प्रार्थना करने से जीवन पवित्र होगा—ऊँचा बनेगा!

भाइयो! चोरी की आदत बड़ी ही अहितकर है। ज्यों ज्यों यह आदत बढ़ती जाती है त्यों-त्यों दुःख भी बढ़ता जाता है। दुःख पड़ने पर आदमी रोता है कि हाय, हमने क्या पाप किये हैं जिससे दुखी होगये। जीवन के अन्त मे चोरी करने वाला

मर कर भिखारी होता है, दरिद्री होता है। वह कहीं माँगने आएगा तो उसे भीख देने की भी दाता की नीयत नहीं होगी। कोई कहता है मुझ को माँगने पर भी कुछ नहीं मिलता है! पर भाई, मिले कहाँ से! तू बहुत पाप करके आया है। उस पाप का प्रायश्चित्त तो तुझे करना ही पड़ेगा। अगर यह हालत तुझे पसंद नहीं है तो अब सावधान हो जा। आगे ऐसे पाप न करने का निश्चय करले।

चोरी को संस्कृत में 'अदत्तादान' कहते हैं। अदत्तादान का अर्थ है—बिना दी वस्तु ग्रहण करना। इस दृष्टि से विचार किया जाय तो चोरी बहुत बारीक वस्तु बन जाती है। रास्ते में से एक कंकर उठा लेना, नदी अथवा तालाब मे से पानी ले लेना, पेड़ से दातौन काट लेना, दांत कुचरने के लिए सूखा तिनका उठा लेना, आदि भी अदत्तादान है। मुनि जन इससे अदत्तादान का भी त्याग कर देते हैं। मगर साधारण गृहस्थों के लिए ऐसा करना संभव नहीं है। फिर भी जितना संभव हो, अदत्तादान का त्याग करना आवश्यक है। कम से कम ऐसे स्थूल अदत्तादान का त्याग तो करना ही चाहिए, जिसे दुनिया मोटे तौर पर चोरी समझती है, जिससे लोक में निन्दा होती है और राज्य दंड देता है। भाइयो, ऐसी मोटी चोरी तो मत करो जिससे डंडे पड़ें और जेल की हवा खानी पड़े! अगर आपने इतना त्याग कर दिया तो भी आपका जीवन पवित्र बन जायगा और आपके लिए दिव्य सम्पदा के द्वार खुल जाएँगे।

जम्बूकुमार की कथा.

जम्बूकुमार के घर में भी चोर घुस पड़े। जम्बूकुमार चोरों के सरदार प्रभव को समझा रहे हैं कि दुनिया की नातेदारी की

कोई कीमत नहीं है। एक जन्म में एक ही व्यक्ति के साथ अठारह नाते किस प्रकार हो सकते हैं, यह बात समझाने के लिए जम्बूकुमार एक कथा कहते हैं। वह इस प्रकार है:—

मथुरा नगरी मे एक अत्यन्त रूपवती वेश्या थी। वह धन के लोभ मे फँस कर अपने धर्म को भूल गई थी। तन और यौवन को नष्ट कर रही थी। एक बार बसन्त ऋतु में अच्छे कपड़े और गहने पहन कर वह हवाखोरी के लिए निकली। बग्घी में बैठकर वह बाग में गई।

उसी समय किसी सेठ का लड़का भी वहाँ पहुँच गया। दोनों की निगाहें एक हुई। सेठ का लड़का वेश्या की निगाहों से विंध गया। वह लड़का भी बदचलन था। उसे माँ-बाप की जैसी शिक्षा मिलनी चाहिए थी, वैसी नहीं मिली थी। उसकी तकदीर भी उलटी थी। इन सब कारणों से वह वेश्या के फंदे में फँस गया। धीरे-धीरे सम्पर्क बढते-बढ़ते ऐसी स्थिति आ पहुँची कि वह रात-दिन वेश्या के पास ही रहने लगा।

दोनों के संयोग से वेश्या गर्भवती हुई और समय पूरा होने पर एक लड़का और एक लड़की का युगल उत्पन्न हुआ। लड़के का नाम कुबेरदत्त और लड़की का नाम कुबेरदत्ता रक्खा गया। बालकों की परवरिश करने में ऐश-आराम मे बाधा पहुंचती है, ऐसा समझ कर वेश्या ने उनके नाम की मुद्रिका बनवा कर और लकड़ी की एक पेटी बनवा कर और उसमें मखमल की गद्दी बिछा-कर दोनों को उसमें सुला दिया और यमुना नदी में बहा दिया। वेश्या फिर ऐश-आराम में मस्त हो गई।

पेटी बहती-बहती सौरीपुर तक पहुंची। वहाँ यमुना के किनारे खड़े दो सेठों की नजर उस पर पड़ी। उन्होंने वह पेटी नदी से बाहर निकलवाई। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि पेटी में जो जो निकलेगा वह आधा-आधा बाँट लेंगे। पेटी खोली गई। देखा तो उसमें एक लड़का और एक लड़की निकली। दोनों को बड़ा विस्मय और विचार हुआ। उन्होंने सोचा यह बालक न मालूम किसके होंगे? इनको जात-पाँत का क्या पता है? मगर यह विचार अधिक समय तक नहीं ठहरा। उनमें से एक ने कहा—भाई बालकों की क्या जाति होती है? इनकी जाति तो मनुष्य जाति ही है। बालक हर हालत में पवित्र है। फिर यह तो मनुष्य की रक्षा का सवाल है। हम लोग कीड़ो-मकोड़ो की भी रक्षा करते हैं तो क्या इन बालकों की रक्षा करने में हिचकिचाएँ? नहीं। ऐसा करना उचित नहीं। इनकी रक्षा करना ही हमारा धर्म होना चाहिये। दूसरे सेठ को यह बात पसंद आ गई। दोनों में से एक ने लड़की और दूसरे ने लड़का ले लिया। उनके नाम की मुद्रिकाएँ भी ले लीं।

धीरे धीरे दोनों बालक बड़े हुए। भूल से उन दोनों भाई-बहिन का विवाह हो गया और दोनों पति-पत्नी के रूप में साथ-साथ रहने लगे। एक दिन दोनों चौपड़ खेल रहे थे। कुबेरदत्त की दृष्टि अपनी स्त्री की अँगूठी पर पड़ी। दोनों अँगूठियाँ एक-सी थीं। साफ मालूम हो गया कि यह दोनों अँगूठियाँ एक ही कारीगर की बनाई हुई हैं। उन्हें कुछ संशय उत्पन्न हो गया।

कुबेरदत्त ने नीचे आकर अपने पिता से इस बारे में प्रश्न किया। पिता ने सच्चा-सच्चा वृत्तान्त बतला दिया। वृत्तान्त सुन-

कर लड़के के दिल में भारी उथल-पुथल मची। उसने उस दिन भोजन तक नही किया। वह चुपचाप मथुरा की तरफ रवाना हो गया। लड़की को यह बात मालूम हुई तो वह रोने लगी। उसे घोर पश्चात्ताप हुआ। वह कहने लगी–हाय, मेरा जीवन भ्रष्ट हो गया! मैने पूर्व-जन्म मे न जाने क्या पाप किया था कि उसका फल इस रूप मे भुगतना पड़ा।

कुबेरदत्त मथुरा नगरी मे रहने लगा और व्यापार करने लगा। कुबेरदत्ता वहीं रहती रही। एक बार ज्ञान के धारक एक मुनिराज से उसकी भेंट हुई। उसने मुनिराज से निवेदन किया; महाराज! मेरा एक संशय दूर कीजिये। और उसने पिछली बातों के संबंध में प्रश्न किया।

मुनिराज बड़े ज्ञानी थे। उन्होंने कहा—तुम दोनों इस भव में भाई-बहिन हो और पूर्वभव में पति-पत्नी थे। तुमने मुनि का उपदेश सुनकर आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया था। मगर तुम्हारी एक पड़ौसिन खराब थी। उसने बीच में पड़ कर तुम्हारे व्रत को खंडित करा दिया था। इस कारण वह मर कर मथुरा मे वेश्या हुई और तुम दोनों उसकी कूंख से भाई-बहिन के रूप में उत्पन्न हुए हो। वेश्या ने पेटी मे बंद करके तुम्हें नदी मे छोड़ दिया। आगे का हाल तुम लोगो को मालूम ही है कि किस प्रकार तुम्हारा पालन-पोषण और विवाह हुआ? विवाह करते समय तुम्हारे पालन-पोषण करने वालों को भी ध्यान नहीं रहा। उन्होने पूरी तरह जाँच-पड़ताल नही की और तुम दोनों का विवाह कर दिया। मगर भीतरी कारण तो यह था कि पूर्व जन्म के पाप के कारण भाई-बहिन होकर भी तुम्हें पति-पत्नी का सम्बन्ध भोगना पड़ा है।

पेटी बहती-बहती सौरीपुर तक पहुंची। वहाँ यमुना के किनारे खड़े दो सेठों की नजर उस पर पड़ी। उन्होंने वह पेटी नदी से बाहर निकलवाई। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि पेटी में जो जो निकलेगा वह आधा-आधा बाँट लेंगे। पेटी खोली गई। देखा तो उसमें एक लड़का और एक लड़की निकली। दोनों को बड़ा विस्मय और विचार हुआ।" उन्होंने सोचा यह बालक न मालूम किसके होंगे ? इनको जात-पाँत का क्या पता है ? मगर यह विचार अधिक समय तक नहीं ठहरा। उनमें से एक ने कहा—भाई बालकों की क्या जाति होती है ? इनकी जाति तो मनुष्य जाति ही है। बालक हर हालत में पवित्र है। फिर यह तो मनुष्य की रक्षा का सवाल है। हम लोग कीड़ों-मकोड़ों की भी रक्षा करते है तो क्या इन बालकों की रक्षा करने मे हिचकिचाएँ ? नहीं। ऐसा करना उचित नहीं। इनकी रक्षा करना ही हमारा धर्म होना चाहिये। दूसरे सेठ को यह बात पसंद आ गई। दोनो मे से एक ने लड़की और दूसरे ने लड़का ले लिया। उनके नाम की मुद्रिकाएँ भी ले लीं।

धीरे धीरे दोनों बालक बड़े हुए। भूल से उन दोनों भाई-बहिन का विवाह हो गया और दोनों पति-पत्नी के रूप में साथ-साथ रहने लगे। एक दिन दोनों चौपड़ खेल रहे थे। कुबेरदत्त की दृष्टि अपनी स्त्री की अँगूठी पर पड़ी। दोनों अँगूठियाँ एक-सी थी। साफ मालूम हो गया कि यह दोनों अँगूठियाँ एक ही कारीगर की बनाई हुई हैं। उन्हें कुछ संशय उत्पन्न हो गया।

कुबेरदत्त ने नीचे आकर अपने पिता से इस बारे में प्रश्न किया। पिता ने सच्चा-सच्चा वृत्तान्त बतला दिया। वृत्तान्त सुन-

कर-लड़के के दिल में भारी उथल-पुथल मची। उसने उस दिन भोजन तक नहीं किया। वह चुपचाप मथुरा की तरफ रवाना हो गया। लड़की को यह बात मालूम हुई तो वह रोने लगी। उसे घोर पश्चात्ताप हुआ। वह कहने लगी—हाय, मेरा जीवन भ्रष्ट हो गया! मैने पूर्व-जन्म मे न जाने क्या पाप किया था कि उसका फल इस रूप में भुगतना पड़ा।

कुबेरदत्त मथुरा नगरी में रहने लगा और व्यापार करने लगा। कुबेरदत्ता वहीं रहती रही। एक बार ज्ञान के धारक एक मुनिराज से उसकी भेंट हुई। उसने मुनिराज से निवेदन किया, महाराज! मेरा एक संशय दूर कीजिये। और उसने पिछली बातों के संबंध में प्रश्न किया।

मुनिराज बड़े ज्ञानी थे। उन्होने कहा—तुम दोनों इस भव में भाई-बहिन हो और पूर्वभव में पति-पत्नी थे। तुमने मुनि का उपदेश सुनकर आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया था। मगर तुम्हारी एक पड़ौसिन खराब थी। उसने बीच में पड़ कर तुम्हारे व्रत को खंडित करा दिया था। इस कारण वह मर कर मथुरा मे वेश्या हुई और तुम दोनों उसकी कूख से भाई-बहिन के रूप में उत्पन्न हुए हो। वेश्या ने पेटी में बंद करके तुम्हें नदी में छोड़ दिया। आगे का हाल तुम लोगो को मालूम ही है कि किस प्रकार तुम्हारा पालन-पोषण और विवाह हुआ? विवाह करते समय तुम्हारे पालन-पोषण करने वालों को भी ध्यान नहीं रहा। उन्होने पूरी तरह जाँच-पड़ताल नहीं की और तुम दोनों का विवाह कर दिया। मगर भीतरी कारण तो यह था, कि पूर्व जन्म के पाप के कारण भाई-बहिन होकर भी तुम्हें पति-पत्नी का सम्बन्ध भोगना पड़ा है।

मुनिराज आगे बोले—बहिन ! अज्ञात दशा में बड़े-बड़े अनर्थ हो जाते हैं। उनके लिए शोक, पश्चात्ताप और परिताप करते-करते बैठे रहने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। पश्चात्ताप करना चाहिए आगे के सुधार के लिए। यदि सचमुच तुम्हें अपना पिछला जीवन पसंद नहीं है और अगला जीवन सुधारना है तो धर्म की शरण में जाओ। अखण्ड ब्रह्मचर्य पालने की प्रतिज्ञा करो। प्रतिज्ञा लेने से पहले अपनी शक्ति को पूरी तरह से तोल लो। अपनी भावना को भलीभांति परख लो। आगे की सोच लो, पीछे की सोच लो। फिर पक्के संकल्प के साथ प्रतिज्ञा करो। प्रतिज्ञा करने के बाद चाहे हजारों विघ्न आवें, लाखों बाधाएँ सामने खड़ी हो जाएँ, करोड़ों प्रलोभन उपस्थित हों, मगर उन सब को जीत कर प्रतिज्ञा का अवश्य पालन करो। जीवन रहे तो अच्छी बात है और यदि न रह सकता हो तो न रहे, मगर ली हुई प्रतिज्ञा अवश्य रहनी चाहिये। जो नर या नारी लोक-लाज से प्रतिष्ठा पाने के विचार से, ऊपर दिल से प्रतिज्ञा लेते हैं, वे कठिनाई आने पर उससे भ्रष्ट हो जाते हैं और फिर दुहरे पाप के भागी बनते हैं।

कुछ लोगों का खयाल है कि जिस व्रत का पालन करना है, उसका पालन करें, किन्तु प्रतिज्ञा के फंदे में क्यों फँसें ? यह उनकी भूल है। इस कथन के पीछे कमजोरी छिपी हुई है। अगर व्रत पर दृढ़ रहने की पक्की भावना है तो फिर प्रतिज्ञा से घबराने की क्या जरूरत है ? प्रतिज्ञा लेना संकल्प की दृढ़ता का सूचक है। प्रतिज्ञा से आगे के लिए भी दृढ़ता प्राप्त होती है। इसलिए प्रतिज्ञा ग्रहण करना आवश्यक है।

खास तौर से पुरुषों को पर-स्त्री त्याग और स्त्रियों को पर-पुरुष का त्याग करने की प्रतिज्ञा तो अवश्य ही लेना चाहिए। जो पुरुष परस्त्रियों को माता-बहिन समझता है और जो स्त्री पर-पुरुषों को पिता एवं भाई के समान समझती है, उसमें ब्रह्मचर्य का एक अंश आ जाता है। वे बहुत से पापों से बच जाते हैं। इस प्रकार की प्रतिज्ञा न लेने से कभी कभी बड़े-बड़े अनर्थ हो जाते हैं। इसका एक उदाहरण लो:—

एक व्यापारी सेठ था। व्यापार में घाटा हो जाने के कारण वह दरिद्र हो गया। दूसरों का देना भी उसके माथे पर था। सेठ ने अपनी पत्नी से कहा या तो मैं मर जाऊंगा या दूसरे देश में कमाने जाऊँगा। पत्नी समझदार थी। उसने सान्त्वना देते हुए कहा—सच्चे मर्द कभी मरने का विचार नहीं करते। धन तो हाथों का मेल है। कभी आ जाता है, कभी चला जाता है। आप धनवान् से निर्धन हो गये तो क्या निर्धन से धनवान् नहीं हो सकते? अवश्य हो सकते हैं। आप भले परदेश जाइए और व्यापार कीजिए, मगर मरने का विचार उत्पन्न ही न होने दीजिए। जीवन के लिए धन है, धन के लिए जीवन नहीं।

सेठ व्यापार के लिए परदेश चला गया। वह जब परदेश गया तो उसकी पत्नी गर्भवती थी। सेठ किसी व्यापारिक नगर में गया और कमाने लगा। इधर उसकी पत्नी ने कन्या को जन्म दिया। धीरे-धीरे वह बड़ी हो गई। कन्या रूपवती थी। विवाह के योग्य हो गई थी।

सेठ की पत्नी ने सेठ को पत्र लिखा कि लड़की बड़ी और विवाह के योग्य हो गई है। आकर उसका विवाह कर दीजिए।

मगर सेठ ने उत्तर दिया—मैं व्यापार में उलझा हुआ हूँ। अभी लौट नहीं सकता। विवाह के खर्च के लिए रुपये भेजता हूँ। आस पास के गाँव में कोई अच्छा-सा वर देख कर कन्या का सम्बन्ध कर देना। सेठ के आदेशानुसार पत्नी ने लड़की का विवाह कर दिया। अच्छा खासा दहेज दिया। लड़की सुसराल चली गई।

कुछ दिनों बाद सेठ दो-चार लाख रुपया कमा कर घर की तरफ रवाना हुआ। वह रास्ते मे एक रात उसी गाँव में ठहरा, जिसमे उसकी लड़की व्याही गई थी। रात के समय गर्मी के कारण सेठ को नींद नहीं आ रही थी। लड़की के सुसराल का घर नज़दीक ही था, पर उसे पता नहीं था। दोनो मकानों की छत मिली हुई थी। आसानी से इधर से उधर आया-जाया जा सकता था। लड़की अपने छत पर सो रही थी। रात काफी बीत गई थी। सर्वत्र सन्नाटा था। वह लड़की ऐसे समय लघु-शंका के लिए उठी। उसके पैरों की आहट से व्यापारी सजग हो गया।

एकान्त स्थान में, सुनसान रात्रि के समय में, तरुणी स्त्री को देख कर सेठ का मन एकदम पापमय बन गया। उसके चित्त में पाप की वासना जाग उठी। वह धीरे से उठा और दबे पाँव उस स्त्री के पास पहुंचा।

उधर उस स्त्री के हृदय में भी लोभ की आग भभक उठी। उस आग में उसका विवेक भस्म हो गया। उसने अपने शील रूपी अनमोल रत्न की अपेक्षा सेठ के गले की मोतियों की माला

को अधिक कीमती समझा । उसने आत्मा के आभूषण को गँवा कर शरीर का आभूषण ग्रहण कर लेना पसंद कर लिया। दोनों अपने-अपने धर्म से भ्रष्ट हो गये ।

सवेरे उठकर सेठजी अपने गाँव में आ गये। कमाया हुआ माल देख कर सेठानी बहुत खुश हुई। फिर सेठानी ने कहा अमुक गाँव मे लड़की ब्याही है। उसे आपने आज तक नहीं देखा है। अब जल्दी बुलवा लीजिये । सेठजी बोले—अरे! रात तो मैं उसी गाँव में ठहरा था! मुझे पता होता तो मैं अपने साथ ही लेता आता ! फिर सेठ ने लड़की को बुलवाया । लड़की आई। उसके गले मे वही मोतियों की माला देखकर सेठ के आश्चर्य का पार न रहा। उसने मन ही मन सोचा—यह माला तो वही है, जो मैंने दी थी! हाय यह तो घोर अतिघोर दुष्कर्म हो गया! अरे, इस अनर्थ का कोई ठिकाना नहीं है ।

उधर लड़की भी सारा भेद समझ गई । उसने पहचान लिया कि उस रात को मेरे पिताजी ही मिले थे! उसकी ग्लानि का पार नहीं रहा । मुँह दिखलाने का उसमें साहस नहीं रहा। लज्जा, मनोवेदना और संताप को वह सहन नहीं कर सकी। उसे जिंदा रहना दूभर हो गया। अतएव वह मकान के चौथे मंजिल पर गई और फांसी लगा कर मर गई। उधर सेठ भी ऊपर गया। उसने अपनी लड़की की यह दशा देखी तो उससे भी न रहा गया। उसने भी उसी रस्सी से फाँसी लगा कर प्राण त्याग दिये। इस प्रकार दोनों की जिंदगी बर्बाद हो गई।

भाइयो! यदि सेठ ने परस्त्री सेवन का त्याग किया होता अथवा उसकी लड़की ने परपुरुष-सेवन का प्रत्याख्यान किया

होता तो क्या यह नौबत आती? इस प्रकार का त्याग न करने से जिंदगी भ्रष्ट हो जाती है। अतएव शीलव्रत को धारण करो। शीलव्रत धारण न करने से भ्रूणहत्या जैसे बड़े-बड़े पापों के सेवन करने का भी प्रसंग आ जाता है। एक जन्म में, एक देश ब्रह्मचर्य का पालन करने से भी कल्याण हो जाता है।

इतना उपदेश सुनाने के पश्चात् मुनि ने कुबेरदत्ता से कहा—पुत्री! रोने और बिलखने से कोई लाभ नहीं, उलटी हानि होती है। यह आर्त्तध्यान है और आर्त्तध्यान भी पाप-बंध का कारण है। पाप से पाप का शमन नहीं हो सकता। पापों को धोने का मार्ग धर्म है। तुम धर्म का सहारा लो। धर्म का सहारा लेकर बड़े-बड़े पापी भी तिर जाते हैं। खून से लथपथ कपड़ा खून से साफ नहीं होता, पानी से साफ होता है। इसी कारण पाप से पाप का नाश नहीं होता, किन्तु धर्म से पापों का नाश होता है।'

मुनिराज का यह उपदेश सुनकर कुबेरदत्ता ने संयम अंगीकार कर लिया। वह तेले-तेले का पारणा करने लगी। तपस्या के प्रभाव से उसे अवधिज्ञान प्राप्त हो गया। अवधिज्ञान का उपयोग लगाने पर उसे मालूम हुआ कि मेरा भाई मथुरा पहुँचा है और मेरी माँ के साथ भ्रष्ट हो रहा है। उसने गुरुणीजी से आज्ञा मांगते हुए कहा—'बड़ा अनर्थ हो रहा है। मैं पापियों के उद्धार का रास्ता दिखलाना चाहती हूँ। आपकी आज्ञा हो तो जाऊँ।'

गुरुणीजी की आज्ञा प्राप्त करके साध्वी कुबेरदत्ता मथुरा में आई। वह कुबेरसेना वेश्या के घर भी पहुंची। कुबेरदत्त वहाँ मौजूद था। वेश्या ने साध्वीजी को देखकर कहा—आपका यहाँ

क्या काम है ? साध्वी और वेश्या एक जगह नहीं रह सकती, चोर और साहूकार, हिंसक और दयावान्, व्यभिचारी और ब्रह्मचारी, लाल मिर्च और नेत्र एक साथ नहीं रह सकते।

साध्वीजी ने बहुत मधुर और शान्त स्वर में कहा—आप फिक्र मत करो। मैं डाक्टरनी हूँ और आपको नीरोग करने आई हूँ।

भाइयो ! श्रमण भगवंत महावीर स्वामी बड़े वैद्यराज थे। उन्होंने आत्मा के तथा मन के सब रोगों के नुस्खे बतलाये हैं, जो शास्त्रों में लिखे हुए हैं। उन्हीं को देख-देखकर हम लोग आज भी आध्यात्मिक रोगों एवं मानसिक रोगों का इलाज किया करते हैं। कोई कहता है—'मैं जुल्मी हूँ।' हम कहते हैं—'इतने उपवास कर डालो।' रोगी कहता है—'महाराज ! मेरे मन में अमुक रोग घुसा हुआ है।' तब हम उसे चिकित्सा बतलाते हैं—'इतना स्वाध्याय करो, इतने आंबिल करो।' इस तरह हमारे पास सभी रोगों के नुस्खे हैं, व्यभिचार, झूठ, चोरी वगैरह सभी दोषों के नुस्खे हैं। जिसे निरोग होना है, आवे, दवा खावे और स्वस्थता प्राप्त करे। जो हमारी दवा खाएगा उसे आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा।

स्थान—जोधपुर }
ता०२५-८-४८ }

४

राग-द्वेष की आग

स्तुतिः—

कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्निकल्पम्,
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंगम् ।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तम्,
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ।

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं:—हे सर्वज्ञ, सर्व दर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम ऋषभदेव ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? भगवन् ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएँ ?

भगवान् के नाम में अद्भुत शक्ति है । मान लीजिए, कोई पुरुष कार्यवश किसी गाँव को जा रहा है। रास्ते में बड़ा

भारी जंगल आता है। उस जंगल में दावानल सुलग रहा है। वायु ऐसी प्रबल चल रही है मानो प्रलय कालीन वायु हो! उस वायु के झकोरों से आग और भी बढ़ी हुई है। उसमें से चिनगारियाँ और ज्वालाएँ निकल रही है। आग ऐसी मालूम होती है, मानों सारे संसार को भस्मसात कर देने के लिए तैयार हुई है। वह आग चारों ओर फैली हुई है। राहगीर उसमें फँस गया है। कहीं भी निकलने का रास्ता नहीं है। ऐसी परिस्थिति मे वह राहगीर सोचता है—अब जिंदा रहने का कोई उपाय नहीं है वह और सब उपायों को छोड़ कर एक मात्र प्रभु की शरण ग्रहण करता है। ऋषभदेव भगवान का स्मरण करता है। यह स्मरण करते ही वह भीषण दावानल पानी के समान बन जाता है। राहगीर का कुछ भी बिगाड़ नहीं होता और वह सकुशल अपने गाँव पहुँच जाता है। यह भगवान् ऋषभदेवजी के स्मरण की महिमा है। ऐसे महामहिमा-मंडित महाप्रभु ऋषभदेव को हमारा बार-बार नमस्कार है!

भाइयो! आप लोग स्थूल चीज को जल्दी समझ लेते हैं, मगर सूक्ष्म चीज को नहीं समझ पाते। बाहर की आग आँखों से दिखाई देती है और स्पर्शनेन्द्रिय उसका अनुभव कर लेती है। इसलिए आप उसे जल्दी समझ जाते हैं और उससे बचने की कोशिश भी करते है। मगर आपके अन्तरंग में एक ऐसी भयानक आग धू-धू करके जल रही है, जो क्षण भर के लिए भी कभी शान्त नहीं होती। उसे आप पहचानते हैं?

वह आग है राग-द्वेष की आग! राग और द्वेष की आग में यह सारा जगत् जल रहा है। स्थूल अग्नि तो स्थूल शरीर को ही

जलाती है, मगर यह भीतरी आग आत्मा के सद्गुणों को विनष्ट करती है या विकृत करती है। स्थूल अग्नि एक ही जन्म में मार सकती है मगर रागद्वेष की अग्नि जन्म-जन्मान्तर में आत्मा को सताया करती है। यह बड़ी विनाशकारी अग्नि है! राग और द्वेष में से एक न एक तो हरदम छाती पर सवार रहता ही है। राग नहीं तो द्वेष की आग में ही लोग जला करते हैं। द्वेष का काम बड़ा ही जबर्दस्त है। जिस आदमी के शरीर में द्वेष तीव्र रूप में रहता है, उसका खून जल जाता है। वह अच्छे-अच्छे पौष्टिक माल खावे तो भी दुबला ही बना रहता है। द्वेष से मनुष्य को घोर हानि उठानी पड़ती है। द्वेषी मनुष्य स्वयं तो हानि उठाता ही है, पर दूसरों को भी हानि करता है। वह दूसरों को संकट में डालने के लिए स्वयं संकट में पड़ता है। अन्तःकरण में जब द्वेष का आविर्भाव होता है तो मनुष्य ऐसा अन्धा बन जाता है कि उसे अपना भी भला-बुरा नहीं सूझता, वह हित-अहित का विचार करने में सर्वथा असमर्थ हो जाता है।

द्वेष के कारण ही सीता जैसी उज्ज्वल-शीला सती को वन-वास के कष्ट भोगने पड़े; क्योंकि सीता की बड़ी भारी महिमा हो रही थी और किन्हीं-किन्हीं को वह महिमा सहन नहीं हुई। उन्होंने जलना शुरु किया और फिर सीता को झूठा कलंक लगा दिया। द्वेष करने वाले के हाथ में क्या आता-जाता है? फिर भी वह निष्कारण द्वेष करता है। द्वेष करने से आत्मा के किसी गुण का विकास होता हो मुंह मीठा होता हो तब तो द्वेष करने में भी सार है। मगर ऐसा कोई भी लाभ तो होता नहीं है, फिर द्वेष करने वाले क्यों द्वेष करते हैं? वे अपनी बुरी आदत से लाचार हैं।

उनका काम स्वयं जलना और दूसरों को जलाना है।

घर में पहले-पहल सास-बहू इकट्ठी रहती हैं। वे चाहें तो हिल-मिल कर, एक दूसरी को प्रेम की मिठास देती हुई, बड़े आनंद के साथ रह सकती है। उनके ऐसा करने से उन्हें भी शान्ति प्राप्त हो सकती है और कुटुम्ब के लोगों को भी शान्ति मिल सकती है। पर यह सत्यानाशी द्वेष उनके बीच में आड़ा आ जाता है। उसका फल यह होता है कि उनमे दिन-रात कलह मचा रहता है। सास, बहू को और बहू, सास को दुश्मन-सी प्रतीत होती है। एक दूसरी को बदनाम करने का मौका खोजती रहती है। कई बार तो द्वेष का परिणाम इतना भयानक होता है कि एक दूसरी के प्राण ही ले बैठती हैं।

इन्दौर की घटना है। एक सासू ने अपनी बहू के हाथ-पैर बाँध दिये, उस पर तेल छिड़क दिया और आग लगादी। आग लगाकर और किवाड़ बंद करके वह चल दी। जब धुंआ निकला तो लोगों ने किवाड़ तोड़े और देखा तो बहू की यह दुर्गति हो गई है! आखिर वह मर गई।

कई लोग साधु-संतों को देखकर ही द्वेष करने लगते हैं। एक गाँव में साधु पहुँचे तो लोगों ने कहा—तुम हमारे गाँव में आये ही क्यों? ऐसे लोगों को साधु भी काले साँप के समान दिखाई देता है। अब कोई उससे पूछे कि भाई, साधु तुम्हारा क्या बिगाड़ते हैं? वे तुम्हें या दूसरों को क्या गलत रास्ते पर चलने की प्रेरणा करते हैं? क्या तुम्हारी भलाई मे बाधा डालते हैं? नहीं, तो निष्कारण द्वेष करने से क्या लाभ है? अगर

कोई साधु जीवहिंसा करने में धर्म बतलावे, झूठ बोलने का उपदेश दे, चोरी करने की प्रेरणा करे, आपस में लड़ाने-भिड़ाने की बातें करें तो कदाचित् उससे द्वेष भी किया जाय, मगर वह ऐसा कोई काम नहीं करते। वे स्वयं सदाचारमय जीवन यापन करते हैं और दूसरों को सदाचारी बनाने की शिक्षा देते हैं, फिर क्यों वृथा उन पर द्वेष करते हो ?

जगत् में जितने भी महापुरुष हुए हैं, प्रायः सभी के द्वेषी भी थे। जगत्पूज्य भगवान् महावीर पर भी द्वेष करने वालों का अभाव नहीं था। देख लो न, राम का दुश्मन रावण था, कृष्ण का दुश्मन कंस था, गांधी के प्राण लेने वाला गोडशे था, इस प्रकार कोई व्यक्ति चाहे कितने ही ऊँचे व्यक्तित्व से सम्पन्न क्यों न हो और भले ही उसके अन्तःकरण में प्राणी मात्र के प्रति दया और प्रेम का झरना बहता हो, फिर भी कोई न कोई उसका द्वेषी मिल ही जाता है। इससे पता चलता है कि संसार में द्वेष की दुर्भावना कितनी व्यापक है !

द्वेषी के दिल में कृष्ण लेश्या रहती है। उसमें रौद्रध्यान आ जाता है और वह अनर्थदंड का बड़े से बड़ा पाप करने को तैयार हो जाता है। करांची में द्वेष के कारण ही आर्य समाज के नेता दर्शनानन्दजी को छुरा भौंका गया था, श्रद्धानन्दजी को पिस्तौल की गोली का शिकार बनाया गया था। द्वेष के प्रताप से ही लवजी ऋषि जैसे पावन-आत्मा संत को जहर देकर मार डाला गया था ! वास्तव में दिल में जब द्वेष जागता है तो मनुष्य को कुछ भी भला नहीं सूझता।

हिन्दुस्तान के इतिहास पर नजर डालो तो पता चलेगा कि आपसी ईर्षा-द्वेष के कारण ही मुख्य रूप से इसका पतन हुआ। राजा लोगों के चित्त में द्वेष उत्पन्न हुआ और उन्होंने अपने विरोधी को गिराने के लिए अपने कर्त्तव्य का कुछ भी खयाल न करके विदेशियों की सहायता की। जयचन्द को भारत कैसे भूल सकता है? पर भारत में एक नहीं, सैंकड़ों जयचन्द हुए हैं। कहां तक उनकी नामावली गिनाई जाय? उनकी बदौलत देश को शताब्दियों तक पराधीनता भोगनी पड़ी!

द्वेष के दो रूप हैं—क्रोध और मान। मतलब यह है कि द्वेष या तो क्रोध के रूप में प्रकट होता है या अभिमान के रूप में प्रकट होता है। क्रोध के सम्बन्ध में पहले एक दिन कहा जा चुका है। क्रोधी मनुष्य पागल के समान बन जाता है। वह अपनी भलाई-बुराई को भी नहीं सोच सकता। वह बड़े से बड़ा अनर्थ कर डालता है।

एक नवयुवक था। पढ़ा-लिखा विद्वान् था। उसने न्याय-तीर्थ की परीक्षा दी थी। वह एक बार सुसराल गया। सास ने कोई कारण बतलाते हुए उसकी पत्नी को उस समय भेजने में असमर्थता प्रकट की। वह ले जाने का आग्रह करने लगा। बात बढ़ गई। नवयुवक ने कहा—अगर इसी समय पत्नी को नहीं भेज देती तो मैं दूसरा विवाह कर लूंगा और फिर कभी तुम्हारी लड़की का मुँह भी नहीं देखूंगा। सासू को भी तैश आ गया। उसके मुंह से निकल गया—ऐसा करोगे तो मैं समझ लूंगी कि मेरी बिटिया विधवा हो गई है! बस यह शब्द सुनना था कि उस नवयुवक के क्रोध का पार न रहा। उसने कहा—'तो अच्छी बात है' मैं

तुम्हारी लड़की को विधवा बनाकर ही छोड़ूँगा।' इतना कह कर वह उसी समय सुसराल से चल दिया और कुएँ में डूब मरा।

भाइयो ! इस विद्वान् नवयुवक की मनोवृत्ति पर जरा विचार कीजिए। यह बिल्कुल सत्य घटना है। दूसरों का अहित करने के लिए अपने प्राण भी दे देना क्या साधारण मूर्खता है ? पर क्रोधी के लिए यह साधारण बात है। उसने अपनी सास से बदला लेने के लिए अपनी जान दे दी ! क्रोध के कारण आये दिन न जाने कितनी ऐसी-ऐसी घटनाएँ हुआ करती हैं। इसलिए क्रोध का संस्कार ही चित्त में नहीं रहने देना चाहिए।

द्वेष का दूसरा रूप अभिमान है। अभिमान भी बड़ा भयंकर दुर्गुण है। अभिमान के कारण मनुष्य दूसरे के सद्गुणों को नहीं देख सकता, उनकी प्रशंसा नहीं कर सकता, उन्हें अपनाने की तो बात ही दूर रही ! जाति का अभिमान, कुल का अभिमान बल का अभिमान, रूप, धन, कुटुम्ब-परिवार आदि का अभिमान और ज्ञान का अभिमान मनुष्य के पतन का कारण बनता है। अभिमानी मनुष्य ज्ञान जैसे पवित्र गुण को भी जहर के समान अहितकारी बना लेता है। अभिमानी दूसरों को छोटा और अपने को बड़ा समझता है, मगर सारी दुनिया उसे तुच्छ और घृणित समझती है।

जहां अभिमान है वहां विनय नहीं और जहां विनय नहीं वहां विवेक नहीं, बुद्धि नहीं नम्रता नहीं, मृदुता नहीं, गुण-ग्राहकता नहीं। इस प्रकार विचार करने से विदित होगा कि अभिमान प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सब सद्गुणों को नष्ट करने वाला है। वह अनेक अनर्थों का मूल है।

जाति के अभिमान के कारण भारतवर्ष में क्या-क्या अनर्थ हुए हैं, यह बात आज सभी को मालूम हो चुकी है। अछूतों का वर्ग इसी अभिमान के कारण उत्पन्न हुआ। बल और सत्ता के अभिमान ने रावण को कैसी दुर्दशा करवाई? कहाँ तक कहें, अभिमान से होने वाली व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय हानियों का पार नहीं है।

भाइयो! अगर आप अपने जीवन को उन्नत और पवित्र बनाना चाहते है तो द्वेष का परित्याग करो। द्वेष की आग में अपने आप को जलाना तनिक भी बुद्धिमत्ता नहीं है। द्वेष का दुर्गुण आपको पतन के गहरे गड्हे में गिराने वाला है। द्वेष की आग आपके समस्त सद्गुणों को जलाकर भस्म कर देगी। उससे आपका जीवन निष्फल हो जायगा।

दूसरी आग राग की है। यह आग द्वेष की आग से भी सूक्ष्म है। द्वेष की आग अपेक्षाकृत जल्दी शान्त हो जाती है, राग की आग देर तक बनी रहती है। 'रागी दोषं न पश्यति'। जिसके अन्तःकरण में राग की प्रबलता है वह वस्तुओं के वास्तविक दोषों को भी नहीं देख पाता।

एक सेठजी थे। वे दुकान से घर आये और सेठानी से बोले—जरा पंसेरी उठा लाओ। कुछ सामान तोलना है। सेठानी सेठ के कहने से पंसेरी उठा लाई। मगर पंसेरी देने के बाद हाथ दबाने और तेल मलने लगी। यह देखकर सेठजी ने पूछा—क्या हो गया? सेठानी बोली—आपकी आज्ञा मानना मेरा धर्म है; मगर पंसेरी उठाने से मेरे हाथ में लचक (वांयटा) आ गई है। अब

दो दिन तक यह हाथ अच्छा नहीं होगा। सेठ ने कहा—ओहो! तुम्हें बड़ा कष्ट हो गया! तब मुँह बिगाड़ती हुई सेठानी बोली—कुछ मत पूछिए। मेरा जी ही जानता है!

सेठजी विचार करने लगे—परीक्षा करनी चाहिए कि क्या वास्तव मे ही यह इतनी सुकुमारी है कि पंसेरी उठाने में हाथ लचक गया है? अथवा यह बहाना कर रही है?

दूसरे दिन सेठजी अपनी दुकान से अढ़ाई सेर सोना और कुछ जवाहरात लेकर सुनार की दुकान पर गये। उन्होंने सुनार को बहुत बढ़िया हार तैयार कर देने का आर्डर दिया। साथ ही सूचना दी कि हार के बीच में फूल की जगह एक ऐसा पाना रखना कि उसमें पंसेरी रक्खी जा सके। एक पेंच रख देना जिससे वह पाना खुल सके और बंद भी किया जा सके।

सेठजी की हिदायत के अनुसार सुनार ने हार तैयार कर दिया। सेठजी ने उसे देखकर पसन्द कर लिया और सुनार को आदेश दिया कि जब मैं घर पर भोजन करने जाऊँ, इसे घर ले आना। इस आदेश के अनुसार सुनार हार लेकर घर पहुँचा। उसने आवाज दी—सेठ साहब! आपका जेवर तैयार है, मैं ले आया हूँ। सुनार की आवाज सुनकर सेठजी ने सेठानी से कहा—सुनार से कह दो कि जेवर दुकान पर ही देखेंगे।

सेठजी का उत्तर सुनकर सेठानी तमक कर बोली—क्यों? क्या मैं खाये जाती हूँ? घर में जेवर बने और मुझे देखने को भी नसीब न हो, भला यह भी कोई बात है?

सेठ—उसमें वजन बहुत है। तुम उसे सहन नहीं कर सकोगी।

सेठानी—यह कहिए न कि आप मुझे पहनाना ही नहीं चाहते! नहीं तो क्या कारण है कि दूसरी कोई स्त्री उसे पहन सकती है और मैं नहीं पहन सकती? क्या मैं मोम की बनी हूँ और दूसरी औरतें पत्थर की बनी है? मैं उसे लाती हूँ और पसन्द आ गया तो मैं पहनूंगी भी।

सेठ—तुम पहन सको तो भले पहनो। मुझे क्या एतराज है? मगर वजन ज्यादा है। हाथ में लेते ही हाथ लचक जायगा तो तुम जानो।

सेठानी आखिर हार ले आई। उसने गले में पहन लिया। काच में मुंह देखा तो फूल कर कुप्पा हो गई। सेठजी के पास आकर बोली—पंसेरी कितनी भारी थी! उसके सामने यह फूल-सा हलका है। इसके बाद सेठानी अड़ौस-पड़ौस में गई और अपनी सहेलियों को नया आभूषण दिखा आई। हार में रही हुई पंसेरी धड़ाधड़ छाती में लग रही थी, लेकिन आभूषण के प्रति राग होने के कारण सेठानी ने तनिक भी कष्ट अनुभव नहीं किया! जो मिला उसी को उसने अपना नया हार दिखलाया और अपने सौभाग्य पर अभिमान किया।

सुना है, आजकल शहरों की औरतें हर महीने एक नया फैशन निकालती हैं। वे दूसरी औरतों को दिखलाती हैं। वे देख और घर जाकर अपने-अपने पति से झगड़ती हैं कि हमारे लिए भी नये फैशन का जेवर बनवाओ।

हाँ, तो सेठानी उस हार को पहन कर सब को दिखलाती फिरती है। सेठ उससे कहता है कि इसे उतार कर रख दो,

तुम्हारी गर्दन दुखने लगी होगी, इस हार को तो जमना पार की लगड़ी स्त्रियाँ ही पहन सकती हैं, तो सेठानी नाराज होती है। वह कहती है–तुम तो मुझ से हार छीनना चाहते हो!

यों करते-करते दस-पन्द्रह दिन हो गये। गले में इतना बोझा लटकाये रहने के कारण सेठानी की छाती में दर्द होने लगा। वह बहुत दुबली हो गई। मगर वह हार नहीं छोड़ना चाहती। सेठ कहता भी है तो वह कहती है—नहीं, मैं दुबली नहीं हूँ। मैं तो मोटी हो रही हूँ।

एक दिन सेठ ने कहा—इधर आओ, तुम्हारा हार देखें।

सेठानी—नहीं, आप ले लेंगे तो फिर मैं क्या पहनूंगी?

सेठ—नहीं, हार नहीं लूंगा। इसका पाना देखना है।

सेठानी आई। सेठ ने उसके पाने का पेंच खोला और भीतर से पंसेरी निकाल कर कहा—यही है वह पंसेरी, जिसे लाने में तुम्हारा हाथ लचक गया था! अब तुम्हें यह वजनदार नहीं लगती?

सेठानी—अरे राम! मार डाला मुझे! तभी तो मैं सोचा करती थी कि इस हार में इतना वजन क्यों है? आपने गजब कर दिया! अब मैं इसे नहीं पहनूंगी।

सेठ बोले—पंसेरी पर तुम्हें राग नहीं था और हार पर राग था। इसी कारण पंसेरी भारी मालूम हुई और बार-बार कहने पर भी हार का भार तुम्हें मालूम ही नहीं हुआ। यह राग की महिमा है। ठीक ही कहा है—'रागी दोषं न पश्यति।'

तात्पर्य यह है कि मनुष्य जब रागान्ध हो जाता है तो उसे गुण-दोष नहीं सूझते। राग इस जीवन में व्याप्त होकर रहता है। धन-सम्पत्ति के प्रति, कुटुम्ब-परिवार के प्रति, भोगोपभोग की सामग्री के प्रति तथा अन्य मनोज्ञ प्रतीत होने वाले पदार्थों के प्रति मनुष्य के अन्तःकरण में राग का भाव विद्यमान रहता है। मगर यह राग भी द्वेष की ही तरह कर्मबंध का कारण है। अतएव जिस प्रकार राग त्याज्य है, उसी प्रकार द्वेष भी त्याज्य है। दोनों आत्मा में विकार उत्पन्न करते हैं। दोनो के कारण आत्मा में विभाव परिणति उत्पन्न होती है। जब तक आत्मा में राग और द्वेष का सद्भाव है आत्मा अपने असली स्वरूप को पूरी तरह नहीं देख पाता। गौतम स्वामी कितने ज्ञानी और महामुनि थे। मगर भगवान् महावीर के प्रति सूक्ष्म रागांश होने के कारण उन्हें केवलज्ञान नहीं हो रहा था। जब वह राग हटा तभी केवलज्ञान प्रकट हुआ। तात्पर्य यह है कि सूक्ष्म से सूक्ष्म राग भी आत्महित में बाधक ही होता है। ऐसी स्थिति में जिनके हृदय में स्थूल राग भरा पड़ा है, उनका कल्याण किस प्रकार हो सकता है? अनन्तानुबंधी राग के होते हुए तो सम्यग्दर्शन की भी प्राप्ति नहीं हो सकती! इसी कारण सर्वज्ञ भगवान् ने फरमाया है कि राग-द्वेष मनुष्य को नीच गति में ले जाने वाले हैं। दोनों ही कर्म बंध के कारण हैं। राग के कारण कभी-कभी आदमी मर भी जाता है।

दो स्त्रियां पानी भरने गईं तो क्या देखती हैं कि जलाशय के तीर पर हिरन का एक जोड़ा मरा पड़ा है। यह देख कर एक ने दूसरी से पूछा—

नहीं पापी नहीं पारधी, नहीं कोई लागा बाण।
मैं तुझ पूछूं हे सखी, इण क्यों कर छोड्या प्राण ? ॥

अर्थात्—यहाँ न कोई हत्यारा है, न पारधी है और न इनको कहीं बाण का घाव ही लगा दिखाई देता है। फिर यह दोनों किस प्रकार मर गये ? तब दूसरी स्त्री ने कहा—सुन बहिन !

जल थोड़ा तिरषा घणी, लगा प्रीति का बाण।
तू पी तू पी कह मरे, ऐसे छोड़े प्राण ॥

देखो, इस तालाब में पानी बहुत थोड़ा है और इन दोनों में प्रीति बहुत गाढ़ी थी। एक ने दूसरे से कहा—पहले तुम पानी पी लो। दूसरे ने पहले से कहा—नहीं, पहले तुम पीओ। दोनों प्यास से व्याकुल थे, मगर पहले किसी ने पानी नहीं पीया। इस प्रकार राग के वश होकर दोनो ने प्राण गँवा दिये।

स्नेह दुनिया में ऐसी ही चीज है। स्नेह के कारण भी कइयों को प्राण गँवा देने पड़ते हैं। राम और लक्ष्मण का उदाहरण कौन नहीं जानता ?

इन्द्रलोक में एक बार शकेन्द्रजी ने राम और लक्ष्मण की पारस्परिक प्रीति की सराहना करते हुए कहा—इन दोनों भाइयों में जितना स्नेह है, उतना कहीं अन्यत्र नहीं दिखाई देता। दोनों भाई दो शरीर एक प्राण हैं। अर्थात दोनो में इतना प्रगाढ़ प्रेम है कि एक के बिना दूसरे का जीवित रहना ही कठिन है।

शकेन्द्रजी की बात सुनकर एक देव को संदेह हुआ। उसने दोनों भाइयों के प्रेम की परीक्षा करने का विचार किया।

वह अयोध्या में आया। जब रामचन्द्रजी कहीं बाहर गये थे तो देव ने विक्रिया से उनके कपड़े बना लिये। उन कपड़ों को खून से लथपथ करके वह लक्ष्मण के पास ले आया। उसने कहा—'दुःख है कि रामचन्द्र का देहान्त हो गया है। मैं उनके कपड़े जंगल में से उठा लाया हूँ।'

यह शब्द सुनते ही लक्ष्मणजी के मुख से एक चीख निकल पड़ी। उन्होंने उसी समय प्राण त्याग दिये। रामचन्द्रजी लौटकर आये और लक्ष्मण के प्राणान्त का समाचार सुनकर अत्यन्त व्याकुल हो गये। अपने प्रियतम भ्राता के वियोग में बावले होकर वे छह महीने तक लक्ष्मण का मुर्दा शरीर लिये फिरते रहे। देवताओं ने बड़ी कोशिश की तब कहीं उन्होंने लक्ष्मण के शव का परित्याग किया। मगर वे गृहसंसार में नहीं रह सके। विरक्त होकर साधु बन गये। तपस्या करने लगे।

अनेक स्त्रियाँ अपने पति की मृत्यु के पश्चात् स्नेह से प्रेरित होकर प्राण त्याग देती हैं। कभी-कभी तो एक के पीछे कई कुटुम्बी मर गये, ऐसे समाचार भी आते हैं। मतलब यह है कि जब राग प्रबल होता है तो विवेक नष्ट हो जाता है। विवेक नष्ट हो जाने पर मनुष्य कुछ भी अनर्थ करने में नहीं हिचकता।

भाइयो! अगर आपको स्नेह ही करना है तो परमात्मा से स्नेह करो। परमात्मा के प्रति अगर प्रगाढ़ प्रीति करोगे तो सांसारिक पदार्थों संबधी प्रीति हट जायगी और उससे आत्मा का उत्थान और कल्याण होगा। परमात्मा से प्रेम न करके जो लोग संसार की वस्तुओं से प्रेम करते हैं, वे अपने लिए नरक का

द्वार खोलते हैं। इसी भव में वे अनेक अनर्थों के शिकार होते हैं। देख लो:—

राग से फंदे पड़त है मत कोई करियो प्रीत।
प्राण विंधाया राग से, हिरन सुन-सुन कर गीत ॥

इन्द्रिय के विषय पर राग करने के कारण हिरन को प्राण गँवाने पड़े। रात्रि के समय हिरनों की टोली जंगल से चल कर शहर के नजदीक आ जाती है। एक दिन पिछली रात्रि के समय किसी बुढ़िया ने चक्की पीसना शुरू किया। वह पीसती-पीसती हालरा गीत गाती थी। एक हिरन वह गीत सुन कर मोहित हो गया। दिन निकल आया। गीत में मस्त हुए हिरन को समय का भान ही नहीं रहा। दूसरे हिरन भाग गये, मगर वह वहीं मस्ती में झूमता रहा। उधर एक शिकारी आता है और निशाना ताक कर तीर मारता है। हिरन घायल हो जाता है और कहता है:—

विंधाया था सो विंध गया, अणविंध्या हर्षन्त।
गाओ माता हालरा, जब लग प्राण रहन्त ॥

मैं बाण से विंध गया हूँ और मर रहा हूँ। मगर ऐ बुढ़ी माँ, जब तक मेरे तन में प्राण हैं, तब तक हालरा गाये जा।

यह है राग का माहात्म्य! राग और द्वेष दोनों ही कर्म बंध के कारण हैं। इनके प्रभाव से मन और आत्मा की स्वस्थता नष्ट हो जाती है। इसी कारण शास्त्र में इन्हें कर्मों का बीज कहा है। राग और द्वेष-दोनों मिल कर ही कषाय कहलाते हैं। क्रोध

और मान द्वेष में तथा माया और लोभ राग में गिने जाते हैं। कषाय भाव संसार परिभ्रमण का कारण है। अतएव जो आत्मा का कल्याण करना चाहते हैं उन्हें राग-द्वेष को निरन्तर घटाने का ही प्रयत्न करना चाहिए। उन्हें अधिक से अधिक समभाव की वृद्धि करनी चाहिए।

सिर्फ परलोक में ही नहीं, बल्कि इस लोक में और इस जीवन में भी जो जितना समभावी होगा, वह उतना ही सुखी होगा। जो विवेकवान् पुरुष सुख मिलने पर हर्ष नहीं मानता, वह दुःख आ पड़ने पर शोक करने से बच जाता है। इष्ट संयोग होने पर हर्ष-विभोर हो जाने वाला, इष्ट वियोग या अनिष्ट संयोग के अवसर पर शोकमग्न हुए बिना नहीं रहता। अतएव ज्ञानवान् जनों को चाहिए कि वे प्रत्येक परिस्थिति में समभाव धारण करें। कहा भी है—

होकर सुख में मग्न न फूलें,
दुख में कभी न घबरावें।

तात्पर्य यह है कि राग और द्वेष से बचने का तथा जीवन में शान्ति प्राप्त करने का एक मात्र मार्ग समभाव है। समभाव का फल बतलाते हुए कहा है:—

समभावभावियप्पा लहइ मुक्खं न संदेहो।

अर्थात्—जिसकी आत्मा समभाव से युक्त है उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है, इसमें संदेह के लिए कोई अवकाश नहीं है।

जम्बूकुमार की कथा—

आज जम्बूकुमार के अन्तःकरण में राग और द्वेष के विकार भाव बहुत पतले और हल्के पड़ गये हैं। जगत् के पदार्थों के प्रति समभाव जागृत हो गया है। नव विवाहिता सुन्दरियों मे उन्हें राग नहीं है और घर में चोरी करने के लिए आये हुए प्रभव चोर पर द्वेष नहीं है। वे सब को समान भाव से देख रहे हैं। प्रभव से उन्होंने कहा—भाई! अनादि काल से यह जीव कुटुम्ब बनाता चला आ रहा है। जगत के समस्त जीवों को अनन्त-अनन्त बार इसने अपना कुटुम्बी बनाया है। मगर उनके संबंध से न इस जीव का त्राण हुआ और न इस जीव के निमित्त से उनका त्राण हुआ। कुटुम्बी होने के कारण कोई किसी को जन्म-जरा मरण के दुःख से नहीं बचा सकता। ऐसी स्थिति मे इस जन्म के कुटुम्बी मेरा उद्धार किस प्रकार कर सकेंगे? और मैं भी उनका क्या उद्धार कर सकूंगा? नाते-रिश्ते शरीर के निमित्त से होते हैं और जब शरीर छूट जाता है तो सब रिश्ते समाप्त हो जाते हैं। एक ही जन्म में एक, दो, चार नहीं, अठारह नाते तक हो जाते हैं। यह बात मैं तुम्हें कथा द्वारा समझाता हूँ।

कुबेरदत्ता आर्या वेश्या के पास गई। उसने कहा—मैं तुझे नीरोग कर दूंगी। मैं तुम्हे दुःख पहुँचाने नहीं, शांति पहुंचाने के लिए आई हूँ।

वेश्या ने कहा—जाओ कहीं दूसरी जगह जाकर पूंजनी हिलाओ। यहाँ तुम्हारा कोई काम नहीं है।

साध्वी—मुझे थोड़ी देर ठहरने दो। मैं तुम्हारी हानि नहीं करूंगी। कुछ फायदा ही पहुँचाऊँगी।

वेश्या—अच्छा एक काम करो। यह बच्चा रोता बहुत है। अगर इसको तुम खेला सको तो ठहर सकती हो।

कुबेरदत्त के संयोग से वेश्या के उदर से एक पुत्र उत्पन्न हो गया था। साध्वीजी को, उसी बालक को खेलाने का काम वेश्या सौंप रही थी।

साध्वीजी ने पतित आत्माओं को बोध देकर उनका उद्धार करने के निमित्त यह काम भी स्वीकार कर लिया। साध्वी का भाई कुबेरदत्त और वेश्या एक कमरे में चले गये और साध्वी बच्चे को हालरिया सुना कर कहती है:—

भोले बच्चे ! चुप हो जा। मैं तुझे गीत सुनाती हूँ। मत रो बच्चे ! मेरे-तेरे छह नाते हैं। तू मेरा देवर, भाई, काका, लड़का, भतीजा और पोता लगता है। हम दोनों एक ही जननी से जनमे हैं, इस कारण तू मेरा भाई है। तू मेरे पति का छोटा भाई होने के कारण देवर है। मेरी सौत का लड़का होने से तू मेरा लड़का है। मैं तेरे बाप की बहिन हूँ इस कारण तू मेरा भतीजा है। हम दोनों (तेरी माँ और मैं) सौतें हैं और तू मेरे लड़के का लड़का है, अतः तू पोता है। तू अपने बाप का भाई होने से काका भी है। दोनों की एक ही माँ होने से तू भाई भी है।

साध्वी ने बच्चे के साथ जो रिश्तेदारियाँ बतलाई, उन्हें सुनकर कुबेरदत्त बोला—तू यह अंटसंट क्या बक रही है ? पागल तो नहीं है ?

साध्वी ने मुस्किराते हुए कहा—नहीं, मैं पागल नहीं हूँ। इसी कारण ऐसा कहती हूँ। पागल को कहाँ ऐसी बातों का ख्याल

भी हो सकता है? इस बच्चे के साथ ही नहीं, तुम्हारे साथ भी मेरे छह रिश्ते हैं:—

तुम और मैं एक ही माता से जन्मे हैं, अतः तुम मेरे भाई हो। तुम्हारे साथ मेरा विवाह हुआ है, इस कारण तुम मेरे पति हो यह बच्चा मेरा काका है और तुम इसके पिता हो। इस नाते तुम मेरे दादा भी हो। मेरी माँ के पति होने के कारण तुम मेरे सुसर भी हो।। माँ के पति होने से तुम्हारे साथ मेरा पिता का भी संबंध है। साथ ही तुम सौत के बेटे होने से मेरे भी बेटे हो।

साध्वी की बात सुनी तो वेश्या कुबेरसेना अंदर से भाग कर आई और जोर से चिल्ला कर बोली—क्या फिजूल बातें बक रही है! भाग जा यहाँ से! जरा बता तो सही कि कैसे यह पति का छोरा है!

साध्वी शान्त रही। उसे तनिक भी आवेश नहीं आया। उसने कहा—तुमने न जाने कितनों को नरक में भेज दिया है। अब मुझसे क्यों नाराज होती हो? कटुक वचन मत बोलो। तुम्हारे साथ भी तो मेरे छह रिस्ते है। तुम मुझे जन्म देने वाली मेरी माता हो। तुमने हम दोनों को पेटी में बंद कर के बहा दिया था। क्या यह बात भूल गई हो? यह मेरे भाई हैं और तुम मेरे भाई की पत्नी होने के कारण मेरी भौजाई हो। तुम मेरे बाप की माँ होने के कारण मेरी दादी भी हो। इसके सिवाय तुम्हारे साथ मेरा सौत का भी संबंध है, क्योंकि हम दोनों का पति एक ही है। फिर तुम मेरी सासू भी तो हो, क्योंकि तुम मेरे पति की माता हो। एक तरह से मैं तुम्हारी सासू भी हूँ। इतने रिश्ते होने पर भी तुम मुझे अपने घर से भगा रही हो?

भाइयो ! अठारह नाते बतलाकर साध्वी ने उस वेश्या से कहा—जरा सोचो, समझो, विचार करो ! नखरे मत करो यह नखरे यहीं खत्म हो जाएँगे। यह वैभव यहीं धरा रह जायगा। यह आभूषण पड़े रह जाएँगे। तुम्हें अनन्त काल तक यहीं नहीं रहना है। परलोक से आई हो और थोड़े ही दिनो मे फिर परलोक जाना पड़ेगा। पहले किया सो अब भोगा है और अब जो कर रही हो सो आगे भोगना पड़ेगा। अभी थोड़ा समय है। चेतना हो तो चेत जाओ। बाजी हाथ से निकल जाने पर फिर पछताना पड़ेगा और पछताने से भी कोई लाभ नहीं होगा। तुमने अपने जीवन को अभी तक भ्रष्ट बना रक्खा है। तुमने अपने बेटे के साथ भी दम्पती का सम्बन्ध बनाया है। इससे बढ़कर भ्रष्टता और क्या होगी। तुम्हारी आत्मा घोर पतन की ओर चली गई है। हे सयानो, अब तो समझ, सोच और हित का विचार कर।

साध्वी का यह प्रतिबोध सुन कर वेश्या की अक्ल ठिकाने आ गई मोह का उन्माद दूर हो गया। और जब मोह का उन्माद दूर हो गया तो उसकी आँखे खुल गई। आँखें खुल गईं तो अपने पिछले जीवन पिछले जीवन पर उसने दृष्टिपात किया। उसका हृदय कराहने लगा। दिल तड़प उठा। पश्चात्ताप की ज्वालाएँ धधक उठीं। वह फूट-फूट कर रोने लगी। कुबेरदत्त भी लज्जा से मानों गड़ गया। उसकी सगी बहिन सामने खड़ी है और दोनों के साथ वह भ्रष्ट हो गया है! इससे बढ़ कर लज्जा की बात दूसरी क्या हो सकती है ? कुबेरसेना और कुबेरदत्त-दोनों सोचने लगे-धरती, तू फट जा। मुझे जगह दे तो मैं उसी में धँस जाऊँ। हाय रे मोह ! तूने मेरी जिंदगी बिगाड़ दी।

भाइयो ! जब तक अज्ञान का काला पर्दा बुद्धि पर पड़ा रहता है, तब तक अच्छाई–बुराई, हित-अहित कुछ भी नहीं सूझता। किन्तु जब कोई निमित्त पाकर भीतर के नेत्र खुलते हैं तब वास्तविकता का पता चलता है।

एक उस्ताद थे। उनके पास गरीब और अमीर दोनों तरह के लड़के पढ़ने आते थे। उस्ताद ने लड़कों से एक दिन कहा–मुझे शाक बनाने में देरी हो जाती है। इसलिए तुम लोग बारी-बारी से, एक-एक दिन शाक ले आया करो। ऐसा करने से मैं जल्दी निपट जाया करूँगा और तुम्हें ज्यादा पढाऊँगा। लड़कों ने यह बात मंजूर कर ली। वे बारी-बारी से शाक लाने लगे। एक दिन गरीब लड़के की बारी आई। उसने अपनी माँ से शाक देने के लिए कहा। मगर उसकी माँ बोली-कह देना, शाक तो हमें भी नसीब नहीं होता। कभी बनाएँगे तो भेज देंगे।

लड़का मदरसे गया। उसने उस्तादजी से कह दिया–शाक तो हमें भी नसीब नहीं होता। कभी मेरी माँ बनाएगी तो जरूर ले आऊँगा। उस्ताद बोले–नालायक ! अच्छा कभी ले आना।

एक दिन बालक की माँ ने कढ़ी बनाई। कढ़ी बड़ी जायकेदार बनी, मगर हुआ क्या कि बदकिस्मती से, ऊपर से, एक छिपकली उसमें आ पड़ी। पड़ते ही वह मर गई, क्योंकि उस समय कढ़ी गरम थी। माँ ने देखा तो कहा–गजब हो गया ! उसे निकाल कर फैंक दिया गया। मगर माँ ने कहा बेटा ! अपन ने आंखों देख लिया है छिपकली का पड़ना, अतएव अपन कढ़ी नहीं खाएँगे। तुम्हारे उस्तादजी शाक मांगते हैं न ? आज यह कढ़ी उन्हीं के लिए लेते जाओ।

उसने एक ठीकरे में कढ़ी डालदी और ऊपर से एक चींथड़ा ढँक दिया। लड़का कढ़ी लेकर उस्तादजी के पास गया। बोला-मैं आज कढ़ी लाया हूँ। उस्ताद बहुत प्रसन्न हुए। कहने लगे-लाओ बेटा !

लड़के ने कढ़ी का ठीकरा उन्हें पकड़ा दिया। उस्तादजी भोजन करने बैठे। उन्होंने कढ़ी चखी तो बोले-वाह वाह ! बड़ी बढ़िया जायकेदार कढ़ी बनी है ! इतनी बढिया कि जी चाहता है, उंगली भी खा जाऊँ ! अरे छोकरे ! तेरे घर ऐसी कढ़ी बनती है और कहता है कि मेरे यहाँ शाक ही नहीं बनता ?

लड़का बोला-उस्तादजी ! यह तो किसी कारण से आ गई है। उस्ताद ने कारण पूछा। लड़का बेचारा भोला-भाला ठहरा ! जो बात बीती थी वही उसने साफ-साफ बतलादी। बात सुनते ही उस्तादजी का पारा एकदम गरम हो गया। छोकरे को फटकारते हुए बोले-नालायक ! बेईमान कहीं का ! मेरे लिए छिपकली की कढ़ी लाया है ! और गुस्से से बावले होकर कढ़ी का ठीकरा लड़के को दे मारा।

लड़के को चोट नहीं लगी थी, मगर वह सिसक-सिसक कर रोने लगा। उसे रोते देख उस्तादजी ने पूछा-अबे नालायक, रोता क्यों है ? क्या सिर में घाव हो गया है ?

लड़का बोला-इधर तो आपने मारा और उधर मेरी माँ मुझे मारेगी। उस्तादजी-क्यों तेरी मां क्यों मारेगी ?

लड़का-यह ठीकरा जो फूट गया है ? माँ इससे मेरे छोटे

भाई की टट्टी साफ किया करती थी। अब वह कहेगी—तूं ठीकरा फोड़ लाया!

उस्तादजी मन ही मन सोचने लगे—यह तो बिगड़ी में भी बिगड़ी!

भाइयों! जब तक मनुष्य को सचाई का पता नहीं लगता, तब तक वह ऊपरी बातों में मग्न रहता है। जब सचाई का पता लग जाता है, अन्तःकरण में विवेक जाग उठता है तो भ्रम भाग जाता है। तब वह पाप को हेय और पुण्य को उपादेय समझने लगता है।

वेश्या का जीवन भी बिगड़े में बिगड़ा साबित हुआ। जब उसे साध्वी के कहने पर सचाई का पता चला तो उसका भ्रम दूर हो गया। वह पश्चाताप की आग में बुरी तरह तपने लगी।

मैंने एक दिन कहा था कि मनुष्य का जीवन एक चौराहा है। चौराहे पर प्रकाश-स्तंभ लगा रहता है और उस प्रकाश में चारों ओर जाने वाले रास्ते दिखाई देते हैं इसी प्रकार मनुष्य जीवन से चारों गतियों के लिए रास्ते जाते हैं। मनुष्य चाहे तो देवगति का रास्ता पकड़ सकता है, चाहे तो मनुष्य गति का मार्ग ग्रहण कर सकता है, चाहे तो तिर्यञ्च-गति की तरफ भी कदम बढ़ा सकता है और नरक-गति का भी मेहमान बन सकता है। शास्त्र और सद्गुरु रूपी प्रकाश इस चौराहे पर मौजूद है। चारों गतियों का मार्ग उस प्रकाश में देखा जा सकता है। आप यह भी जान सकते हैं कि किस गति में जाने से क्या हालत होगी? जिन्हें सुखमय हालत प्राप्त करनी है उन्हें देवगति और मनुष्यगति

की राह पकड़नी चाहिए, अर्थात् धर्म-कर्म करना और पापों से बचना चाहिए। पाप पहले भले लगते हैं पर अन्त में बहुत बुरे साबित होते हैं। बौद्धग्रन्थ में कहा है:—

पापोपि पस्सति भद्रं याव पापं न पच्चति।
यदा च पच्चति पापं अथ पापो पापानि पस्सति॥
भद्रोपि पस्सति पापं याव भद्रं न पच्चति।
यदा च पच्चति भद्रं अथ भद्रो भद्रानि पस्सति।

अर्थात्—जब तक पाप का फल नहीं मिलता तब तक पापी पाप को कल्याणकारी मानता है-पाप ही उसे अच्छा जान पड़ता है; पर जब पाप का फल मिलता है, तब उसे पाप का असली स्वरूप दिखाई देता है। मगर पुण्य के विषय मे यही बात उलटी है। पुण्यात्मा को जब तक पुण्य का फल नहीं मिलता तब तक उसे पुण्य बुरा लगता है। और जब पुण्य का फल प्राप्त हो जाता है तब उसे पुण्य का असली-सुखमय-स्वरूप प्रतीत होने लगता है।

इस प्रकार साध्वीजी से प्रतिबोध पाकर वेश्या रोने लगी। साध्वीजी ने कहा-रोना भी पाप है। हाँ, अगर तुम्हारे अन्तः-करण से यह आँसू निकल रहे हों और अन्तःकरण का मैल इनसे धुल गया हो तो पिछली बातों को भूलकर आगे का विचार करो। 'गई सो गई अब राख रही को।' अगर तुम अपने भविष्य को सुधारने में लग जाओ तो तुम्हारा रोना सार्थक हो सकता है। रोते रहने से या क्षण भर रो कर फिर वही रास्ता अख्तियार

कर लेने से कुछ भी लाभ नहीं है; बल्कि उलटा पाप का ही बंध होता है।

आखिर कुबेरसेना वेश्या साध्वी बन गई। कुबेरदत्त ने भी संयम धारण कर लिया। दोनों ने अपने जीवन की मलीनता को संयम रूपी जल से धो डाला। दोनों अब पवित्र जीवन व्यतीत करने लगे। भाइयो! सुबह का भूला शाम तक घर आ जाय तो भूला नहीं कहलाता। हलुकर्मी जीव जल्दी सुधर जाते हैं। उत्तम पुरुषों का यही कर्त्तव्य है। जीवन में कभी-कभी बड़ी विषम परिस्थितियाँ खड़ी हो जाती हैं। अज्ञान के कारण भयानक भूलें हो जाती हैं। मगर ज्ञान होते ही उन्हें फौरन सुधार लेने में ही कुशलता है।

साध्वी कुबेरदत्ता, वेश्या को अपनी गुरुणी के पास ले आई। वहाँ पहुँच कर उसने अन्तःकरण से अपने पापों की आलोचना की और अपने हृदय को निर्मल बना लिया। फिर यथाविधि दीक्षा धारण कर ली।

भाइयो! कारीगर कितना ही कुशल क्यों न हो, अगर मिट्टी अच्छी न हो तो वह अच्छी चीज़ नहीं बना सकता। कारीगर भी अच्छा हो और मिट्टी भी अच्छी हो तो चीज़ भी अच्छी बन सकती है। वेश्या को अच्छा निमित्त मिल गया और स्वयं हलुकर्मी थी, अतः उसने सहज ही अपना जीवन सुधार लिया।

जम्बूकुमार प्रभव चोर से कहते हैं—प्रभव भाई! संसार के नाते-रिश्ते इस प्रकार के हैं। कोई एक भी प्राणी तो ऐसा

नहीं हैं, जिसके साथ अनन्त नाते न हो चुके हों। फिर किस-किस के साथ प्रीति करे और किस-किस से न करें ? किसको अपना समझें और किसे पराया मानें ? ऐसी स्थिति मे सर्वश्रेष्ठ यही है कि सब प्राणियों पर समान भाव रखना चाहिए। सब पर समान भाव वही रख सकता है, जो पूर्ण संयम का पालन करे। प्राणी मात्र के प्रति आत्मीयता की भावना रखने के लिए पूर्ण अहिंसा का पालन करना अनिवार्य है और पूर्ण अहिंसा का पालन करने के लिए साधुपना स्वीकार करना अनिवार्य है। क्योंकि बड़े से बड़ा धर्मात्मा गृहस्थ भी पूरी तरह हिंसा से नहीं बच सकता। इस तरह विचार करने से मालूम होगा कि मैं अपने संबंधियों का त्याग नहीं कर रहा हूं, वरन् जिन संबंधियों को अभी त्याग रक्खा है, उनसे फिर संबंध स्थापित कर रहा हूँ। अर्थात् अभी तक कुटुम्ब के थोड़े से आदमियों को ही अपना मान रहा था, अब मैं जगत् के एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के समस्त प्राणियों को अपना समझूँगा। मैं आत्मीयता की भावना का चरम विस्तार करना चाहता हूँ। इसमें किसी को कोई भी हानि नहीं है। कुटुम्ब-परिवार की इन संकीर्ण भावनाओं को त्याग कर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की उदार भावना को अपनाना चाहता हूं।

जम्बूकुमार का यह कथन सुनकर प्रभव बहुत प्रभावित हुआ। वह कहने लगा—बस, मैं समझ गया। कुटुम्ब-परिवार की संकीर्ण भावना झूठी है और दुनिया झूठी है। मगर एक संशय मन मे अब भी घुसा है।

जम्बू०—कहो, वह भी कहो।

प्रभव—जिसके पुत्र नहीं होता, उसे स्वर्ग नहीं मिलता है। कहा भी है—

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति, स्वर्गो नैव च नैव च।
तस्मात्पुत्रमुखं दृष्ट्वा, स्वर्गं गच्छन्ति मानवाः॥

मैंने कई विद्वानों के मुख से सुना है कि जो मनुष्य निपूता मर जाता है, उसे स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती है। पुत्र का मुख देख लेने के बाद ही मनुष्य स्वर्ग पाते हैं।

हे कुमार अगर यह सिद्धान्त पक्का और सच्चा है तो अभी दीक्षा लेने से आपको स्वर्ग नहीं मिल सकेगा। इसलिए एक पुत्र का जन्म होने दीजिए। उसके तत्पश्चात् आपकी जैसी इच्छा हो, कीजिए।

जम्बूकुमार की पत्नियाँ खड़ी-खड़ी सोचती हैं—यह हमारी तरफ से अच्छा वकील खड़ा हो गया है। हमारा कहना भी यही है कि एक लड़का कुल का अवलम्बन होने के पश्चात् आप मोह को छोड़कर ऋषिराज बनना।

जम्बूकुमार ने कहा—प्रभव ! तुम कहते हो कि निपूते को स्वर्ग नहीं मिलता। मगर मैं कहता हूँ:—

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम्।
दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुलसन्ततिम्॥

हजारों-लाखों मनुष्य बिना पुत्र के, ब्रह्मचारी रह कर स्वर्ग में चले गये हैं। शुकदेवजी के कौन-सा लड़का था ? तो क्या वे

नरक में गये हैं ? और राजा श्रेणिक के कई लड़के थे, लेकिन वह नरक में जाने से नहीं बच सके। वास्तविक बात तो यह है कि पुत्र या कुटुम्बीजन किसी को स्वर्ग नहीं दे सकते। प्रत्येक जीव को अपनी करणी का फल भोगना पड़ता है। जो नरक के योग्य कर्त्तव्य करेगा उसे स्वर्ग नहीं मिलेगा। जो स्वर्ग में जाने योग्य कर्त्तव्य करेगा वह नरक में नहीं जायगा। अपने किये पुण्य-पाप के अनुसार ही सब जीवों को शुभ और अशुभ फल प्राप्त होता है। दूसरों के देने से स्वर्ग और नरक मिलता हो तो अपनी करणी क्या काम आएगी ? फिर तो शुभ-कर्म का और अशुभ-कर्म का कोई फल ही नहीं होगा ! आचार्य फरमाते हैं:—

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा,
फलं तदीयं लभते शुभाशुभम् ॥

अर्थात्—इस आत्मा ने शुभ या अशुभ—जैसे भी कार्य पहले किये हैं, उनके अनुसार ही फल की प्राप्ति होती है।

परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं।
स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥

अगर जीव दूसरे के दिये भले-बुरे फल को भोगने वाला हो तो अपने निज के किये कर्म निरर्थक हो जाएँगे।

प्रभव ! जरा विचार तो करो कि जो मनुष्य जीवन पर्यन्त पापकर्म में लगा रहा है, जिसने कभी कोई सुकृत नहीं किया, जिसकी भावना निरन्तर मलिन ही बनी रहती है और जो दया दान, परोपकार, क्षमा, संतोष, शील, प्रभुभजन आदि कोई भी

शुभ कृत्य नहीं करता, वह सिर्फ पुत्र पैदा करके कैसे स्वर्ग पा सकता है ? इसके विपरीत जिसने आ-जीवन ब्रह्मचर्य जैसे महान् व्रत का पालन किया है, जिसने घोर तपस्या की है, जिसने समस्त कामनाओं से अतीत होकर ऊँची श्रेणी की साधना की है, क्या वह सिर्फ पुत्र न होने के कारण नरक का पात्र बनेगा ? नहीं, ऐसा कदापि नहीं हो सकता । ऐसी व्यवस्था मान लेने का परिणाम यह होगा कि संसार से सदाचार की प्रतिष्ठा उठ जायगी और दुराचार का दौरदौरा हो जायगा। जब लोग समझ लेंगे कि कैसा ही दुराचार करो, पुत्र पैदा करने से स्वर्ग मिल जायगा, तो वे सदाचार को तिलांजलि देकर पुत्र पैदा करके ही स्वर्ग चाहने लगेंगे। फिर संसार के सभी धर्मशास्त्रों में और नीति के शास्त्रों में सदाचार का जो उपदेश दिया है, उसे कौन पूछेगा ? कौन उसे अपनाएगा ? इसलिए प्रभव ! इस गलत धारणा का परित्याग कर देना ही श्रेयस्कर है । स्वर्ग-नरक की प्राप्ति अपने शुभ-अशुभ कर्त्तव्य से ही होती है ! बेटा बाप का कोई कल्याण नहीं कर सकता। इस जन्म में ही जब बाप बीमार होता है तो बेटा उसके कष्ट को नहीं मिटा सकता तो परलोक का कष्ट कैसे मिटा सकेगा ?

हे प्रभव ! जो इस प्रकार विचार कर शुभ अनुष्ठान में प्रवृत्ति करता है, वह आनन्द ही आनन्द पाता है।

स्थान—जोधपुर }
ता०२६-८-४८ }



सत्संगति

स्तुतिः—

रक्तेक्षणं समदकोकिलकण्ठनीलम् ।
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम् ॥
आक्रामति क्रमयुगेन निरस्तशंक ।
स्त्वन्नाम नागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं:—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन्! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय? भगवन्! आपके गुण कहाँ तक गाये जाएँ? प्रभो! आपके नाम की महिमा का कहाँ तक बखान किया जाय? जिस पुरुष के हृदय में आपका नाम रूपी नागदमनी औषधि है, वह लाल-लाल आँखों वाले

मतवाली कोयल के कंठ के समान काले, क्रोध से उद्धत, फरण ऊँचा उठाकर सामने आने वाले भयानक साँप को भी, निर्भय होकर लाँघ जाता है ! आपके नाम के लोकोत्तर प्रभाव से उसका कुछ भी नहीं बिगड़ सकता।

प्रभो ! श्रद्धापूर्वक आपके नाम का जाप करने से भयंकर से भयंकर विषैले सर्प का भी विष बेअसर हो जाता है। हे आदिनाथ ! आपको ही हमारा बार-बार नमस्कार है।

भाइयो ! भगवान् ऋषभदेव के नाम में अपूर्व शक्ति है, मगर आपके अन्तःकरण में भगवान् के प्रति भक्ति होनी चाहिए। तभी वास्तविक फल की अभिव्यक्ति होती है। अपनी भक्ति के लिए सिर्फ ईश्वर की शक्ति से हमारा निस्तार नहीं हो सकता। सूर्य प्रकाश फैलाता है, चन्द्रमा अपने सौम्य प्रकाश से जगत् को आलोकित कर देता है, दीपक भी अपनी शक्ति के अनुसार अंधकार को दूर करता है, मगर इन सब प्रकाशों का लाभ वही उठा सकता है जिसके नेत्र खुले हों, अंधे के लिए यह सब प्रकाश व्यर्थ हैं। वह इनसे कोई लाभ नहीं उठा सकता। मतलब यह है कि सूर्य का प्रकाश यद्यपि अंधकार को नष्ट कर देता है, फिर भी अपने नेत्रों को तो खोलना ही पड़ेगा। इसी प्रकार भगवान् के नाम की शक्ति अपरिमित फल प्रदान करने वाली है, फिर भी भक्ति तो हृदय में होनी ही चाहिये। भक्ति के बिना फल की प्राप्ति नहीं हो सकती। भगवान् का नाम साँप के जहर को भी दूर कर देता है। यह कोई अद्भुत बात नहीं है। क्योंकि भगवान् की शक्ति इससे भी बहुत बढ़ कर है। भगवान् का नाम जपने से पाप रूपी जहर भी, जो जन्म-जन्मान्तर में मारने वाला

है, नष्ट हो जाता है। सांप का विष एक ही जन्म में बेसुध बनाने वाला और प्राणों का अन्त करने वाला है, परन्तु पाप का विष न मालूम कितने भवों तक प्राणघातक कष्ट दिया करता है! जब भगवान् के नाम स्मरण से पाप का विष भी दूर हो जाता है तो सांप का विष दूर हो जाय, यह कौन बड़ी बात है?

यों तो पाप और पुण्य मन, वचन और काय-तीनों योगों द्वारा होता है और तीनों योगों से होने वाले पाप का त्याग करना चाहिये, मगर विचार करने पर साफ मालूम हो जाता है कि इस त्रिपुटी में मन की प्रधानता है। मन राजा है और वचन तथा काय उसके अनुचर हैं। वचन और काय मनके अधीन हैं। मन उन्हें जो आदेश देता है, उसी का वे पालन करते हैं। इसीलिए कहा गया है:—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

अर्थात्—बंध का कारण भी मन ही है और मोक्ष का कारण भी मन ही है।

यहाँ एकान्त मन को ही बंध-मोक्ष का कारण बतलाया है; इसका आशय यही समझना चाहिए कि मन बंध-मोक्ष का प्रधान कारण है। सब से पहले मन में कोई विचार उत्पन्न होता है। वही विचार फिर वचन और तन को प्रेरित करता है। मन चलाने वाला है और वचन तथा काय चलने वाले हैं। अतएव सब से पहले मन को साधना आवश्यक है। मन के सध जाने पर वचन और काय को साध लेना सरल हो जाता है।

मन, वचन और काय की प्रवृत्ति को पूरी तरह रोक लेना प्रत्येक के लिए संभव नहीं है। आप हाथ-पैरों को बिना हिलाये डुलाये कुछ देर रह सकते हैं, बिना बोले भी रह सकते हैं, मगर मन को हलचल को नहीं रोक सकते? मन तो प्रतिपल उधेड़बुन में लगा ही रहता है। ऐसी हालत में आपको क्या करना चाहिए? इस प्रश्न का व्यावहारिक उत्तर यह है कि आप मन, वचन, काय, का पूर्ण निरोध करने का आदर्श अपने सामने रखिये। मगर जब तक उनका पूरा निरोध नहीं हो पाता तब तक उनकी अशुभ प्रवृत्ति को रोक दीजिए। शुभ प्रवृत्ति मे लगाये रहने से उनकी अशुभ में प्रवृत्ति रुक जायगी। फिर किसी समय ऐसी ऊँची भूमिका भी आप प्राप्त कर लेंगे जब पुरी तरह प्रवृत्ति रुक जाय। इसलिए सदैव सावधान रहो और अपने की चौकीदारी करते रहो। उसमें कभी विकार रूपी चोर न घुसने पावे। कभी हठात् प्रवेश कर भी जाय तो विवेक रूपी दीपक को लेकर उसे खोजो और तत्काल बाहर निकाल दो।

भाइयों! बुरे विचारों में मन की प्रवृत्ति मत होने दो। इससे निरर्थक ही पाप का बोझ लद जाता है। अगर आप अपने मन में सद्विचार ही रक्खोगे तो आपकी जीभ सत्य, हितमय और मधुर भाषा ही बोलेगी और आपका शरीर अच्छे काम में ही लगेगा। इस तरह तीनों योगों की शुभ प्रवृत्ति से आपका जीवन ऊँचा उठेगा। जब आपका जीवन ऊँचा उठ जायगा, आपका मन पवित्र बन जायगा और आपके संकल्प में दिव्यता आ जायगी तो आपका संसार निराला रूप धारण कर लेगा। श्रीमद् आचारांगसूत्र में फरमाया है:—

जे आसवा ते परिसवा,
जे परिसवा ते आसवा ॥

जिसका मन पूरी तरह वश में हो गया है, उसके लिए आस्रव के कारण भी निर्जरा के कारण बन जाते हैं। जिनका चित राग-द्वेष आदि कषायों से कलुषित है, उसके लिए निर्जरा के कारण भी आस्रव के कारण बन जाते हैं।

आस्रव के कारण किस प्रकार निर्जरा के कारण बन सकते हैं ? यह जानना हो तो राजा संयती की घटना पर विचार करो। संयती राजा शिकार खेलने के लिए जंगल में गया था। उसने हिरन को तीर मारा। यह आस्रव का ठिकाना था। मगर वहाँ मुनिराज का अचानक समागम हो गया तो आस्रव की जगह संवर हो गया।

जीवन में संगति का बहुत गहरा असर पड़ता है। नीति में कहा है:—

संसर्गजा दोष-गुणा भवन्ति ।

अर्थात् कोई व्यक्ति जन्म के साथ गुणों और दोषों को लेकर नहीं आता; वरन् संसर्ग के कारण ही उसमें दोष और गुण उत्पन्न हो जाते हैं। कसाई के घर पैदा होने वाला बालक संसर्ग-दोष से ही निर्दय, निष्ठुर और क्रूर हो जाता है। धर्म-निष्ठ श्रावक का बालक बचपन से ही दयालु, कोमल-हृदय होता है। इसका प्रधान कारण संगति ही है। सत्-संगति से अनायास ही दोष नष्ट हो जाते हैं और सद्गुणों का विकास होता है। असत्संगति

समस्त सद्गुणों का संहार करने वाली और दोषों का पोषण करने वाली है।

विशेषतया साधु-संतों की संगति से तो महान् लाभ होता है। कहा भी है:—

चन्दनं शीतलं लोके, चन्दनादपि चन्द्रमाः।
चन्द्रचन्दनयोर्मध्ये, शीतला साधुसंगतिः ॥

चन्दन शीतल होता है और चन्दन की अपेक्षा दिन भर सूर्य की प्रखर किरणों से संतप्त मनुष्यों के लिए चन्द्रमा की अमृतमयी किरणें और भी शीतल मालूम होती हैं। मगर साधुजनों की संगति चन्द्रमा और चन्दन से भी अधिक शीतल होती है। इसका कारण यह है कि चन्दन और चन्द्रमा सिर्फ शारीरिक संताप को ही मिटाते हैं, मगर साधुसमागम अन्तःकरण के ताप को भी निवारण करता है। साधु-संगति से तीनों ताप नष्ट हो जाते हैं। राग-द्वेष आदि से उत्पन्न होने वाला दुःख आध्यात्मिक ताप कहलाता है; भूत, पिशाच, चुड़ैल, डाकिन आदि के द्वारा होने वाला दुःख अधिदैविक ताप कहलाता है और शस्त्र, कांटा आदि के लगने से होने वाला कष्ट अधिभौतिक ताप कहा जाता है। इन तीन तापों को दूसरे शब्दों में शारीरिक और मानसिक दुःख भी कह सकते हैं। साधुओं के समागम से इन सब कष्टों का अन्त आ जाता है। दूसरे नीतिकार कहते हैं:—

जाड्यं धियो हरति सिंचति वाचि सत्यं,
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।

चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्त्तिं,
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥

सत्पुरुषों की संगति करने से बुद्धि की जड़ता चली जाती है, वाणी में सत्य आ जाता है, मान-सम्मान की वृद्धि होती है, पाप दूर हो जाता है, चित्त में प्रसन्नता पैदा होती है, चारों ओर कीर्ति फैलती है; अरे सत्संगति करने से क्या-क्या नहीं होता ? सत्संगति से सभी मनोरथ पूरे हो जाते हैं। इसके विपरीत कुसंगति से आत्मा में अनेक दोषों की उत्पत्ति होती है और सद्गुणों का विनाश होता है:—

पात्रमपात्रीकुरुते, दहति गुणं स्नेहमाशु नाशयति ।
अमले मलं नियच्छति, दीपज्वालेव खलमैत्री ॥

अर्थात्—दुष्टजनों की संगति से सुपात्र भी अपात्र बन जाता है। वह तमाम सद्गुणों को भस्म कर डालती है। स्नेह को शीघ्र ही नष्ट कर डालती है और निर्मल को भी मलिन बना देती है। खलजनों की मित्रता सचमुच ही दीपक की ज्वाला के समान है। दीपक की ज्वाला भी पूर्वोक्त सभी कार्य करती है।

संगति अमोघ है। प्रायः उसका फल मिले बिना नहीं रहता। सत्संगति पाकर भी अगर कोई नहीं सुधरता तो समझना चाहिये कि वह बड़ा ही अभागा है और कुसंगति में रह कर भी यदि कोई नहीं बिगड़ता तो समझ लीजिए कि वह अत्यन्त भाग्यशाली है।

संगत पा सुधरे नहीं, जाका बड़ा अभाग ।
या कुसंग बिगड़ै नहीं, ताका बड़ा सुभाग ॥

देखिए, स्थूलि भद्र महाराज वेश्या की संगति में रहे, जानबूझ कर उसके घर मे रहे, फिर भी उनका व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि वे बिगड़े नहीं। उन पर वेश्या का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, प्रत्युत वेश्या ही उनसे प्रभावित हुई। जिनके चित्त पर पापियों का रंग नहीं चढ़ता बल्कि जो अपना रंग पापियों पर चढ़ा देते हैं, उनसे बढ़कर भाग्यशाली और कौन होगा? कई लोग, जिनका व्यक्तित्व प्रबल होता है और जिनके सद्गुण बहुत गहरे होते है, बुरे संग मे रह कर भी नहीं बिगड़ते। इस विषय में कहा जाता है.—

सच्चे सद्गुरु मिल गये, कहा करै कुसंग।
चंदन विष व्यापै नहीं लिपटे रहें भुजंग ॥

देखो, चन्दन के वृक्ष पर सर्प लिपटा रहता है, फिर भी चन्दन वृक्ष उसके विष को ग्रहण नहीं करता है। कई अच्छे आदमी कुसंग पाकर भी नहीं बिगड़ते हैं। कुसंग और सुसंग पर पौराणिक जिक्र है:—

मथुरा नगरी में एक राजा था। उनका नाम उग्रसेन था। राजा उग्रसेन एक दिन जंगल में शिकार खेलने गये। वहाँ उन्हें एक तपस्वी महात्मा मिल गये। राजा ने उन्हें अगले दिन अपने यहाँ भोजन करने का निमंत्रण दिया। महात्मा ने कहा—कल की कल से देखी जायगी। हम आज, कल का निमंत्रण नहीं मानते।

दूसरे दिन महात्मा राजा के महल मे गये। उनके मास-खमण का पारणा था। जब महात्माजी वहाँ पहुँचे तो देखा कि राजा वहाँ मौजूद नहीं है। वह दूसरे काम में लगा हुआ था

और महात्माजी के आने का उसे खयाल नहीं रहा था। महात्मा लौट आये। उन्होने नियम ले रक्खा था कि एक महीने बाद हीं पारणा करेंगे और भिक्षा के लिए सिर्फ एक ही घर जाएँगे। वहाँ भिक्षा मिल गई तो मिल गई, न मिली तो दूसरे घर भिक्षा के लिए नहीं जाएँगे।

उक्त महात्मा को जब राजा के घर भिक्षा न मिली तो वह वापिस लौट गये और दूसरे महीने की तपस्या का उन्होंने प्रत्याख्यान कर लिया। राजा फिर उनके पास गया। उसने अपनी गलती के लिए पश्चात्ताप किया; क्षमा-प्रार्थना की और फिर अगले पारणे के दिन राजमहल में पधारने की प्रार्थना की। महात्माजी लगातार दो महीने के अनशन-तप के पश्चात् फिर राजा के यहाँ पहुंचे। मगर रोज़ मौके पर वह फिर किसी दूसरे काम में लग गया। महात्मा फिर लौट आये और उन्होंने तीसरे महीने की तपस्या का पच्चक्खाण कर लिया।

अब की बार राजा को और अधिक पश्चात्ताप हुआ और साथ ही तपस्वी को भी क्रोध उत्पन्न हुआ। तपस्वी सोचने लगा राजा मेरे साथ निर्दयता-पूर्वक खिलवाड़ करता है! कितनी क्रूर खिलवाड़ है यह! उसे मालूम है कि मैं एक महीने के बाद सिर्फ एक ही घर में पारणा करने के उद्देश्य से प्रवेश करता हूँ। वहाँ भिक्षा न मिले तो दूसरे घर में नहीं जाता। यह जानता हुआ भी राजा इतनी उपेक्षा करता है! पहले आमंत्रण देता है, फिर भूल जाता है। वह मेरी ज़िंदगी के साथ मखौल करता है! मेरे प्राणों के साथ खेल खेलता है।

तपस्वी इस प्रकार सोच ही रहे थे कि राजा फिर आमंत्रण देने जा पहुँचा। तपस्वी ने अपने दुर्बल शरीर की लाल-लाल आँखें निकालते हुए कहा—चल, हट जा यहाँ से! मैं तेरा निमंत्रण मंजूर नहीं करता। यदि मेरी तपस्या का कोई फल हो तो मैं तेरे लिए दुःख का कारण बनूं! ठीक ही कहा है—

क्रोध से तपस्वी की तपस्या, क्षण में होय विनाशजी।

तपस्या करते हुए क्षमाभाव धारण करने से बड़ा धर्म होता है। मगर अकसर देखा जाता है कि तपस्वी में क्षमा होना दुर्लभ है।

वह तपस्वी क्रोध करके मर गया और राजा उग्रसेन की रानी की कूंख में उत्पन्न हुआ। जब रानी का गर्भ तीन महीने का हुआ तो गर्भस्थ जीव के प्रभाव से कई झंझटें खड़ी हो गईं। उग्रसेन के चित्त को क्लेश पहुंचाने वाले कई कारण उपस्थित हो गये। धीरे-धीरे नौ महीने पूरे हुए। पुत्र का जन्म हुआ तो उसका नाम कंस रक्खा गया। एक लड़की भी उत्पन्न हुई। उसका नाम सत्यभामा हुआ। कंस पूर्व जन्म का तपस्वी है और पिता का द्वेषी है, लेकिन तपस्या के प्रभाव से तेजस्वी है। वह बचपन से ही बड़ा उग्र उद्दण्ड और क्लेशप्रिय है।

क्रोध करते हुए मरने से यही हालत होती है। क्रोध बहुत बुरी चीज है। भाइयो, क्रोध में कोई मत मरना। मृत्यु के समय खूब शान्ति और खूब सद्भाव होना चाहिए। क्रोध अत्यन्त भयानक और प्रबल शत्रु है। कहा है—

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणयनासणो।
माया मित्ताणि नासेइ, लोभो सव्वविनासणो॥
—दश० अ० ८, गा० ३८

जब अन्तःकरण में क्रोध की आग सुलगती है तो उसमें प्रेम-प्रीति का सर्वथा अभाव हो जाता है। स्नेह का समस्त सद्भाव भस्म हो जाता है।

कंस बड़ा हो गया। वह वसुदेवजी के सब कामों में अगुवा बन गया। कंस के काका की एक कन्या थी, जिसका नाम देवकी था। कंस ने सोचा—अगर वसुदेवजी के साथ देवकी का संबंध बैठ जाय तो इनके साथ मेरा और भी घनिष्ठ सम्बन्ध हो जायगा। यह सोचकर उसने यथोचित उपाय करके दोनों की सगाई तय कर दी। वसुदेवजी की एक पत्नी रोहिणी थी। अब दूसरा विवाह देवकी के साथ हो गया। देवकी के पिता का नाम देवक था। देवक ने जब देवकी का विवाह किया तो अच्छा खासा दहेज दिया। दहेज में राजा नंद को भी दे दिया और दस गोकुल भी दिये। नंद अहीरों में मुखिया था और यमुना के परले पार गोकुल गाँव उसी के कब्जे में था। नंद वसुदेव का बड़ा प्रेमी था।

कंस का विवाह उस समय के प्रतापी राजा जरासंध की लड़की जीवयशा के साथ हुआ। जब हथलेवा छोड़ने का समय आया तो उससे पूछा गया—क्या चाहते हो?

इस समय कंस के हृदय में अपने पिता उग्रसेन के प्रति द्वेष जाग उठा। पूर्वजन्म का बदला लेने की भावना उसके मन

में उत्पन्न हुई। यद्यपि वह जानता नहीं था कि पूर्व जन्म में क्या घटना घटी थी, फिर भी अज्ञात संस्कार अपना काम कर रहे थे। तो कंस ने हथलेवा में मथुरा का राज्य माँगा। जरासंध यह माँग सुनकर चकित रह गया। उसने कहा—आप क्या माँग रहे हो? मथुरा का राज्य तो आपका ही है। आपके पिता ही तो मथुरा के राजा हैं!

कंस ने कहा—कब वह बूढ़ा मरेगा और कब मुझे सिंहासन मिलेगा! मुझे अभी राज्य चाहिए।

जरासंध ने मथुरा का राज्य देना स्वीकार कर लिया। बरात की विदा के साथ ही साथ जरासंध की विशाल सेना भी मथुरा की ओर बिदा हुई। फौज के साथ कंस मथुरा में आया। उसने अपने बाप को पकड़ कर जेलखाने में लोहे के पींजरे में बन्द कर दिया और खुद राजा बन बैठा। यह पूर्वजन्म के द्वेष का प्रताप है! जो भी कार्य होता है, उसका प्रत्यक्ष कारण चाहे दिखाई न दे, मगर कारण होता अवश्य है। बिना कारण कोई कार्य हो ही नहीं सकता। उग्रसेन ने तपस्वी को निमंत्रण देकर भूखा रक्खा था। उसी पाप का फल आज उन्हे भोगना पड़ा इसलिए भाइयो! कभी किसी को न्यौता देकर भूखा मत रखना! किसी को थाली पर से मत उठाना। नहीं तो तुम्हारी भी ऐसी ही दशा होगी।

कंस का यह व्यवहार समुद्रविजय को अच्छा नहीं लगा। और न्यायप्रिय लोगों ने भी इस दुर्व्यवहार के प्रति अपनी नफरत जाहिर की। मगर उसका प्रतिकार कोई नहीं कर सका। प्रतिकार करने का साहस ही किसी को नहीं हो सका, क्योंकि कंस को

जरासंध का बल प्राप्त था और जरासंध बड़ा जबर्दस्त तथा शक्तिशाली राजा था। वह तीन खंड का सम्राट था—अर्ध चक्रवर्ती था। जिसके पास कलदार ज्यादा होते है या जिसके हाथ में हुकूमत होती है, उसके सामने कोई नहीं बोलता, मन मे भले ही सौ-सौ गालियाँ देते रहें! लेकिन वही काम जब कोई गरीब कर लेता है तो उसकी बहुत बुरी दशा हो जाती है।

देख लो, कंस मथुरा का मालिक बन बैठा और बाप को कारागार में बद कर दिया। मगर किसी की ताकत नहीं कि कोई चूं भी कर सके। मन ही मन कंस को कोसने वाले बहुत हैं, मगर सामना करने वाला कोई नहीं है। कंस गर्व के साथ कहता है—

मैं हूँ मथुरा का बांका राजवी मेरा नाम कंस है।
मेरा सामना कौन कर सके, किस जननी ने जाया ॥
स्वर्ग नरक मैं कुछ नहीं मानूं, करूं सदा मन चाया ॥

कंस के पास गर्व करने के सभी साधन मौजूद थे। मथुरा का राज्य उसे मिल ही गया था, ससुर बड़ा प्रतापशाली राजा था, जवानी आ गई थी और खजाने में धन की कमी नहीं थी। अब तो राजा कंस को त्रिदोष की बीमारी मानो हो गई। कहा है—

एक जवानी पैसा पल्ले,
राम चलावे तो रस्ते चल्ले,
लेना कठिन भलाई है,
सब यौवन की मस्ताई है,

एक तो जवान अवस्था, दूसरे कलदार और तीसरे हुकूमत हो तो वह साधुओं को भी शिक्षा नहीं सुनता है। अरे मेढ़को! थोड़े दिन टर्र टर्र कर लो। वर्षा ऋतु का शीघ्र ही अन्त आ जायगा और तुम्हारी टर्र टर्र खत्म हो जायगी। हे अभिमानी! तू माँ, बाप, भाई बहिन, गुरू और मित्र की भलाई की बात नहीं सुनता है। धर्म की बात पर कान नहीं देता है और गरूर में चूर रहता है पर याद रखना, एक दिन बरसाती मेंढक की तरह नीलाम बोल जायगा!

कंस को ऐसा ही अभिमान हो गया था। वह कहता था—कौन मेरा सामना कर सकता है? पुण्य और पाप और ईश्वर को मैं नहीं मानता। वह अपनी सभा मे तलवार निकाल कर कहता है—इसी में पुण्य, पाप और ईश्वर रहता है। यही लोगों के भाग्य का फैसला करने वाली परम सत्ता है। कंस इस प्रकार का प्रलाप कर रहा था।

एक दिन उसकी सभा में ज्योतिषी आये हुए थे। उनसे बातें करते करते अचानक ही वह पूछ बैठा—तुम भविष्य की बातें बतलाते हो तो अपनी मीन, मेष, मकर कुंभ लगाकर बताओ कि मेरी मृत्यु किस प्रकार होगी? मैं अपनी स्वाभाविक मृत्यु से मरूंगा या मुझे कोई मारेगा?

ज्योतिषियों ने कहा—हम कुण्डली देखकर बतलाते हैं पृथ्वीनाथ!

कंस का छोटा भाई अतिमुक्तक कुमार अपने भाई की उद्दंडता देखकर खीज उठा। कंस की चाल-ढाल उसे पसद नहीं आई। वह घर त्याग कर चला गया और साधु बन गया। भग-

वान् नेमिनाथ का चेला बन गया। एक-एक महीने की तपस्या करने लगा। तपस्या करते-करते और ग्रामानुग्राम विचरते-विचरते संयोग वश वह मथुरा में आया। जिस समय कंस सभा में बैठा अपना भविष्य पूछ रहा था, उसी समय वह भिक्षा के लिए राज-महल में पहुँचा। उस वक्त जीवयशा कंस की पत्नी देवकी के बाल जमा रही थी। मुनिराज भीतर पहुँच गये, फिर भी आहार देने का खयाल नहीं आया। उसने मुनिराज का जरा भी सत्कार-सन्मान नहीं किया। उलटे, हाथ फैला कर वहीं खड़ी हो गई और कहने लगी—आप मेरे पति-मथुरानाथ के छोटे भाई हो कर भी पातरे हिलाते फिरते हो! भीख मांग-मांग कर अपना पेट भरते हो! इससे हम लोगों को कितनी लज्जा भोगनी पड़ती है! क्यों इस प्रकार हमें नीचा दिखलाते हो?

जाया एक ही मातरा, क्षत्री कुल जादव जात रा,
थारे लिख्या कर्म में पातरा,
सुनो देवरजी! संयम छोड़ी ने महल पधारजो॥

जीवयशा कहती है—आपने यादव-वंश में जन्म लिया है। क्षत्रिय कुल मे पैदा होकर क्यों हमें लजाते हो? फैंक दो यह पात्र और चले आओ महलों में! आपके भाई के महल बहुत विशाल है। उनके किसी भी कोने में आपको जगह मिल सकती है।

मुनिराज समझ गये कि यह गरूर में चूर है। इसे अपने पति की प्रभुता का घमंड हो गया है। लोक मे कहावत है—घमंडी का सिर नीचा! आशय यह है कि जिसमे घमंड आ जाता है, उसका पतन अवश्य होता है। चींटियों के पंख उगते है तो समझ

लेना चाहिए कि इनकी मौत पास आ गई है। मुनिराज बोले—बाई भिक्षा का समय है। तुम भिक्षा नहीं देना चाहतीं तो न सही। मुझे जाने दो। मगर जीवयशा ने कहा—नहीं, खड़े रहो। पहले यह बताओ कि हमें दुनिया के सामने शर्मिन्दा क्यों करते हो? मुनिराज ने एक बार, दो बार, तीन बार कह दिया, लेकिन वह नहीं मानी। तब जानते हो:—

अति शीतलता क्या करे, दुश्मन की बहु लाग।
घिसते-घिसते होत है, चंदन मुख पर आग॥

चंदन स्वभाव से ही शीतल होता है, लेकिन ज्यादा घिसा जाय तो उसमें भी आग पैदा हो जाती है। मुनिराज को भी तेजी आ गई। उन्होंने ज्ञान का प्रयोग करके कहा—बाई दुनिया झूठी है, यह तो फ़ना होगी! राजपाट सब विनश्वर है। इसका घमंड नहीं करना चाहिए। याद रखो —

मन मंगल वधावणो।
कर रह्या आपणो आपणो॥
जो जासी सो नहीं आवणो।
चलकादार चूडो दीसे पामणो॥
सुन भोजाई, गर्व न कीजे न लीजे छेह साधु तणो।

तुम दुनियादारी के रिश्ते से मेरी भौजाई हो, पर मैंने सब रिश्तेदारियाँ त्याग दी हैं। जो बात औरों से कहता हूँ, वही तुम्हें बतलाता हूँ। इस संसार में कोई अजर अमर होकर नहीं आया।

है। प्रत्येक व्यक्ति कहीं से आया है और कहीं जायगा, इसमें संदेह करने का कोई कारण नहीं है। क्या कोई भी प्रतापशाली सम्राट् या शूरवीर इस धरती पर नजर आता है जो अनादि काल से अब तक जीवित रहा हो? नहीं तो फिर अब कोई सदैव कैसे जीवित रह सकेगा? जीवयशा, प्रत्येक जीव को जाना होगा, अवश्य जाना होगा। और यह भी जान लो कि किस प्रकार जाना होगा? जीव जैसा आता है वैसा ही जाता है। न कुछ साथ में लेकर आता है और न साथ लेकर जायगा। दुनिया की दौलत दुनिया में ही रहेगी और जीव उसे यों ही त्याग कर चला जायगा जीव नंगा आता है और नंगा ही जायगा। आज तुम मेरे साधु बन जाने के कारण लज्जा का अनुभव करती हो, परन्तु जाते समय अपनी लाज रखने के लिए एक हाथ का चीथड़ा भी अपने साथ नहीं ले जा सकोगी।

जीवयशा! मैंने साधु बन कर कोई पाप नहीं किया है, जिससे तुम्हें लज्जित होने का अवसर मिले। मैं तो महापुरुषों के महान् मंगलमय मार्ग का एक नगण्य-सा मुसाफिर हूँ। यह गौरव की बात है, लज्जा की बात नहीं है। अगर तुम सचमुच ही लज्जाशील हो, लाज-शर्म का थोड़ा-सा हिस्सा भी तुम्हारे हृदय में हो तो अपनी और अपने पति की करतूतों पर लजाओ। अपने बुरे विचारों के लिए और बुरे व्यवहारों के लिए लज्जित होना चाहिए। लज्जा के योग्य कामों के लिए लज्जित न होना और गौरव मानने योग्य कामों के लिए लज्जा का अनुभव करना ही तो अविवेक है। इस अविवेक को त्यागो। अविवेक को त्याग दोगी तो विवेक का प्रकाश तुम्हारे नेत्रों के सामने फैल जायगा। फिर तुम दुनिया की असलियत को भली-भांति देख पाओगी। तुम समझ जाओगी

कि जिस राज्य और धन के पीछे तुम मतवाली हो रही हो, वह सदा साथ देने वाला नहीं है। देखती नहीं हो, जो फूल खिलता है वह कुम्हलाए बिना नहीं रहता। तुम्हारा यह सुहाग, जिस पर तुम इतरा रही हो, थोड़े ही दिनों का पाहुना है। तुम जिसके बाल जमा रही हो, उसी के उदर से उत्पन्न होने वाला एक प्रतापी पुत्र तुझे दुखियारी बना देगा।

इतना कह कर मुनिराज राजमहल से बाहर चले गये।

उधर राजसभा में ज्योतिषियों ने कंस की कुंडली देख कर कहा—नाथ आप स्वाभाविक मृत्यु से नहीं मरेंगे। आप को मारने वाला पैदा होगा और बड़ा जबर्दस्त होगा। महान् शक्तिशाली होगा। वह वृन्दावन और गोकुल को बढ़ाएगा, मल्लों के मद का मर्दन करेगा, हाथी के दांत उखाड़ेगा, पूतना के प्राण लेगा, गोवर्धन पर्वत को उठाएगा और हे राजन्! वही आपका वध करेगा।

यह सुन कर कंस का फौलादी हृदय भी एक बार काँप उठा। अपनी मृत्यु का भविष्य सुन कर उसे घोर भय उत्पन्न हुआ। फिर कंस ने पूछा—वह कहाँ जन्म लेगा? ज्योतिषी बोले—देवकी रानी का नंद और वसुदेव का फरजंद वह द्वारिका नगरी को बसाएगा और वही आपका वध करेगा।

कंस सोचने लगा—ओह! यह तो घर में ही पैदा होगा! काबे में ही अगर काफिर पैदा हो जायगा तो मुसलमानी कहाँ ठहरेगी? कँस इस प्रकार सोच विचार में पड़ गया। उसने ज्योतिषियों को विदा किया। विदा करते समय उसने ऐसा

दिखावा किया, मानों उसे तनिक भी भय नहीं हुआ है। मगर उसके हृदय में जो भारी उथल-पुथल मच गई थी, उसने चेहरे पर अपना प्रभाव अंकित कर दिया था। कंस का चेहरा फीका पड़ गया था।

ज्योतिषी सब चले गये तो कंस भी राजसभा में से चल दिया। अब उसको एक मात्र चिन्ता यही थी कि किस उपाय से आत्मरक्षा का प्रबंध करूं ? आखिर उसे एक उपाय सूझ गया। उसने विचार किया—किसी तरह वसुदेवजी को कब्जे में करके देवकी का गर्भ माँगलूँ। इस उपाय से काम चल जायगा।

इस प्रकार सोचते-सोचते कंस राज महल में पहुँचा। उसने देखा कि जीवयशा पड़ी-पड़ी रो रही है। वह रानी के पास गया और बोला—मैं तो अपने कर्मों को रो रहा हूँ, तू क्यों रो रही है ? आखिर जीवयशा ने मुनिराज के आने और भविष्य की बात सुनाने का जिक्र किया। यह सुनकर कंस की घबराहट चौगुनी बढ़ गई। उसके पाँवों तले की जमीन खिसक गई। फिर भी वह कहने लगा—तुम्हें महात्मा को आहार-पानी देना चाहिए था। मैं ज्योतिषी की बात को मिटा सकता हूँ, मगर महात्मा की बात को कैसे मिटा सकता हूँ ? खैर, चिन्ता मत करो। मैं उपाय सोचता हूँ।

—शेखशादी साहब कहते हैं—

तकब्बुर अजालील राख्वार कर्द।
बाजिन्दा लानत गिरफ्तार कर्द॥

अर्थात्—घमण्ड ने बड़ों-बड़ों को कैदखाने में दाखिल किया है। याद रक्खें तकब्बुर बहुत बुरी चीज है। अब वह घमंडी कंस वासुदेवजी के पास गया। पहले इधर-उधर की बातें बनाकर उसने जुआ खेलने का प्रस्ताव रक्खा। वसुदेव भोले और सीधे आदमी थे। कंस की बातो मे आ गये। आपस मे तय हो गया कि दाँव पर स्त्री के सात गर्भ रखे जाएँ। जो जीत जाय वह उनका चाहे सो करे। वसुदेवजी यह बात भी मंजूर करके जुआ खेलने बैठे। होनहार की बात है कि वसुदेवजी सातों ही दाँव हार गये। वसुदेवजी को हरा कर कंस फूला नहीं समाया। वह सीधा अपने महल में आया। उधर वसुदेवजी भी अपने महल में गये। वसुदेवजी ने देवकी को जुए में हार जाने और अपने वचनबद्ध होने की बात कही। दोनों को इससे चिन्ता तो बहुत हुई, फिर भी सोचा—हरेरिच्छा बलीयसी !

भद्दिलपुर नामक एक नगर था। कहते है, आजकल भेलसा कहलाता है, वही पुराने जमाने में भद्दिलपुर कहलाता था। उस नगर में एक सेठ रहता था। उसकी पत्नी का नाम सुलसा था। उसे निमित्तवेत्ताओं ने बतलाया था कि तेरी कूंख से लड़के तो होंगे, मगर सब मरे हुए होंगे। तब सुलसा ने तपस्या करके हरिणगमेषी देवता का स्मरण किया। देवता आया सो सुलसा ने उससे कहा—मेरे जिंदा बालक होना चाहिए।

देवता ने अपने ज्ञान का उपयोग लगाया। उसे मालूम हुआ कि देवकी के यहाँ जो बालक उत्पन्न होने वाले हैं, उन्हें कंस मार डालने का विचार कर रहा है। अगर सुलसा और देवकी के बालकों में अदल-बदल कर दी जाय तो दोनों का ही

महान् उपकार होगा और एक घोर हिंसाकाण्ड भी बच जायगा। यह सोचकर देवता ने सुलसा से कहा—जब तू अपने लड़कों को देखेगी तो जिंदा ही देखेगी। चिन्ता मत कर। इतना कह कर देवता चला गया।

इधर एक रात में देवकी ने सिंह का सपना देखा। उसने वसुदेवजी से स्वप्न का वृतान्त कहा। वसुदेवजो बोले—तुम भाग्यवान् और पराक्रमी पुत्र को उत्पन्न करोगी।

देवकी का गर्भ जब तीन मास का हुआ तो कंस ने पहरा बिठला दिया। समय पूरा होने पर पुत्र का जन्म हुआ तो देवता ने सुलसा के मृतक पुत्र को देवकी के पास पहुँचा दिया और देवकी के जीवित पुत्र को सुलसा के पास पहुंचा दिया। इस अदल-बदल में देवता को ज्यादा विलम्ब नहीं लगा।

कंस बड़ी व्यग्रता के साथ देवकी के प्रसव की प्रतीक्षा कर रहा था। उसे ज्यों ही पुत्र के प्रसव का समाचार मिला त्यों ही उसने अपनी दासी को भेजकर पुत्र मँगवा लिया। दासी मृतक पुत्र लेकर आई तो कंस का अभिमान फिर ताजा हो गया। वह अहंकार की चोटी पर चढ़ गया। सोचने लगा—कोई देखो मेरे प्रताप को! मेरे डर के मारे देवकी के मरा हुआ छोरा जनमा है! क्या यही मरा छोरा मुझे मारेगा?

इसी प्रकार धीरे-धीरे देवकी के छह बालक सुलसा सेठानी के यहाँ पहुँचा दिये गये और सेठानी के छह मृतक बालक देवकी के पास रख दिये गये। कंस अपने भाग्य की सराहना करने लगा। सातवीं वार कौन आते है?

श्रीकृष्ण मुरारी प्रकटे अवतारी यादव वंश में ।

अब पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्रजी पधारते हैं । भाइयो ! पहाड़ को देखकर हाथी चिघाड़ता है कि यह मुझसे ऊँचा क्यों है ? और फिर वह पहाड़ की तरफ दौड़ता है कि इसे गिरा दूं । मगर नतीजा क्या होता है ? हाथी जिन दांतों से पहाड़ को गिराने का प्रयत्न करता है उसके वही दांत टूट जाते हैं और पहाड़ का कुछ भी नहीं बिगड़ता है । चांदनी तभी तक छिटकी रहती है जब तक सूर्य का उदय नहीं होता । मेंढक तभी तक फुदकता फिरता है जब तक उसे सांप दिखाई नहीं देता । और हिरन जब तक सिंह को नहीं देखता तभी तक उछलता है । इसी प्रकार कंस का घमंड तभी तक कायम है जब तक श्रीकृष्ण नहीं पधारे हैं । कहा है—

उगे सो ही आथमे और फूले सो कुम्हलावे रे ।
सदा एक सी नांय रहे, ज्ञानी फरमावे रे ॥
माया दुनिया की है झूठी मनवा क्यों ललचावे रे ॥ध्रु॥

भाइयो ! जिसका उदय होता है उसका अस्त अवश्यंभावी है । जो पुष्प खिलता है वह कुम्हलाए बिना नहीं रह सकता । प्रकृति का यह अटल विधान है इसका उल्लंघन करने की क्षमता न किसी में है और न हो सकती है । जिसका उदय हुआ है वह सदा उदित नहीं रहेगा और जो आज खिला है वह सदा खिला नहीं रहेगा । किसी की स्थिति सदा काल एक सी नहीं रही । यह ज्ञानी पुरुषों का कथन है । यह कथन कदापि अन्यथा नहीं हो सकता । देखो न—

सुबह जो तख्त शाही पर बड़े सजधज से बैठे थे,
दुपहरे वक्त में उनका हुआ है वास जंगल का।
मुसाफिर ! क्यों पड़ा सोता भरोसा है न पल भर का॥

रामचन्द्र के राज्याभिषेक की सारी तैयारियाँ हो चुकी थीं, पर ऐन वक्त पर उन्हें वनवास के लिए रवाना होना पड़ा। मतलब यह है कि प्रकृति के विधान को कोई टाल नहीं सकता। मगर कंस में इतना विवेक कहाँ है? वह समझता है कि मेरा उदय शाश्वत है। मेरा सौभाग्य-सूर्य अनन्त काल तक एक समान चमकता ही रहेगा! वह अपनी मौत से लड़ कर विजयी होना चाहता है।

आप कह सकते हैं कि क्या मनुष्य अपनी मौत को नहीं जीत सकता? मृत्यु अगर प्रकृति का नियम है तो अमरता आत्मा का स्वभाव है। फिर क्यों आत्मा कभी मृत्यु पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता? आपका कहना सही है। प्रकृति की शक्तियाँ अगर असीम हैं तो आत्मा की शक्तियाँ भी अनन्त हैं। आत्मा अपने प्रबल पुरुषार्थ के द्वारा प्रकृति पर विजय प्राप्त करता आ रहा है और करता रहेगा। वह मौत को जीत कर अमर बन सकता है, 'मृत्युञ्जय' की महान् महिमा से मंडित हो सकता है। मगर मृत्यु को जीतने का उपाय वह नहीं है, जिसे कंस काम में ला रहा है। मृत्यु को वही जीत सकता है, जो मृत्यु से डरता नहीं है और जो जीवन और मरण को समान भाव से अपनाने के लिए तैयार रहता है। मृत्यु को वह जीत सकता है जो छोटे-बड़े समस्त प्राणियों की अपने निमित्त से होने वाली

मृत्यु से बचता रहता है। जो स्वयं मर कर भी दूसरों को मृत्यु को बचाता है, वही मृत्युविजेता बन सकता है। कंस जैसे कायर पुरुष, जो स्वयं जिंदा रहने के लिए अबोध शिशुओं की हत्या करने के लिए तैयार हो जाते हैं, कदापि मृत्यु को नहीं जीत सकते। मौत की कल्पना से ही काँपने वाला कब मौत से बच सकता है? जो अपने प्राणों की रक्षा के लिए दूसरे के प्राण हरण करता है, वह अपनी मौत को न्यौता देकर निकट बुलाता है। उसे एक बार नहीं, बार-बार मौत का शिकार बनना पड़ता है।

कंस मन ही मन सोचता है—अब एक का ही काम तमाम करना बाकी रहा है। और यह सोचकर उसके आनन्द का पार नहीं रहता। मानो, सचमुच ही वह अपनी मृत्यु को जीत चुका हो!

परन्तु उधर सज्जनों के दुख को दूर करने वाले, दुर्जनों का दमन करने वाले, पाप को हटाने वाले श्रीकृष्ण महाराज प्रकट हो रहे हैं। इस दुष्ट राजा कंस ने सब को तकलीफ दी है। यहाँ तक कि अपने बाप को भी पींजरे में डाल रक्खा है। वह महात्माओं का अपमान करता है। उसकी करतूतों के कारण सर्वत्र त्राहि-त्राहि की पुकार मची हुई है। जब सूर्य की गर्मी बहुत बढ़ जाती है तो बरसात होती है। इसी प्रकार जब दुनिया में दुःख बढ़ जाते हैं तो उन्हें दूर करने के लिए किसी शक्ति का जन्म होता है। रानी देवकी ने एक रात्रि में सात स्वप्न देखे। पहले स्वप्न में देखा कि आकाश से एक सिंह चला आ रहा है और वह उसके पेट में घुस गया है। दूसरा स्वप्न सूर्य का, तीसरा हाथी का, चौथा ध्वजा का, पाँचवाँ धूम-रहित अग्नि का, छठा क्षीर सागर का और सातवाँ देव विमान का स्वप्न देखा।

देवकी ने यह सात शुभ स्वप्न देखकर अपने पति से कहा—छह पुत्रों के समय तो एक-एक स्वप्न दिखाई दिया था, लेकिन इस बार तो सात स्वप्न आये हैं! वसुदेवजी ने कहा—इस बार तुम बड़े हो पुण्यशाली पुत्र को जन्म दोगी।

देवकी—नाथ! आपने मेरे छह बेटे तो मरवा दिये हैं। अब यह सातवाँ आया है और वह भी सात स्वप्न लेकर आया है। मगर इससे मुझे लेशमात्र भी प्रसन्नता नहीं हो पाती। बल्कि हृदय में एक टीस उठती है, वेदना के कारण हृदय तड़फ-तड़फ कर रह जाता है। न आप जुआ खेलते, न यह दुःख उपस्थित होता। मगर होनहार बलवान् है। कंस कोई उपाय खोज रहा था। इस उपाय में उसे सफलता न मिलती तो वह निश्चय ही कोई और उपाय करता। वह हमारे बच्चों के लिए यमराज के रूप में जनमा है।

वसुदेव—सही कहती हो देवकी! तुम्हारे हृदय की असीम वेदना को मैं समझ रहा हूँ। पर विवश हूँ। कुछ भी जोर तो नहीं चलता।

देवकी—प्राणनाथ! आपको पता ही है कि विना नमक के भोजन फीका और विना पुत्र के घर सूना होता है। कंस ने छह बालकों को तो खा लिया है, लेकिन इस बार के बालक को बचाने का कोई प्रयत्न करना पड़ेगा। अगर एक भी बालक रह गया तो आपका नाम रह जायगा।

वसुदेव—देवकी! प्रिये! यद्यपि मैं वचनबद्ध हूँ, फिर भी यत्न करूंगा किसी उपाय से इस बालक की रक्षा कर सकूँ।

मथुरा के समीप के गोकुल गाँव के नन्द अहीर की पत्नी यशोदा के साथ देवकी का गाढ़ा प्रेम था। एक बार यशोदा, देवकी से मिलने आई। दोनों उस समय गर्भवती थीं। बातों ही बातों में, दोनों में यह तय हो गया कि यशोदा के गर्भ से जो उत्पन्न होगा वह यहाँ भेज दिया जायगा और देवकी के गर्भ की सन्तान यशोदा के पास पहुँचा दी जायगी। यशोदा यद्यपि जानती थी कि मेरी सन्तान को यहाँ भेजने पर क्या हालत होगी, मगर देवकी की अत्यन्त दयनीय दशा को देखकर और भगवान् पर भरोसा करके उसने यह बात मंजूर करली। उसने कहा—देवकी रानी! चिन्ता मत करो। लड़का या लड़की, जो भी होगा, मैं तुम्हारे पास भेज दूँगी। मेरा एक बालक मर भी जायगा तो क्या हुआ। तुम्हारे बालक की रक्षा तो होगी! मैं तुम्हारे उस बालक को ही अपना समझूँगी। जैसा तुम्हारा और मेरा हृदय अभिन्न है, उसी प्रकार हमारा-तुम्हारा बालक भी अभिन्न होगा। फिर मुझे चिन्ता काहे की?

इस प्रकार आश्वासन देकर यशोदा अपने घर चली गई। एक-एक दिन बीतते-बीतते तीन मास व्यतीत हो गये। देवकी के मन पर गर्भ का प्रभाव पड़ा। एक बार देवकी ने वसुदेव की तलवार अपने हाथ में उठा ली और वह रौद्र रूप धारण करके, दुर्गा की तरह, बैठ गई। वसुदेवजी आये। उन्होंने कहा—देवकी! यह क्या कर रही हो? जिस परिस्थिति में हो उसे मत भूलो। तलवार जहाँ की तहाँ रख दो। हमारी रक्षा तलवार से नहीं, धर्म से होगी।

देवकी बोली—मुझे मत रोको। मैं सभा में जाऊँगी और कंस को मजा चखाऊँगी।

मगर वसुदेव ने किसी तरह समझा-बुझाकर देवकी को शान्त किया। कभी देवकी को अच्छे कपड़े पहनने का, कभी अच्छे भोजन करने का और कभी धर्म की बातें सुनने का विचार आने लगा। कभी क्रोध आ जाता तो कहती - मैं कंस का ध्वंस किये बिना नहीं मानूँगी। मैं उसके सिर का मुकुट तोड़ डालूँगी। इस प्रकार देवकी के मन पर गर्भ का असर पड़ने लगा। वह असर जाहिर भी होने लगा। कहा है—

खैर खून खांसी खुशी, वैर प्रीति मद्पान।
रहिमन दाबे ना दबै, जाने सकल जहान॥

जहाँ हितैषी होते हैं वहाँ अहितैषी भी होते है। संसार में सज्जन हैं तो दुर्जन की भी कमी नहीं है। किसी ने कंस को सूचना दे दी कि इस बार बड़ा खतरा है। पक्का प्रबन्ध करलो। राजा कंस तो पहले ही चौकन्ना था, यह चेतावनी सुनकर अधिक सजग और सावधान हो गया। अब की बार उसने सिंहों के पहरे लगवाये। हनुमानसिंह, पर्वतसिंह, हेमसिंह, खेमसिंह आदि के पहरे बैठे। जादोराय, टोडरराय, आदि-आदि रायों ने भी अपनी सजगता दिखलाने का उपक्रम किया।

देवकी प्रबन्ध की यह कठोरता देखकर घबराती है। मगर वह पंच परमेष्ठी का ध्यान करके अपना समय व्यतीत करती है। उसके हृदय के किसी कोने से आवाज उठा करती है—घबराने की आवश्यकता नहीं है। संसार में दानवीय शक्ति ही सब कुछ नहीं है देव-शक्ति भी है और वह दानवीय शक्ति को परास्त किये बिना नहीं रहती। अदृश्य शक्ति का यह आश्वासन पाकर देवकी

को तसल्ली मिलती है। वह शान्त भाव से फिर धर्मध्यान करने लगती है।

इधर देवकी की सखियां भी उसे सदैव सान्त्वना दिया करती हैं। कहती हैं—चिन्ता क्यों करती हो रानी ! बिल्ली के कहने से छींका नहीं टूटता ! गर्भ का जीव बड़ा ही प्रतापशाली और प्रभावशाली है। वह कंस का शिकार कदापि नहीं होगा। जब वह जन्म लेगा तो किसी के कानों कान खबर नहीं पड़ेगी। तुम निश्चिन्त रहो। प्रसन्न रहो।

धीरे-धीरे गर्भ के दिन पूरे हुए। भाद्रपद महीने की कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि आ पहुँची। आधी रात के समय मूसलाधार पानी बरसने लगा। बिजली चमकने लगी। प्रचण्ड आंधी चलने लगी। और वर्षा की सर्र-सर्र से सारा भूमंडल व्याप्त हो गया। पहले ही कृष्ण पक्ष तो था ही; सघन बादलों और वर्षा के कारण घोर अंधकार छा गया था। ऐसा मालूम होने लगा, कंस के अत्याचारों से सम्पूर्ण प्रकृति क्षुब्ध हो उठी है और वह अत्याचारों को शान्त करके ही शान्त होगी।

भाइयो ! धर्म जिसका सहायक हो, उसका कौन क्या बिगाड़ सकता है ? धर्म के प्रताप से सभी कुछ अनुकूल हो जाता है। तदनुसार देवकी के तमाम पहरेदारों को गाढ़ी नींद आ गई। सब के सब खुर्राटे भर कर सोने लगे, मानो दैवी माया ने उन्हें बेसुध कर दिया हो ! ऐसे महत्त्वपूर्ण समय में क्या होता है:—

मथुरा में आकर जन्म लिया, देखो तब बंशी वाले ने।
और कंस की भूमि दी थर्रा, देखो तब बंशी वाले ने ॥ध्रु०॥

थी अर्ध निशा अंधेरी वह, घन घोर घटा थी छाय रही ।
तनु-तेज से कीना उजियाला, देखो तब बंशी वाले ने ।।

जब श्रीकृष्णचन्द्र महाराज ने जन्म लिया तो उनके शरीर के तेज से घोर अंधकार में प्रकाश हो गया । देवकी ने वसुदेवजी को आवाज दी और कहा—इस बालक को गोकुल लेकर जाइए और यशोदा को सौंप दीजिए । उसके बालक को यहां ले आइए ।

कर-कमलों में वसुदेवजी, उठा चले निज नन्दन को ।
फिर यमुना के दो भाग किये, देखो जब बंशी वाले ने ।।

वसुदेवजी जब बालक को अपने हाथों में लेकर रवाना हुए तो देखते हैं कि तमाम पहरेदार गाढ़ी नींद में सोते पड़े हैं । वे धीमे-धीमे पाँवों से आगे चले और नगरी के दरवाजे पर पहुँचे । देखा तो दरवाजे में ताला पड़ा था और ऊपर से वर्षा हो रही थी । उस समयः—

भवन से आई उतरया हेठा,
द्वार के ताला जब्या सेंठा,
कंस का पहरा बाहर बैठा ।
निकल जाने का नहीं रास्ता,

दोहाः-चरण अंगुष्ठ लगावियो, गोविन्द को तिण बार ।
सरड़ड़ ताला टूट पड़ा और सरड़ड़ खुले किवार ।।
अखण्डित निकल गया बिहारी ।।

पुरुषोत्तम प्रकटे अवतारी ।
जगत् में महिमा विस्तारी ॥

घोर अंधेरी रात में वसुदेवजी आगे-पीछे की सोचे बिना, किसी उपाय से पुत्र के प्राण बचाने के लिए चल पड़े। बाजारों और गलियों मे होते हुए वे नगरी के फाटक पर पहुंचे। वहाँ पहुँच कर देखा कि फाटक पर बड़े-बड़े मजबूत ताले जड़े हुए हैं! मगर जब धर्म सहायक होता है तो कौन-सी प्रबल बाधा भी दूर नहीं हो जाती? तालों को ज्यों ही कृष्णजी का अंगूठा छुआया गया, ताले तड़ातड़ टूट पड़े, किवाड़ खुल गये।

उग्रसेनजी ने आवाज सुन कर पूछा—कौन है? वसुदेवजी ने उत्तर दिया—आपको बंधन से छुड़ाने वाला आया है! इसके बाद क्या होता है:—

निकल मथुरा से गोकुल जावे,
उपर यमुनाजी पूर आवे,
निकलवा मारग नहीं पावे,
विविध मिसलत मन में ठावे।

दोः—पग परस्या गोपाल का, यमुना हुई दो भाग।
वसुदेवजी तुरंत निकल गये, हुलस्यो हियो अथाग।
गोकुल में पहुँचे गिरिधारी ॥

वसुदेवजी की राह की एक बड़ी रुकावट दूर हो गई। फाटक खुल गये और वे नगरी से बाहर निकल गये। मगर बीच में यमुना

नदी आड़ी आ गई। यमुना के एक पार मथुरा थी और दूसरे पार गोकुल गाँव था। गोकुल तक पहुंचने के लिए यमुना को पार करना पड़ता था। मगर पार करने का उपाय क्या है? भादों महीने की यमुना और तिस पर पूर में थी! अकेले ही पार करना संभव नहीं तो तत्काल जनमे बालक को गोदी में लेकर कैसे पार किया जा सकता है? वसुदेवजी के सामने फिर एक विकट समस्या खड़ी हो गई। पर अब की बार उन्हें चिन्ता नहीं हुई। बालक के चमत्कार को वे देख चुके थे। अतएव साहस करके वे यमुना में घुस पड़े। बालक का अंगूठा छूते ही यमुना के दो भाग हो गये, आधा पानी ऊपर की ओर, और आधा नीचे की ओर सिकुड़ गया। बीच में रास्ता बन गया। वसुदेवजी निश्चिन्त हो कर यमुना पार करके गोकुल में दाखिल हुए। उन्होंने नंद का दरवाजा खटखटाया। यशोदा समझ गई कि वसुदेवजी आये हैं। उसने नंद से कहा—आप चुपचाप आराम कीजिए। आपको बोलने की आवश्यकता नहीं है। मैं सब संभाल लूंगी।

इतना कह कर यशोदा द्वार पर आई। किवाड़ खुले और वसुदेवजी कृष्ण को लिये अन्दर दाखिल हुए। उन्होंने श्रीकृष्णजी को यशोदा के सिपुर्द किया। यशोदा के गर्भ से लड़की का जन्म हुआ था। उसे वसुदेवजी ने अपने हाथों मे ले लिया।

नन्दजी को इस अदला-बदली के सम्बन्ध में कुछ मालूम नहीं था। वे इस लेन देन का मर्म नहीं समझ पाये। बोले—यह क्या कर रही है! तब यशोदा बोली—बुरा क्या है? मैंने सौदा अच्छा ही किया है। लड़का लेकर लड़की दी है!

लड़की को साथ लेकर वसुदेवजी वापिस लौट गये और

जमना पार करके फिर अपनी जगह जा पहुंचे। लड़की को देवकी के पास सुला दिया। छोटी सी कोयल बालिका अभी तक चुपचाप थी। देवकी के पास सोते ही 'ब्याऊँ-ब्याऊँ' करके रोने लगी। बालिका के रोने की आवाज सुनकर पहरेदारों की नींद टूटी। उन्होंने कंस को सूचना दी कि देवकी रानी ने पुत्री का प्रसव किया है।

कंस की प्रसन्नता का पार नहीं रहा। वह मन ही मन सोचने लगा-मैंने ज्योतिषी और जोगी-दोनों की भविष्यवाणी मिथ्या साबित नहीं की तो फिर क्या किया? मुझ से बढ़ कर मेरा प्रताप काम कर रहा है। मेरे प्रताप का ही तो फल है कि देवकी के लड़का नहीं हुआ! बेचारे कंस को क्या पता है कि उसके मान को मर्दन करने वाला पृथ्वी पर आ पहुँचा है।

कंस ने उस लड़की को अपने पास बुलवाया और उसकी नाक पर निशान करके उसे वापिस भेज दिया। कहीं-कहीं ऐसा भी उल्लेख है कि कंस ने उस लड़की को लेकर पछाड़ दिया। मगर लड़की बीच में से ही कंस के हाथ से छूट गई। वह आकाश में उड़ गई और बिजली बन गई।

उधर कृष्णजी को पाकर यशोदा के हर्ष की सीमा नहीं थी। सारा गोकुल गाँव प्रसन्नता से मानों नाच उठा। कहा है:—

मात यशोदा प्रसन्न हुई,
और नन्द ने महोत्सव खूब किया।
घर-घर में आनन्द मना दिया,
देखो तब बंशी वाले ने॥

नन्द के घर आनन्द के बाजे बजने लगे। सब ग्वालिनें मिल कर नाचती हैं, तालियाँ बजाती हैं और मंगलगीत गाती हैं। इस प्रकार सारे गोकुल में आनन्द ही आनन्द फैल रहा है। तमाम ग्रामवासी ऐसे प्रसन्न हैं मानों उन्हीं के घर पुत्र का जन्म हुआ हो ! धीरे-धीरे बारहवाँ दिन आ पहुँचा। अशुचि का निवारण किया गया। माता बच्चे को हालरा सुनाती है और प्यार करती है। इस तरह एक मास भी व्यतीत हो गया।

उधर गोकुल में सर्वत्र आनन्द-मंगल छाया हुआ है और इधर देवकी रानी, यद्यपि पुत्र की प्राणरक्षा का उपाय निकल आने से और उसके कुशल-समाचार मिलते रहने से संतोष का अनुभव कर रही हैं, फिर भी उनका मातृ-हृदय कभी-कभी मचल उठता है। पुत्र के विछोह से उनका दिल दुःख का अनुभव करने लगता है। एक दिन देवकी सोचने लगी—मुझे पुत्र को देखे एक महिना हो गया है। इस एक महीने में उसकी सूरत कैसी हो गई होगी ! वह तड़पने लगी। वसुदेवजी से कहा—मैं तो बच्चे को देखने के लिए गोकुल जाऊँगी। तब वसुदेवजी बोले—प्रिये ! अधीर मत होओ। शत्रु को पता चल गया तो बालक के प्राण संकट में पड़ जाएँगे। धीरज रक्खो। बालक आनन्द में है, इतना जान कर ही संतोष मान लो।

मगर देवकी का दिल नहीं माना। कहा—आज वत्स-बारस का त्यौहार है। त्यौहार के बहाने गोकुल चली जाऊँगी। किसी को पता ही नहीं चलेगा।

वसुदेवजी सहमत हो गये। अब तो बच्चे के लिए झगला, टोपी, खिलौने वगैरह साथ लेकर देवकी गोकुल पहुँची। निगाह

चुराकर सीधी यशोदा के घर में दाखिल हुई । कृष्ण को गोद में लेकर खिलाने लगी, पुचकारने लगी और चूमने लगी । देवकी के मुख से निकल पड़ा—

अरी यशोदा ! तू बड़भागिन !

हे सखी यशोदा ! तू एकान्त भाग्यशालिनी है कि तुझे यह बालक मिला है। मैं भाग्यशालिनी होती हुई भी अभागिनी हूँ और अभागिनी होती हुई भी भाग्यशालिनी हूँ । मैं तेरी बराबरी नहीं कर सकती ।

भाइयो ! कृष्ण का चरित बहुत लम्बा है । पूरा सुनाने का समय नहीं है । मैं सत्संग और कुसंग पर दृष्टान्त कह रहा था । कुसंग के कारण कंस का इतना पतन हुआ कि अन्त में कृष्ण के द्वारा उसे अपने प्राण देने पड़े । अगर आप अपना कल्याण चाहते हैं तो कुसंगति से बचो और संतों का समागम करो । संत-समागम से आपके हृदय में ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न होगा और आपका इहलोक तथा परलोक सुधर जायगा । आप जहाँ कहीं रहेंगे, आनन्द ही आनन्द होगा ।

स्थान—जोधपुर }
ता०२७-८-४८ }



काँई रे गुमान करे आपनो !

स्तुतिः—

वल्गत्तुरङ्ग गजगर्जितभीमनाद—
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम् ।
उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धं,
त्वत्कीर्त्तनात् तम इवाशु भिदामुपैति ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं:—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवान्! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? भगवन्! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएँ ?

कोई आदमी किसी संग्राम में गया हुआ है। संग्राम में हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट, रथों की झनझनाहट

और पैदल सेना की सनसनाहट हो रही है। अनेक बलवान राजाओं की विशाल सेनाएँ इकट्ठी हुई हैं। उन सेनाओं पर अस्त्र शस्त्रों द्वारा विजय प्राप्त करना कठिन है। ऐसे प्रसंग पर जो पुरुष सेना और शस्त्रों के बल के अभिमान को छोड़कर आपका कीर्तन करता है—आपके साधारण गुणों की स्तुति करता है और इस रूप में आपकी शरण ग्रहण करता है, उसके सामने से वह विशाल सेनाएं उसी प्रकार भाग जाती हैं, जैसे उगते हुए सूर्य की किरणों से अंधकार भाग जाता है। हे मरुदेवीनन्दन! हे नाभिकुल-कमलदिवाकर! आपके गुण-कीर्तन की अपरिमित महिमा है।

भाइयों! यहां आचार्य महाराज ने दुनियावी संग्राम का जिक्र किया है। कभी-कभी दुनियावी संग्राम भी बड़ा लम्बा और भयंकर होता है। पर एक संग्राम हमारे भीतर भी सदैव चलता रहता है। वह संग्राम बड़ा ही भीषण और उग्र है। उस संग्राम के काल की भी आदि नहीं है। वह अनादि काल से चल रहा है, प्रतिपल चल रहा है, कभी एक क्षण के लिए भी बन्द नहीं होता।

वह संग्राम कौन-सा है? उसके कई नाम दिये जा सकते हैं। आप उसे देव-असुर संग्राम कह लीजिए। आत्मा की स्वभाव विभाव परिणतियों का युद्ध भी कह सकते हैं। उसे चेतनराज और मोहमल्ल की लड़ाई भी कह सकते हैं। इस युद्ध की भूमि आपका अन्तःकरण है। यह अन्तरंग-संग्राम बड़ा ही लोमहर्षक है।

इस संग्राम में एक ओर चेतन है और दूसरी ओर मोहकर्म है। चेतन की सहायता करने वाले अनेक सुभट हैं और मोह की

सहायता करने वाले भी अनेक योद्धा हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, तप, समिति, गुप्ति, संवर, निर्जरा, ध्यान, स्वाध्याय आदि-आदि योद्धा चेतन की ओर से जूझते हैं तो मिथ्यात्व, अज्ञान, कषाय, आस्रव बंध आदि अनेक सुभट मोह की ओर से भी जूझते हैं।

अविश्रान्त गति से चालू रहने वाले इस संग्राम में कभी चेतन की विजय होती है और कभी मोह को विजय होती है। चेतन के शत्रुओं का सरदार मोह है। मोह बड़ा ही जबर्दस्त है। सभी कर्मों की अपेक्षा उसकी शक्ति बहुत प्रबल है। वह दोहरी मार मारता है। जो आत्मा एक बार मोह के पाश ने फँस जाता है, उसका सत्तर कोड़ा-कोड़ी सागरोपम तक छुटकारा नहीं होता। एक बार मोह का बंध हुआ कि जन्म-जन्मान्तर तक वह नाच नचाता है। इसकी अट्ठाईस मूल प्रकृतियाँ हैं और उनके भी फिर अनेक अनेक भेद हैं। मोह के झपट्टे में आने से बचना बड़ा मुश्किल है। सच पूछो तो जीव को संसार में भटकाने वाला, उसे अपने असली स्वरूप से च्युत करने वाला, अपने आपे को पहचानने में भ्रम उत्पन्न करने वाला, नाना प्रकार के विकारों और वासनाओं को जन्म देने वाला, विवेक को नष्ट करके अविवेक उत्पन्न करने वाला, आत्मा की शान्ति को भंग करके कषायभावना को जगाने वाला, कहाँ तक कहें, आत्मा को अनन्त सुख से वंचित करके दुःखों के अंधकूप में पटकने वाला, और जन्म जन्मान्तर में रुलाने वाला, राजा से रंक बनाने वाला, वह मोहकर्म ही है।

मोह के साथी अन्य कर्म भी आत्मा में विकार उत्पन्न करते हैं मगर वे इसी की सहायता पाकर करते हैं। मोहकर्म जब नष्ट हो जाता है तो जैसे सेनापति के मर जाने पर सेना भाग छूटती है, उसी प्रकार सारे कर्म निकम्मे-से हो जाते हैं। फिर किसी का कोई वश नहीं चलता। अनायास ही उन्हें नष्ट किया जा सकता है।

मोहनीय कर्म के प्रभाव से ही आत्मा अपने अजर-अमर स्वरूप को विसर कर जन्म-जरा-मरण का पात्र बन रहा है। भगवती सूत्र में उल्लेख आता है कि एक बार गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर से पूछा—भगवन् ! लोक कितना बड़ा है? भगवान् ने उत्तर दिया—गौतम ! लोक बहुत विशाल है—चौदह राजू परिमित इसके अनन्तर गौतमस्वामी ने फिर प्रश्न किया—इतने लम्बे-चौड़े लोक मे एक बाल का अग्रभाग समावे उतनी जगह भी क्या ऐसी है कि जहाँ जीव ने जन्म-मरण न किया हो? भगवान् बोले—नहीं गौतम ! इतनी-सी जगह भी बाकी नहीं है। इतना ही नहीं बालाग्र परिमित स्थान भी ऐसा नहीं है जहाँ जीव ने अनन्त-अनन्त बार जन्म-मरण न किया हो।

भाइयो ! यह सब किसका प्रताप है? आत्मा के अजर अमर रूप को बिगाड़ कर उसे जन्म-मरण के चक्र में फँसाने वाला कौन है? मोहकर्म !

संसार में कोई जाति ऐसी नहीं है जिसमें प्रत्येक जीव उत्पन्न न हो चुका हो। कोई योनि भी शेष नहीं बची जिसमें जीव अनन्त-अनन्त वार उत्पन्न हो मौत का शिकार न बन चुका हो। कहा भी है:—

न सा जाई न सा जोणी, न तं ठाणं न तं कुलं।
न जाया न मुआ जत्थ, सव्वे जीवा अणंतसो ॥

तात्पर्य यह है कि यह आत्मा मोहनीय कर्म के प्रभाव से प्रत्येक जाति और प्रत्येक योनि में अनन्त-अनन्त बार उत्पन्न हो चुका है।

यहाँ जाति का अर्थ वह नहीं है जिसे आप समझते हैं। ओसवाल, अग्रवाल, खंडेलवाल, पोरवाड़, परवार आदि जो जातियाँ आज लोक में प्रचलित हैं, वे वास्तव में जातियाँ नहीं हैं। शास्त्रों में जाति का अर्थ दूसरा है जाति-नाम कर्म के उदय से एकेन्द्रिय आदि की जो स्थिति जीव को प्राप्त होती है, वह जाति कहलाती है। जाति पाँच प्रकार की है—एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय-जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति और पचेन्द्रिय जाति। जिस जीव के सिर्फ एक स्पर्शनेन्द्रिय ही होती है, वह एकेन्द्रिय जाति वाला जीव कहलाता है। इसी तरह जिसके स्पर्शन और रसना (जीभ) यह दो इन्द्रियाँ होती हैं वह द्वीन्द्रिय जाति वाला गिना जाता है। आगे भी इस प्रकार समझना चाहिए।

शास्त्र के आधार पर विचार किया जाय तो विदित होता है कि समस्त संसारी जीव पाँच ही जातियों में बँटे हुए हैं। आज साधारण लोग मानव-जाति के जिन टुकड़ों को जाति मान रहे हैं और जिन टुकड़ों को लेकर मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव की दीवारें खड़ी कर रहे हैं, वे वास्तव में भ्रम हैं। मनुष्य मात्र एक ही जाति में सम्मिलित है। और अकेला मनुष्य ही नहीं, बल्कि पक्षी आदि भी, जो पाँच इन्द्रियों वाले हैं, मनुष्य की ही जाति में—पंचेन्द्रिय जाति में ही हैं।

प्रश्न किया जा सकता है कि अगर सभी मनुष्य एक ही जाति के अन्तर्गत हैं तो भगवान् ऋषभदेवजी ने वर्ण-विभाग क्यों किया था ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि समाज का कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए भगवान् ने वर्ण-व्यवस्था कायम की थी। एक परिवार में चार पुरुष होते हैं। वे सब एक ही काम में नहीं लग जाते। अपना-अपना काम अलग-अलग बाँट लेते हैं, जिससे सब अपने-अपने उत्तरदायित्व को समझें और पूरा करें। अगर यह बँटवारा न किया जाय तो नतीजा यह होगा कि परिवार का कोई काम यों ही पड़ा रहेगा और किसी काम में आवश्यकता न होने पर भी सब जुट जाएँगे। इससे परिवार की व्यवस्था बिगड़ जायगी। भगवान् ने मानव-जाति को भी एक महा-परिवार के रूप में देखा था। उसके सभी काम ठीक तरह से पूरे हो जाएँ, कोई काम बिना किया न पड़ा रहे और किसी में अनावश्यक रूप से सब लगकर अपनी शक्ति को वृथा नष्ट न करें, इस उद्देश्य से वर्ण-विभाग कर दिया था। इस प्रकार भगवान् ऋषभदेवजी ने या भरतजी ने मनुष्य जाति के टुकड़े नहीं किये थे, सिर्फ सुचारु रूप से व्यवस्था की थी। किसी-किसी को पढ़ाने-लिखाने आदि का काम सौंपा गया था। वह ब्राह्मण-वर्ण कहलाता था किसी पर रक्षा का भार डाला गया था, जिसका नाम क्षत्रिय-वर्ण पड़ा। एक वर्ग का कार्य कृषि, वाणिज्य-व्यवसाय आदि करना था। यह वर्ग मनुष्यों की सुख-सुविधा के लिए वस्तुओं को उत्पन्न करता था और एक जगह से दूसरी जगह पहुंचाता था। कहीं एक वस्तु उत्पन्न होती है, कहीं दूसरी वस्तु पैदा होती है। मगर आवश्यकता दोनों जगह दोनों की होती है। अतएव यह आवश्यक है कि आवश्यक वस्तुएँ इधर से उधर और उधर से इधर पहुँचाई जाएँ।

यह कार्य जिस वर्ग को सौंपा गया था, वह वैश्यवर्ग कहलाता था। फुटकल सेवा का कार्य जिस समूह के सिपुर्द किया गया, उसका नाम शूद्रवर्ण हो गया। यह सारी व्यवस्था समाज के लिए कल्पित की गई थी।

जैन धर्म ने कभी यह स्वीकार नहीं किया कि मनुष्य मनुष्य में कोई जातिगत वास्तविक भेद है। जैन धर्म यह भी नहीं मानता कि एक वर्ण जन्म से ही ऊँचा होता है और दूसरा वर्ण जन्म से ही नीचा होता है। जैन संस्कृति मनुष्य मात्र को समान अवसर प्रदान करने की हिमायत करती है। प्राचीनकाल में अनेक अन्त्यज कहलाने वाले व्यक्ति जैन धर्म की छाया में शान्ति प्राप्त करने के लिए आये थे। जैनसंघ ने उन्हें स्नेह के साथ अपनाया था और जब वे साधना के मार्ग पर अग्रसर होकर पवित्र हो गये, महात्मा बन गये, तो जैनसंघ ने उन्हें अपना पूज्य माना। मुनिवर हरिकेशी और मेतार्य आदि इसी प्रकार की विभूतियाँ हैं।

जन्म जाति या वर्ण की कल्पना बाद में उत्पन्न हो गई। ब्राह्मण-वर्ग ने अपनी पवित्रता की मोहर लगाने के लिए जनता को समझाया कि जातियों का सम्बन्ध जन्म से है। मगर जैन धर्म तो मनुष्य की एक ही जाति मानता है। असली जाति वही है जो जन्म से लेकर मरण पर्यन्त कभी बदल ही न सके। ब्राह्मण आदि वर्ण और अग्रवाल, ओसवाल आदि जातियाँ किसी भी समय बदल सकती हैं, अतएव यह सब कल्पित हैं, वास्तविक नहीं।

मोह कर्म के उदय से प्रत्येक जीव ने सभी जातियों में जन्म ग्रहण किया है। जीव कभी कहीं और कभी कहीं जन्म लेता

रहता है। अरे जीव ! क्यों घमण्ड करता है? मरने के बाद न ज़ाने कहाँ उत्पन्न होगा ? कहा है—

काँई रे गुमान करे आपनो,
मान करेला गुमान करेला, तो नीच गति मांई जाय पड़ेला।

लोग मान-गुमान में मस्त हो रहे हैं। कोई जाति का अभिमान करता है, किसी के पास पैसा बहुत हो गया है! किसी का शरीर सबल और स्वस्थ है तो वह सोचता है कि मैं दूसरों का कचूमर निकाल दूंगा! किसी को ज्ञान का अभिमान है तो कोई अपनी सुन्दरता के गरूर में चूर है। मगर ज्ञानी जनों का कहना है कि—क्यों घमण्ड करता है रे बन्दर! धन-सम्पति, शरीर और सुन्दरता कितने दिन की है? इस घमण्ड के बदले में तुझे एक दिन रोना पड़ेगा?

कई लोग अपनी इज्जत के लिये रोया करते हैं। वे कहते हैं—कोई पूछता नहीं है! मगर उन्हें सोचना चाहिए कि ज़ब बोर के साथ लट की तरह चबाया गया था तब तुझे किसने पूछा था? हाँ हमारी बात मानोगे तो जरूर पूछे जाओगे। हम क्या कहते हैं? अपने स्वार्थ के लिए कुछ भी नहीं कहते। हमें भेंट नहीं चाहिए, पूजा नहीं चाहिए। तुम्हारे हीरे और पन्ने हमारी नजरों में पत्थर के टुकड़े हैं। तुम्हारे हीरों और सोने की सांकलों को हम गले का फन्दा समझते हैं। तुम्हारा सोना और चांदी हमारे लिए पैरों की धूल के बराबर है। तुम जिसे सम्पत्ति कहते हो, हम उसे विपत्ति मानते हैं इसलिए हमें इनमें से किसी की इच्छा नहीं है। हम तुमसे जो कुछ मनवाना चाहते हैं, वह तुम्हारे ही कल्याण के लिए है, हमारे स्वार्थ के लिए नहीं। हम कहते हैं:—

दया करो, सन्तोष रक्खो, चोरी मत करो, अनीति की राह पर मत चलो। हमारा यह कहा मानोः—

हो म्हारी मानो मानो मानो मानो मानो मानो रे।
हो डर आनो आनो आनो आनो आनो आनो रे॥

भाइयो ! मेरी बात मानो ! मैं बार-बार आग्रह करके कहता हूँ कि मानो, अवश्य मानो। परलोक से डरो, डरो। नहीं मानोगे तो पछताओगे !

बोलो मेरा कहना मानना चाहते हो या नहीं ? क्या सलाह है ? याद रक्खो, अगर मेरा यह हित-कथन न माना तो इसी जन्म में ठोकरें खाते फिरोगे, परलोक में तो कहना ही क्या है !

अरे भाई ! क्यों नखरे करते हो ? क्यों गुमान करके आसमान पर चढ़ते हो ? तुम्हारे पास गुमान करने योग्य क्या पड़ा है ? जिसे तुम अपना समझते हो, तुम्हारा नहीं है। पूर्व जन्म में दान दिया, शील पाला, तपस्या की और भावना भाई होगी, तभी आज लम्बे-चौड़े पसर रहे हो। मेरे इतने बंगले और इतनी कोठियाँ हैं, इस प्रकार कह कर अपनी श्रीमंताई जतला रहे हो ! मगर यह सब आया कहाँ से है ? पूर्व जन्म में कोई हमारे भाई मिल गये होंगे ! उन्हीं के प्रताप से आज यह वैभव है। सेठानीजी आज गोखरू देख कर फूली नहीं समाती और घर पर कोई साधु-संत पहुँच जाय तो आहार देने से भी कतराती है ! मगर उन्हें क्या पता है कि यह गोखरू उनके पति ने बनवाये हैं अथवा उनके पुण्य ने बनवाये हैं ? और वह पुण्य

साधु-संतों की कृपा से उपार्जन किया था या आसमान से टपक पड़ा था ? तुलसीदास कहते हैं—

तुलसी हरि के भजन विन, मानुष गदहा होय।
रात-दिवस लदता फिरै, घास न डालै कोय ॥

चाहे राजा हो या रानी हो अगर भगवान् का भजन नहीं करेगा तो उसकी दुर्दशा ही होने वाली है ! ईश्वर के भजन न करने पर स्त्री गधी बन जायगी और मनुष्य गधा बन जायगा। गलियों-गलियों भटकता फिरेगा और कोई चारा भी नहीं डालेगा। रात-दिन भार ढोने की मुसीबत भी उठानी पड़ेगी।

गाय कहती है—मैं गोमाता कहलाती हूँ। लोग मेरा आदर-सन्मान करते हैं। मुझे देवता की तरह मानते हैं मैं बहुत उपयोगी हूँ। अमृत सरीखा दूध देती हूँ। खेती आदि के लिए बैल देती हूँ। मरने के बाद मेरी चमड़ी और हड्डियां भी काम आती हैं। लेकिन जब मैं अपने स्वामी की इच्छा के विरुद्ध चलती हूँ, मुझमें ऐब आ जाता है तो मेरे गले में लक्कड़ बाँध दिया जाता है—ठेंगुर डाल दिया जाता है। तो भाई, अगर तुम तीन लोक के स्वामी के विरुद्ध चलोगे और दोषों को अपने अन्तःकरण में आश्रय दोगे तो क्या तुम्हारे गले में भी लकड़ी नहीं डाली जायगी ? शाम होते ही तुम सफेद गली का रस्ता लोगे, मदिरा-पान करोगे और दूसरे दुष्कर्म करोगे तो किस प्रकार क्षमा किये जाओगे ?

हे जगत् के जीवो ! मैं बार-बार दोहराता हूँ और तुम कान खोल कर सुनो। तुम्हारा घर यहाँ नहीं है। तुम एक लम्बे

पथ के पथिक हो। तुम्हारी मंज़िल दूर–बहुत दूर है। अविराम गति से उसी ओर चलते–जाओगे तो लक्ष्य पर पहुंच जाओगे। इधर–उधर भटकोगे तो कहीं पता भी नहीं चलेगा। लक्ष्य-भ्रष्ट होकर कष्ट उठाओगे। तुम्हारे मार्ग में बड़े-बड़े खंदक हैं, नदी नाले हैं, सागर हैं, उन्हें तुमको पार करना है। वीतराग देव ने तुम्हारे हाथ में प्रकाश-स्तंभ दे दिया है। उसी की रोशनी में आगे बढ़ो। अगर तुम उस प्रकाश में न चले और अंधकार में भटक गये तो कौन तुम्हारी रक्षा करेगा ? वह स्थिति बड़ी भयानक होगी।

आज तुम मनुष्य हो और ईश्वरत्व की ओर अग्रसर हो सकते हो। अगर पीछे पैर हटाया और नीचे की ओर खिसके तो खिसकते–खिसकते कहाँ पहुंचोगे, कौन कह सकता है ? एकेन्द्रिय की पर्याय तक भी पहुंच सकते हो। पत्थर और पानी के जीव भी बन सकते हो। पत्थर बनोगे तो लोग ठिया बनाकर शौचक्रिया करेंगे। जलकाय वनस्पति काय और अग्निकाय में जन्म ले लिया तो क्या जोर चलेगा ? पानी बनोगे तो लोग कुल्ला करके थुर्र-थुर्र करेंगे। अग्नि बनोगे तो कौन कह सकता है कि श्मशान की आग नहीं बन जाओगे ? भाई ! जब पतन का आरम्भ होता है तो उसका अन्त आना कठिन हो जाता है। कवि ने कहा है—

विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः।

एक बार जिसने विवेक का परित्याग किया, उसका सौ–मुखी पतन हो जाता है। इसलिये मैं तुम्हें चेतावनी दे रहा हूँ कि समय रहते सावधान बनो। ज़रा विचार करो तुम कौन हो ? तुम्हारा क्या स्वरूप है ? क्या लक्ष्य है ? लक्ष्य तक पहुंचने का

कौन सा मार्ग है ? और उस मार्ग पर ही चलने का दृढ़ संकल्प करो और चलो तो कल्याण होगा।

कई लोग कहते हैं—परलोक ढकोसला है। हम परलोक नहीं मानते। मैं ऐसे लोगों से कहना चाहता हूँ कि तुम्हारे दिल में यह जो विचार उत्पन्न हुआ है, सो प्रबल पाप का परिणाम है। तुम्हारा हित इसी में है कि शीघ्र से शीघ्र इस मिथ्या विचार को पूरा कर दो। क्योंकि परलोक है और तुम्हारे न मानने से मिट नहीं सकता। पागल कहता है—सरकार किस चिड़िया का नाम है, हम नहीं जानते। मगर जब वह उत्पात मचाता है तो पागलखाने में बंद कर दिया जाता है और कोड़ों की मार मार कर उसकी अक्ल दुरुस्त की जाती है। जब उसकी अक्ल ठिकाने आती है तो वह मान लेता है कि सरकार है। यही बात तुम्हारे सम्बन्ध में होगी। किसी ने कहा है—

जातस्य हि ध्रुवं मृत्युः।

जिसने जन्म लिया है, वह निश्चय ही मरने वाला है। जब मरने वाला है तो दूसरा जन्म भी लेने वाला है। अगर परलोक न मान कर पापाचरण में रत हो जाओगे तो भीषण संकटों में पड़ जाओगे।

क्षण भर के लिए कल्पना कर भी लो कि परलोक का होना और न होना निश्चित नहीं है तब भी जीवन को पवित्र बनाने का प्रयत्न करने में तुम्हारी क्या हानि है ? ऐसा करने पर यदि परलोक हुआ तो सुखी हो जाओगे। न हुआ तो कोई हानि की संभावना तो है ही नहीं। इसके विपरीत, परलोक नहीं है, ऐसा

मात्र कर अगर पाप का आचरण करोगे और अगर परलोक हुआ तो क्या तुम्हारी दुर्दशा न होगी ? भाइयों, धर्म और न्याय नीति का पालन करना किसी भी स्थिति में अहित कर नहीं हो सकता।

धर्म से परलोक सुधरता है, यह सच है और इसमें लेश मात्र भी संदेह नहीं है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये कि धर्म का इहलोक के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। बल्कि सत्य तो यह है कि धर्म का इहलोक से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है और परलोक से परोक्ष सम्बन्ध है। अगर मानव जाति में से आज धर्म की भावना सर्वथा निकल जाय और सर्वत्र अधर्म ही अधर्म की प्रतिष्ठा हो जाय तो संसार की क्या दशा होगी ? राजा अपने धर्म का पालन न करे तो प्रजा की क्या स्थिति होगी ? माता अपने धर्म को भूल कर अधर्म का ही आचरण करने लगे तो क्या पुत्र जीवित भी बच सकेगा ? पति और पत्नी अपने-अपने धर्म को तिलांजलि देकर अधर्म में रत हो जाएँ तो क्या पल भर भी शान्ति मिल सकेगी ? भाइयो, यह पृथ्वी धर्म के आधार पर ही टिकी है। धर्म के प्रसाद से ही प्राणी मात्र का जीवन है। अगर अधर्म ही अधर्म को आश्रय दिया जाय और हिंसा, झूठ, चोरी और व्यभिचार के आधार पर ही जीवन यापन किया जाय तो क्या यह पृथ्वी नरक से भी बदतर नहीं बन जायगी ? सर्वत्र हत्या, मारपीट, लूटपाट की स्थिति में क्या पल भर जीवित रहना कठिन नहीं हो जायगा ?

यह धर्म की ही महिमा है कि आप सुख-चैन से जीवन व्यतीत कर रहे हैं। धर्म की इस अत्यन्त महिमा को कौन अस्वीकार

कर सकता है ? ऐसी स्थिति मे संत पुरुष अगर धर्म की आराधना करने की प्रेरणा करते हैं तो क्या परलोक को मानने वाले आस्तिक के लिए और क्या परलोक न मानने वाले नास्तिक के लिए—दोनों के लिए वह प्रेरणा मान्य होनी चाहिए।

किन्तु आज बहुतेरे लोग हैं, जो इतनी गंभीरता के साथ विचार नहीं करते। न जाने क्यो उन्हें धर्म से एक प्रकार की चिढ़ हो गई है। उनमें ज्ञान तो पूरा होता नहीं, फिर भी बाते ऐसी करते हैं, मानों दुनिया की सारी अक्ल उन्हीं में आ बसी है। दुनिया में बड़े-बड़े महापुरुष हो गये हैं। आप उनकी बात सच्ची मानेंगे या इन गपोड़ोसंखों की बातें सच्ची मानेंगे ! जिन्हें उठने और बैठने का भी पूरा तमीज नहीं है, वे कहते हैं हम परलोक नहीं मानते ! मानों वे जाकर देख आये हो ! भद्र पुरुषो ! तुम्हें राम कृष्ण और महावीर की बात माननी चाहिये। उन्होंने बतलाया है कि जीव मरता है और जन्म लेता है और जब तक मुक्ति प्राप्त नहीं होती, यह चक्र सदैव चलता रहता है। महापुरुषो के ज्ञान के सामने इन लोगों की क्या अक्ल है ? अधूरी अंग्रेजी पढ़ ली और कूदफाँद करने लगे ! यह अधूरो अक्ल ही अनेक अनर्थों को उत्पन्न करती है।

गांधीजी भी अंगरेजी पढ़े थे, पर वे अधकचरे नहीं थे। विद्वान थे। कितने बड़े आदमी थे ! किन्तु कृष्ण को और शास्त्रों की बातों को सुनाया करते थे। वे धर्म की महिमा को पहचानते थे। और इधर ये बिगड़ी खोपड़ी के लोग हैं जो कहते हैं कि हम परलोक नहीं मानते, धर्म नहीं मानते ! ऐसे लोग पत्थर की नौका के समान हैं, जो आप डूबते हैं और दूसरों को भी डुबाते हैं !

ऐसे लोग अपनी बुद्धि के अभिमान से चाहे कुछ भी कहें, आपको अपने हित के मार्ग पर ही चलना चाहिए। अभिमानी आदमी न स्वयं सही बात सोच सकता है और न दूसरो की बात मानता है। वह तुच्छ होता हुआ भी अपने आपको महान् समझता है। एक मच्छर भैंसे के सींग पर बैठ गया। वह भैंसे से कहने लगा—क्यों रे पाड़े ! मेरा वजन तो तुझे असह्य नहीं लगता ? भैंसा कहने लगा—वाह रे मच्छर ! क्या तू भी किसी गिनती में है ? इसी तरह गाड़ी के नीचे-नीचे कुत्ता चलता है। वह समझता है कि गाड़ी मेरे सहारे चल रही है ! मैं ही गाड़ी का सारा बोझ उठाये हूँ। उसे नहीं मालूम है कि गाड़ी में बैल जुते हैं और वह गाड़ी को चला रहे हैं।

इसी तरह अभिमानी लोग अपने आपको सब कुछ समझ लेते हैं और दूसरों को कुछ भी नहीं समझते ! वे औरों की तो बात ही क्या, ईश्वर को भी गालियां देते हैं और साधुओं को ढोंगी बतलाते हैं। मगर वे बेचारे क्या करें ? उन्होंने मद और मोह की मदिरा पी रक्खी है। इस कारण उन्हें सम्यक् का भान नहीं है। थोड़े से रुपये मिल गये, अच्छे कुल में जन्म ले लिया लोगों में प्रशंसा होने लगी तो फूला-फूला फिरता है। उसे नहीं मालूम कि संसार में एक से एक बढ़कर धनवान् और सम्पत्तिशाली लोग मौजूद हैं। वह क्या जाने कि कुल का अभिमान करने वाला अनन्त वार श्वान और श्वपच योनि में उत्पन्न हो चुका है और इस अभिमान के फलस्वरूप ऐसी ही निकृष्ट योनियों में फिर उत्पन्न होना पड़ेगा।

अभिमान से कौन फला-फूला है ? जिसने अभिमान किया

वह अपने अभिमान की आग में ही भस्म हो गया। लंका का स्वामी और प्रचंड पराक्रमी वीर रावण अपने अहंकार की आग में खाक हो गया। दुर्योधन को राज्य के साथ-साथ प्राण भी गंवाने पड़े! शिशुपाल जैसे घमंडी राजा को मौत का शिकार होना पड़ा। कहां तक गिनाएँ? अभिमानियों के सिर सदा झुकते रहे हैं, कटते रहे हैं; इस बात को इतिहास का प्रत्येक विद्यार्थी सहज ही समझ सकता है। दूर क्यों जाते हो, जर्मनी के भाग्यविधाता हिटलर को ही देख लो। वह अपनी शक्ति के घमण्ड में मतवाला हो गया था। सारे यूरोप-खंड पर अपना एकच्छत्र साम्राज्य स्थापित करने के सपने देख रहा था। पर किस दयनीय रूप में उसका अन्त हुआ? और भी नजदीक की घटना देखना हो तो अंग्रेज-सरकार की ओर दृष्टि डाल लो। एक दिन था कि गोरों की सरकार गरूर में चूर होकर कहती थी कि जो हमारे विरुद्ध सिर ऊंचा करेगा, उसे हम कुचले बिना न रहेंगे। मगर गत महायुद्ध के बाद परिस्थितियों ने पलटा खाया। अंगरेजों की शक्ति क्षीण हो गई और हार कर—विवश होकर उसे भारत छोड़ना पड़ा।

तो भाई, जब बड़ी-बड़ी हुकूमतों का भी पतन हो गया और बड़े-बड़े शूरवीरों को कुत्ते की मौत मरना पड़ा तो तुम किस खेत की मूली हो? तुम्हारी क्या हस्ती है? किस बात पर तुम अभिमान करते हो? जब पुण्य क्षीण होता है तो सारी साहिबी पल भर में समाप्त हो जाती है। औरों की तो बात ही क्या, खुद के कपड़े ही दुश्मन बन जाते हैं। कहा है—

चित्र-मयूर गया हार निगल,
विक्रम सा भूप चौरंगा बना।
घांची के घर फेरी घाणी,
फिर भावी क्या दिखलावेगा ?
चाहे जितनी तू तदबीर करे,
तकदीर लिखा वही पावेगा।
चलती नहीं हुज्जत यहां किसकी,
चाहे जितना मगज लड़ावेगा ॥ध्रुव॥

आज शनैश्चर वार है। शनिजी की कथा कही जाती है, जो इस प्रसंग के अनुकूल है—

राजा विक्रम एक सेठ के यहाँ कमरे में बैठ कर भोजन कर रहा है। उस कमरे की दीवार पर एक मोर का चित्र बना हुआ है और वहीं खूंटी पर एक हार टँगा है। असंभव प्रतीत होता है कि चित्र लिखित मोर हार को निगल जाय; मगर विक्रम के देखते-देखते वह मोर हार को निगल गया। सेठ ने राजा के पास जाकर फरियाद की और राजा ने चोरी के अपराध में विक्रम के दोनों हाथ कटवा लिये। उसके बाद विक्रम को एक तेली ले गया। उसने उसे अपनी घाणी पर बिठलाया।

मगर जब अच्छे दिन आते हैं तो सब कुछ अच्छा ही अच्छा हो जाता है।

एक दिन एक नट आया। उसने तमाशा दिखलाने के लिए कहा और साथ ही माँग की कि मेरा तमाशा देखकर अगर

आप प्रसन्न हो जाएँ तो मुझे इतना इनाम दीजिएगा कि फिर किसी से कुछ माँगने की आवश्यकता न रह जाय।

राजा ने नट की माँग स्वीकार कर ली। नट ने खेल दिखलाना शुरु किया। नट के खेल दिखलाने पर भी राजा का दिल खुश नहीं हुआ। तब नट ने वहाँ मरे पड़े हुए कबूतर के शरीर में अपनी आत्मा निकाल कर डाल दी। कबूतर जीवित होकर गुटर गूं-गुटर गूं करने लगा। अब की बार राजा खुश हुआ। नट ने इनाम मांगा तो राजा ने कहा—मुझे यह विद्या सिखा दे। नट ने कहा—बंगाल में मेरे गुरु रहते हैं। उनकी आज्ञा के बिना यह विद्या नहीं सिखला सकता। राजा विक्रम को यह विद्या सीखने की बड़ी उत्कंठा थी, अतएव वह नट के साथ बंगाल जाने के लिए तैयार हो गया।

आपको आश्चर्य होगा कि आत्मा दूसरे शरीर में कैसे प्रवेश कराई जाती है? पर भारतीय योग-पद्धति में इसकी भी साधना बतलाई गई है। 'शंकर दिग्विजय' में शंकराचार्यजी ने लिखा है कि एक स्त्री के साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ। जब वह आचार्य को निरुत्तर न कर सकी तो उसने स्त्री-प्रवृत्ति के विषय में प्रश्न किया। मगर शंकराचार्य ब्रह्मचारी थे और इस विषय से सर्वथा अनभिज्ञ थे। वे उसके इस प्रश्न का उत्तर न दे सके। तब उन्होंने उससे उत्तर देने के लिए कुछ समय मांग लिया।

इस विषय का ज्ञान प्राप्त करने के लिए शंकराचार्य ने अपनी आत्मा एक मरी हुई चील के शरीर में रख दी। जब कोई राजा मर गया तो चील के शरीर में से अपनी आत्मा को निकाल

कर राजा के शरीर में प्रविष्ट कर ली और फिर रानी के साथ रह कर स्त्री-प्रवृत्ति सीखी। यह किस्सा लम्बा-चौड़ा है। तात्पर्य यह है कि प्राचीन काल में इस प्रकार की भी एक विद्या भारतवर्ष में मौजूद थी, ऐसा मालूम होता है।

राजा विक्रम ने यह विद्या सीखने का निश्चय कर लिया। तब वह अपनी सातों रानियों के पास जाकर बोला-तुम्हें जो चीज सब से ज्यादा प्यारी हो वह लाकर दो। तब किसी ने हार, किसी ने गोखरू आदि लाकर दे दिये। राजा ने दीवार में गड़हा करके वह सब चीजें उसमें रख दीं और रानियों से कहा--मैं एक नयी विद्या सीखने के लिए बंगाल जा रहा हूँ। पीछे से कोई गुंडा आ जाय, चाहे उसका रूप हूबहू मेरे जैसे ही क्यों न हो, तो उससे सर्व-प्रथम यही प्रश्न करना कि पहले मेरी प्यारी चीज बतलाओ। अगर वह सही उत्तर दे दे तो उसे 'विक्रम' समझना, अन्यथा विश्वास मत करना।

इस प्रकार अपनी रानियों को समझा कर विक्रम राजा अपने पुरोहित को साथ लेकर विद्या सीखने के लिए नट के गुरुजी के पास गया। वह विनयपूर्वक विद्या सीखने लगा और एक तम्बू में रहने लगा। छह महीने में उसने सम्पूर्ण विद्या सीख ली। राजा ने विद्या सीखी सो सीखी, साथ ही राजा का पुरोहित भी उस विद्या को सीख गया।

अब राजा विक्रम अपने पुरोहित के साथ घर की ओर रवाना हुआ। मार्ग में पुरोहित ने कहा—राजन्! आपने विद्या सीख तो ली है पर उसकी आज़माइश नहीं की कि वास्तव में

वह सिद्ध हुई है या नहीं ? एक बार परीक्षा करके देख तो लीजिए। राजा ने पुरोहित की बात मान ली और अपनी आत्मा निकाल कर मरे हुए तोते के शरीर में प्रविष्ट की।

इधर उस धूर्त्त और कपटी पुरोहित ने अपनी आत्मा राजा के शरीर में प्रविष्ट कर ली और अपने शरीर को जला कर भस्म कर दिया। पुरोहित सीधा उज्जैन आया और महलों में दाखिल हो गया। सारी उज्जैन में राजा के सकुशल लौट आने की खुशियाँ मनाई गई, क्योंकि विक्रम राजा बड़ा ही दयालु और प्रजाप्रिय था। वह प्रजा को अपनी सन्तान के समान प्रेम करता था और प्रजा पिता के समान उसका आदर करती थी।

विक्रमशरीरधारी पुरोहित रानियों के पास गया और इधर-उधर की बातें करने लगा। मगर विक्रम जाते समय ही उन्हें सावधान कर गया था। रानियों ने राजा की वह बात याद करके कहा अगर आप सचमुच ही उज्जयिनीनाथ महाराज हैं तो बतलाइए कि हमारी प्यारी वस्तुएँ क्या हैं? पुरोहित चक्कर में पड़ गया! वह 'एँ' करके रह गया। रानियाँ समझ गईं कि यह नकली राजा है! उन्होंने कहा—भला चाहते हो तो इसी वक्त महल से बाहर चले जाओ, नहीं तो हम सातों मिल कर तेरी बोटी-बोटी अलग कर देंगी।

पुरोहित को महल में फिर जाने का साहस नहीं हुआ। वह बाहर ही बाहर रहने लगा। उसे इस बात का संतोष था कि रानियाँ नहीं मिलीं तो न सही, राज्य तो मिल ही गया।

कहो भाई! राजा विक्रमादित्य कितना यशस्वी और

प्रतापशाली राजा था, मगर आज वह किस हालत में आ पहुंचा है। वह तोता बना हुआ है और टां-टां करता फिरता है।

एक दिन जंगल में किसी चिड़ीमार ने इस तोते को फाँस लिया। उसने किसी राजा को बेच दिया। राजा उसकी बोली सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। रानी ने एक मैना पाल रक्खी थी। तोता उसी के पास पांजरे में बन्द कर दिया गया।

कहानी लम्बी है। संक्षेप में ही कहता हूँ। इस राजा की एक अठारह वर्ष की कन्या थी। इस राजा ने उज्जैन के राजा विक्रम को बहुत प्रतापी और योग्य समझ कर उसके साथ अपनी लड़की की सगाई कर दी। नकली विक्रम दूल्हा बन कर आया। तोता यह सब घटनाएँ बड़ी उत्सुकता और व्यग्रता के साथ देख रहा था। उसने राजा को सलाह दी—जब दूल्हा तोरण पर आ जाय तो उससे कहना कि पहले अपनी आत्मा बकरे के इस शरीर में प्रविष्ट करो, उसके बाद विवाह की विधि की जायगी। नकली विक्रम ने राजा के इस तरह कहने पर अपनी आत्मा बकरे के शरीर में प्रविष्ट कर दी। उधर तोते ने अपनी आत्मा फौरन ही उसके शरीर में—जो मूलतः विक्रम का ही शरीर था—प्रविष्ट कर दी और तोते के शरीर को भस्म कर दिया। इतनी मुसीबत के बाद विक्रम राजा अपने असली शरीर में पुनः दाखिल हो सका। राजकुमारी के साथ उसका विवाह हुआ और वह उज्जैन लौट आया।

भाइयो! जब एक ही जन्म में, विक्रमादित्य जैसे प्रतापशाली, पराक्रमी और विद्यावान् राजा को तोते के शरीर मे निवास करना पड़ता है, तो अभिमान करने की गुंजाइश ही

कहाँ रहती है ? विक्रम की यह कथा कोई इतिहास नहीं है। एक दृष्टान्त के तौर पर इसका प्रयोग किया गया है। इस कथा से यह भी मालूम हो जाता है कि दगाबाज की अन्त में कितनी दुर्दशा होती है! पुरोहित राजा और प्रजा में सन्मान का पात्र था। मगर चौबेजी छब्बे बनने चले तो दुबे ही रह गये। दगाबाज़ी के फलस्वरूप पुरोहित को बकरे की हालत में जिंदगी गुजारनी पड़ी। दगाबाज के विषय में कहा जाता है:—

दगाबाज़ दूना नमे, चीता चोर कमान।
पहले झुकते खूब हैं, पीछे हरते प्रान॥

दगाबाज पहले बड़ी नम्रता दिखलाता है। चीता, चोर और कमान को देखो। इनका नमना खतरनाक है।

भाइयो! अभिमान मनुष्य का एक प्रबल शत्रु है जो अभिमानी है वह स्वभावतः अपने राई जितने गुणों को पर्वत के बराबर और दूसरों के पर्वत के बराबर गुणों को राई के बराबर समझता है। उसके ऐसा समझने से दूसरों की कोई हानि नहीं होती, उसी की हानि होती है, क्योंकि उसके सद्गुणों का विकास नहीं हो सकता। वह न विद्या प्राप्त कर पाता है, न विनय प्राप्त कर सकता है, और न दूसरे सद्गुण ही पाता है। अभिमानी को लोग हिकारत की निगाह से देखते हैं। उन्नति में जितना बाधक अभिमान है, उतना और कोई नहीं। अतएव अभिमान को त्याग देना ही श्रेयस्कर है।

जम्बूकुमार की कथा

जिसने संसार की वास्तविक स्थिति को समझ लिया

होगा, जिसने जीवन की क्षणिकता का स्वरूप जान लिया होगा और धन-वैभव की निस्सारता को पहचान लिया होगा, वह विवेकवान् व्यक्ति कभी अभिमान के चंगुल में नहीं फँसेगा। जम्बूकुमार को किस चीज़ की कमी है? घर में धन के अक्षय भंडार भरे हैं, नवयौवन अवस्था है, अभी - अभी विवाह हुआ है! संसारी लोग जिन वस्तुओं को पाकर जमीन पर पाँव नहीं धरते और इतराते फिरते हैं वह सब वस्तुएँ जम्बूकुमार को प्राप्त हैं। मगर उन्होंने इन सब वस्तुओं के अहंकार का त्याग कर दिया है। इसीलिए वे विरक्त होकर साधु बनने की तैयारी कर रहे हैं।

संयोग वश प्रभव चोर जंबूकुमार के समक्ष आ पहुँचा है। उसने एक प्रश्न खड़ा किया कि एक पुत्र उत्पन्न होने के पश्चात् आपको दीक्षा लेनी चाहिए। मगर जम्बूकुमार ने उसे समझाया कि जीव अपने किये पुण्य-पाप के फल को ही भोगता है; पुत्र के होने या न होने से कोई सुखी अथवा दुखी नहीं हो सकता। संसार बड़ा विषम है। इसमें अचिन्त्य घटनाएँ घटती रहती हैं। पुत्र अपने पिता के प्रति, अनजान में कैसा व्यवहार कर बैठता है, यह बात एक दृष्टान्त से जम्बूकुमार समझाते हैं:—

विजयपुर नामक किसी ग्राम में महिषदत्त नामक एक व्यापारी रहता था। महिषदत्त प्रकृति से सरल था किन्तु मिथ्यात्वियों की संगति से मिथ्यात्वी बन गया था। जब उसका बाप मरने लगा तो उसने महिषदत्त से कहा—बेटा! मेरी एक बात याद रखना। अगर मेरी गति सुधारना चाहो तो मेरी मरण-तिथि के दिन एक पाडे को मार कर मेरा श्राद्ध करना और

कुटुम्ब को भोजन कराना। लड़के ने अपने मरणासन्न पिता की बात स्वीकार कर ली।

थोड़े समय बाद बूढ़ा मर गया। वासना रह जाने के कारण वह एक भैंस के पेट में पाड़े के रूप में जन्मा।

महिषदत्त की माता बड़ी लोभिन थी। उसके पास बहुत-सा धन था। उसने अपने लड़के को वह धन नहीं बतलाया और जमीन में गाड़ कर रक्खा। वह उसी जगह सोती जहाँ धन गड़ा हुआ था। वह एक दिन मर गई और उस धन में आसक्ति रह जाने के कारण उसी गली में एक कुत्ती के रूप में उत्पन्न हुई। जब वह बड़ी हुई तो वह उसी धन पर आकर बैठने लगी।

एक बार महिषदत्त किसी दूसरे गाँव गया था। महिषदत्त की पत्नी दुराचारिणी थी। वह लौटकर घर आया। उसने किवाड़ों में जो लात लगाई तो किवाड़ खुल गये। उसने अन्दर का दृश्य देखा तो क्रोध से जलने लगा। तलवार उठाकर उसने उसी समय वहाँ मौजूद दूसरे पुरुष के दो टुकड़े कर दिये। उसके बाद वह अपनी पत्नी की भी गर्दन उड़ा देने के लिए तैयार हुआ, मगर वह रोने लगी और आजीजी करने लगी। बोली—मेरी गलती हुई। मुझे क्षमा कर दो। महिषदत्त किसी तरह मान गया पर उसने कठोर चेतावनी दे दी कि अबकी बार दुराचार किया तो याद रखना-जान से मार दूंगा।

वह दुराचारी पुरुष मर गया था। उसकी भावना उस औरत में रह गई थी, अतः वह उसी के गर्भ में उत्पन्न हुआ।

समय पूरा होने पर लड़के के रूप में उसका जन्म हुआ । महिषदत्त ने पुत्र उत्पन्न होने की खुशी मनाई । लड़का धीरे-धीरे एक-दो वर्ष का हो गया ।

महिषदत्त के पिता की मृत्यु तिथी आई । पिता के अन्तिम आदेश के अनुसार उसे पाड़े को मारकर श्राद्ध करना था । वह पाड़ा खरीदने लगा और वही पाड़ा मोल ले आया जो उसके बाप का जीव था । पाड़ा खरीद लिया गया और नियत समय पर मार डाला गया । उसका मांस सब कुटुम्बियों को खिलाया और हड्डियाँ एक तरफ फेंक दी । उन हड्डियों को वह कुतिया चाटने लगी जो महिषदत्त की पूर्वभव में माता थी ।

महिषदत्त अपने बालक को गोद में लिये उस कुत्तिया को भगा रहा है । उसी समय मासखमण की तपस्या करने वाले एक मुनि उधर से निकले । उन्होंने उसके घर पर चीले मंडराती देखकर अवधिज्ञान का उपयोग लगाया तो समस्त घटना जान ली । सहसा उनके मुख से निकल पड़ा–'अहो अकज्जं, अहो अकज्जं, अहो अकज्जं !'

महात्मा के मुख से यह शब्द सुनकर महिषदत्त को आश्चर्य हुआ उसने महात्मा से पूछा—कृपा कर बतलाइए, मेरे यहां क्या अकार्य हुआ ।

मुनि बोले—भाई ! संसार अत्यन्त विषम है ! तूने अपने बाप को मार डाला है और अपनी माँ को मार रहा था ! इतना ही नहीं तू अपने दुश्मन को छाती से लगाये फिरता है !

महिषदत्त बोला—महाराज ! साधु होकर आप क्यों झूठ बोलते हैं ? मेरे बाप को और मेरी माँ को मरे कई वर्ष बीत गये हैं। दुश्मन मेरा कोई है ही नहीं ! फिर आप क्या अंटसंट कह रहे हैं ?

मुनि ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा—जिसकी बुद्धि पर अज्ञान का पर्दा पड़ा होता है, उसे सत्य नहीं सूझता। तुम्हारे पिता मरते समय पाड़ा मारने के लिए कह गये थे न ? सो उसी ने पाड़े के रूप में जन्म ग्रहण किया था और उसी पाड़े को आज तुमने मारा है।

महिषदत्त—रहने दीजिये, आपने कह दिया और मैंने सुन लिया। मैं इतना मूर्ख नहीं कि आपकी इन निराधार बातों पर विश्वास कर लूं।

मुनि ने कहा—और सुन लो। यह कुतिया तेरी पूर्व भव की माता है। धन में वासना —ममता रह जाने के कारण यह कुतिया हुई है। जहां यह बैठे, वहीं खोदोगे तो तुम्हें धन मिल जायगा।

महिषदत्त उसी समय दौड़ा। उसने जमीन खोदी तो धन निकल आया। तुरन्त आकर उसने मुनि से कहा—महाराज, आप की यह बात तो सही है। अब यह भी बतलाइए कि मैं अपने दुश्मन को कैसे प्यार कर रहा हूँ ? मुनि ने कहा-कषाय भाव धारण मत करना। संसार की वास्तविक स्थिति क्या है, यह बतलाने के लिए ही मैं यह रहस्य खोल कर कह रहा हूँ। एक जन्म का शत्रु अनेक जन्मों का मित्र भी है और इसी प्रकार मित्र, शत्रु भी हैं। सब जीवों के साथ संसार में सब प्रकार के संबंध रह चुके हैं।

अतएव बुद्धिमान् पुरुष इस तथ्य को जानकर समभाव धारण करते हैं, विषम भावों से अभिभूत नहीं होते।

इतनी भूमिका के पश्चात् मुनि बोले—यह लड़का उसी पुरुष का जीव है जिसने तुम्हारी पत्नी के साथ दुराचार किया था और जिसे तुमने मार डाला था। इसकी हड्डियाँ अभी तक मौजूद हैं। यह तुम्हारी पत्नी के गर्भ में उत्पन्न हुआ है। कहा भी है:—

है संसार असार न करना पल भर राग सयाने !
यहां जीव ने अब तक पहने हैं कितने ही बाने।
सब जीवों के सब जीवों से सब सम्बन्ध हुए हैं,
लोकप्रदेश असंख्य जीव ने अगणित बार छुए हैं ॥

× × × ×

एक जन्म की पुत्री मर कर है पत्नी बन जाती,
फिर आगामी भव में माता बन कर पैर पुजाती।
पिता पुत्र के रूप जनमता, वैरी बनता भाई,
पुत्र त्याग कर देह कभी बन जाता सगा जमाई ॥

मुनि का कथन सुनते ही महिषदत्त को सब बातों पर विश्वास हो गया। उसने अपने पिता के भैंसा होने और उसी के श्राद्ध में उसी के मारे जाने की बात पर भी विश्वास कर लिया। मगर घोर पश्चात्ताप से उसका हृदय व्याकुल हो गया। उसका अन्तःकरण गहरी वेदना से आहत-सा हो गया। आँखों में आँसू भर कर वह मुनिराज के चरणों में गिर पड़ा। बोला—महाराज, मैं

ने अपना जीवन भ्रष्ट कर लिया है ! मैं घोर पातकी हूँ। मेरे दुष्कृत्यों की सीमा नहीं है। मुझ-सा अभागा संसार में और कौन होगा ? गुरुदेव ! आपने मेरे नेत्र खोल दिये हैं । मगर खुले नेत्रों से जो कुछ देख रहा हूँ वह मेरे लिए असहनीय है। पश्चात्ताप और परिताप की धूनी में, तिल-तिल कर जलना मैं किस प्रकार सहन कर सकूंगा ? क्या मुझ जैसे अनर्थकारी और अधर्मी के लिए नरक में भी जगह मिल सकेगी ? प्रभो ! मुझे प्रायश्चित्त का मार्ग सुझाइए। कल्याण की राह दिखाइए।

मुनि ने अपने निसर्ग-सरस, मृदुल और मधुर स्वर में, शान्त भाव से कहा—वत्स ! रोने से काम नहीं चलता । कृत पापों के लिए प्रायश्चित्त करना उचित है । पश्चात्ताप भी करना चाहिए। मगर यह सब इसलिए कि आत्मा में पुनः पाप न करने की प्रेरणा पैदा हो और पाप करने का प्रसंग उपस्थित होने पर भी आत्मा की प्रवृत्ति पाप में न हो। इस प्रकार पापों से दूर रहने की दृढ़ता प्राप्त करना ही पश्चात्ताप का प्रयोजन है। सिर्फ आँसू बहाने से पाप नहीं धुल सकते। देवानुप्रिय ! तुम भद्र हो और तुमने अज्ञान-अवस्था में पापकर्म का आचरण किया है। पाप किसी भी अवस्था में क्यों न किया जाय, पाप ही रहता है, मगर जान बूझ कर किये जाने वाले पापों की अपेक्षा अनजान में हुए पापों का फल हल्का होता है। कैसा भी पाप क्यों न हो, उसके परिमार्जन का मार्ग भी है और वह मार्ग है धर्म का आचरण करना ।

भद्र ! संसार में पाप हैं, इसीलिए धर्म भी है। पापों का प्रक्षालन करने के लिए धर्म की उपयोगिता है । घोर से घोर

पातकी भी धर्म का सेवन करके पापमुक्त हो जाता है। पाप रूपी रोगों को शान्त करने के लिए या जड़ से उखाड़ फैंकने के लिए धर्म ही एक मात्र महान् औषध है। अगर तुम्हारे हृदय में सचमुच पश्चात्ताप का भाव उत्पन्न हुआ है और तुम पापों का प्रतिकार करने की कामना करते हो तो धर्म की शरण लो। धर्म अहिंसा में है, सत्य में है, अचौर्य में है और इसी के अनुरूप दूसरे प्रशस्त अनुष्टानो में है। तुम प्रतिज्ञा कर लो कि मैं आज से कम से कम निरपराध, चलते-फिरते-त्रस जीवों की जान-बूझ कर हिंसा नहीं करूँगा, स्थूल असत्य भाषण नहीं करूँगा, चोरी नहीं करूँगा, किसी की धरोहर नहीं हड़पूँगा, पर स्त्री गमन नहीं करूँगा, गरीबों को नहीं सताऊँगा, उनके हक को न दबाऊँगा, रात्रि में भोजन नहीं करूँगा, आदि। साथ ही प्राणी मात्र पर दया-अनुकम्पा की भावना रखना, यथा शक्ति पात्र को दान देना, परोपकार करना, दीन-हीन असहाय जनों की सेवा-सहायता करना, जीवन में कभी अन्याय-अनीति का प्रवेश न होने देना, आदि के लिए भी दृढ़ भाव धारण करो। इत्यादि उपदेश देकर मुनि ने महिषदत्त को श्रावक के बारह व्रत धारण कराये। उसकी पत्नी ने भी व्रत ग्रहण कर लिये।

मुनि का यह सब उपदेश सुनकर कुत्ती को भी ज्ञान उपजा। मुनि के उपदेश से वह संथारा करके स्वर्ग गई।

भाइयो! आज धर्म के विषय में बड़ी भ्रांति फैल रही है। जैसे धन-सम्पदा के विषय में लोग कहते हैं कि यह मेरी है, और यह तेरी है; इसी प्रकार धर्म के विषय में भी वे समझते हैं कि यह तेरा है और यह मेरा है! यह बड़ा भारी भ्रम है। जैसे

चन्द्रमा और सूरज किसी एक के नहीं हैं, सभी के हैं, जैसे वायु और आकाश किसी एक का नहीं और सभी का है, उसी प्रकार धर्म किसी एक का नहीं—सभी का है। उसमें तेरे–मेरे की कल्पना कर लेना भारी भूल है। किसी प्राणी को न सताना धर्म है, असत्य न बोलना धर्म है, ब्रह्मचर्य का पालन करना धर्म है, ममता या लोभ का त्याग करना धर्म है। पर यह धर्म किसका है? क्या यह धर्म किसी एक व्यक्ति का है और दूसरे व्यक्ति का नहीं है? अथवा एक समूह का है और दूसरे समूह का नहीं है? अगर यह धर्म एक ही व्यक्ति या समूह का हो तो दूसरों का धर्म क्या प्राणी को सताना, झूठ बोलना, व्यभिचार करना आदि होगा? नहीं। यह धर्म हो जाय तो संसार का तख्ता ही उलट जायगा। वास्तव में धर्म मनुष्य मात्र के लिए है। वह धर्म एक है। उसके पथ अनेक हो सकते हैं और श्रेणियाँ भी अनेक हो सकती हैं। कोई धर्म को थोड़ा पालन करता है, कोई अधिक पालन करता है। इस प्रकार श्रेणीभेद होने पर भी और साधना के प्रकार में अन्तर होने पर भी धर्म का स्वरूप एक ही रहता है।

धर्म पर किसी का आधिपत्य नहीं है। न वह सिर्फ ब्राह्मणों के लिए है, न क्षत्रियों के लिए है, न वैश्यों के लिए और न केवल शूद्रों के लिए है, मनुष्य मात्र धर्म की आराधना करने का अधिकारी है। धर्म के विशाल प्रांगण में किसी भी प्रकार की संकीर्णता और भिन्नता को अवकाश नहीं है। यहाँ आकर मानव मात्र समान बन जाता है। धर्म की यह उदारता महान् है और मानव जाति के लिए वरदान है।

इतना ही नहीं, मनुष्य मात्र ही धर्म का अधिकारी हो

सो बात नहीं है, बल्कि पशु-पक्षी भी धर्म के अधिकारी हैं। शास्त्र स्पष्ट रूप से घोषणा करते हैं कि पशु पक्षी भी अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार धर्म का आचरण कर सकते हैं और अपने अभ्युदय का प्रयत्न कर सकते हैं। तदनुसार ही मुनि ने कुत्ती को भी धर्म का पथ प्रदर्शित किया और उसने धर्म के प्रताप से स्वर्ग प्राप्त कर लिया ! जगत् के जीवों के लिए धर्म ही एक मात्र आधार है। धर्म उनका सहायक और उपकारक है।

सुनो ऐ बायां ! सुनो-समझो तो बायां नहीं तो गायां ! और समझे तो मरद नहीं तो बलद !

महिषदत्त की कथा सुनाकर जम्बूकुमार ने प्रभव से कहा प्रभव ! तुम कहते हो कि पुत्र के बिना सद्गति नहीं मिलती। मगर इस कथा से प्रकट है कि पुत्र किस प्रकार अपने पिता की सद्गति करता है !! सच बात तो यह है कि कोई किसी को पुण्य या पाप नहीं दे सकता। कोई किसी को सुगति या दुर्गति में नहीं भेज सकता। सभी जीव अपने किये का फल भोगते हैं।

प्रभव ने कहा—कुमार ! आपका ज्ञान मेरे हृदय में उतर गया है। मैं समझ गया हूँ कि संसार निस्सार है। कुटुम्ब-परिवार की कल्पना सब कल्पना मात्र है। सभी प्राणियों का भाग्य स्वतन्त्र है। मैं आपका धन चुराने आया था, किन्तु आपने मेरा मन चुरा लिया है। अपना मन आपको देकर मैं हल्का हो गया हूँ। जान पड़ता है, सिर पर से भारी बोझा उतर गया है। मैं आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग और नरक—सब की सत्ता तलवार की धार में समझे हुए था। आपने मेरा हृदय मोम बना दिया

है। धन-सम्पदा के प्रति अब मेरे हृदय में कोई आकर्षण नहीं रहा है। मैं अपनी राह छोड़कर अब आपकी राह पर ही चलना चाहता हूँ। आप संयम अंगीकार करेंगे तो मैं भी आपका अनुचर बनूंगा। मैं धर्म की साधना करके अपने पिछले पापों से छुटकारा पाने का यत्न करूंगा।

भाइयो! लगे महात्मा का रगड़ा तो मिट जावे सारा झगड़ा! प्रभव ने सब झगड़े छोड़कर आज नया मार्ग स्वीकार किया है। वह प्रातःकाल होते ही साधु बनने को तैयार हुआ है। तुम्हारा प्रातःकाल कब होगा? तुम्हारे लिए सुनहरा सूर्य कब उगेगा?

जब कभी उगेगा तब आनन्द ही आनन्द छा जायगा!

स्थान—जोधपुर
ता० २८-८-४८



लोकोत्तर विजय



स्तुतिः—

कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह-
वेगावतारतरणातुरयोधभीमे ।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षा-
स्त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं कि:—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? भगवन् ! आपके गुण कहाँ तक गाये जाएँ ?

कोई पुरुष संग्राम में गया हुआ है। संग्राम बड़ा भीषण है। इतना भीषण कि युद्ध भूमि में भालों की नोंक द्वारा छेदे-भेदे

गये हाथियों के रक्त की धारा का प्रवाह, नदी के जल को तरह वेग के साथ बह रहा है और उसे पार करना कठिन है ! पर हे भगवन् ! जो लोग आपके चरण-कमलों का आश्रय लेते हैं. ऐसे घोर-अति घोर संकट के समय में जो आपको स्मरण करते हैं, वे दुर्जय शत्रुओं पर सरलता से ही विजय प्राप्त कर लेते हैं।

भगवान् के नाम स्मरण की यह महिमा है। भगवान के नाम स्मरण में दो प्रकार की महिमा है-लोकोत्तर महिमा और लौकिक महिमा। यहाँ लौकिक महिमा का उल्लेख किया गया है। कहा जा सकता है कि लोकोत्तर महिमा की उपेक्षा करके आचार्य ने लौकिक महिमा का उल्लेख क्यों किया है ?

इस कथन का उत्तर यह है कि भगवत्स्मरण की दोनों प्रकार की महिमाओं में से लोकोत्तर महिमा ही प्रधान है। लोकोत्तर विजय की प्राप्ति होना लोकोत्तर महिमा है और लौकिक विजय प्राप्त होना लौकिक महिमा है। जिसे लोकोत्तर विजय प्राप्त हो जाती है, उसे लौकिक विजय प्राप्त करने की आवश्यकता ही नहीं रहती। इस प्रकार लोकोत्तर विजय में लौकिक विजय का समावेश हो जाता है। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि लौकिक विजय प्राप्त करने वाला लोकोत्तर विजय प्राप्त कर ही ले। इस कारण लोकोत्तर विजय प्रधान है।

लोकोत्तर विजय और लौकिक विजय क्या चीज है ? दोनों में क्या अन्तर है ? यह संक्षेप में कहता हूँ। कल के व्याख्यान में बतलाया गया था कि आत्मा के अन्दर एक प्रकार का संग्राम निरन्तर अविराम गति से चल रहा है। वह अनादि काल से

चालू है और आज भी सब संसारी आत्माओं के भीतर चल रहा है। यह संग्राम आत्मा के स्वभाव और विभाव में हो रहा है। राग-द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्षा, अज्ञान, अदर्शन आदि दुर्गुण आत्मा के शत्रु हैं। यह शत्रु आत्मा के किले में घुसे हुए हैं। इन्होंने आत्मा रूपी राजा का अपना निर्मल स्वरूप रूपी राज्य छीन लिया है और उसे सिद्धशिला रूपी सिंहासन पर नहीं बैठने देते। इस प्रकार भीतर घुसकर युद्ध करने पर भी और अपने स्वरूप से गिर जाने पर भी आत्मा रूपी राजा ऐसा पराक्रमी और शूरवीर है कि वह इन शत्रुओं के सामने आत्म-समर्पण नहीं करता है। वह अपनी शक्ति के अनुसार शत्रुओं का मुकाबिला करने के लिए डटा हुआ है। संसार के प्रत्येक आत्मा के साथ यह लड़ाई छिड़ी हुई है।

जिस आत्मा को धर्म रूपी दिव्य शस्त्र की प्राप्ति हो जाती है और जिसे सद्गुरु रूपी पथ-प्रदर्शक मंत्री मिल जाते हैं, वह आत्मा इन आन्तरिक शत्रुओं के बल को धीरे-धीरे क्षीण-क्षीणतर करता हुआ अन्त में समूल नष्ट कर देता है। इन शत्रुओं का समूल नाश हो जाने पर आत्मा अपने सद्गुण रूपी साम्राज्य का निष्कंटक स्वामी बन जाता है। वह तीन लोक का ईश और पूज्य बन जाता है। सिद्धशिला रूपी सर्वोच्च सिंहासन पर प्रतिष्ठित हो जाता है।

इस प्रकार की विजय आत्मा की अन्तिम विजय होती है। कारण यह है कि एक बार पूर्ण रूप से नष्ट हुए विकार-वैरी फिर कभी सिर ऊँचा नहीं कर सकते। अतएव फिर कभी उन्हें

जीतने की आवश्यकता ही नहीं रहती। यह आत्मा रूपी राजा की परम विजय है। इसे लोकोत्तर विजय कहते हैं।

लौकिक विजय अनेक प्रकार की है। शरीर पर रोग रूपी शत्रु का आक्रमण हुआ। आपने उचित आहार-विहार करके, लंघन करके, पथ्य का सेवन करके अथवा औषध का प्रयोग करके रोग को हटा दिया, यह एक तरह की लौकिक विजय कहलाई।

मान लीजिये, आप व्यापार करते हैं। अचानक व्यापार में घाटा हो गया और दरिद्रता ने आपको दबोच लिया। इसके बाद किसी व्यापारी की सहायता लेकर आपने फिर व्यापार चालू किया। बहुत सावधानी से आप व्यापार करने लगे। धीरे-धीरे आपकी दरिद्रता दूर हो गई। यह भी एक प्रकार की लौकिक विजय कहलाई।

कोई विद्यार्थी विद्याध्ययन करता है। उसके सामने अनेक कठिनाइयाँ हैं। उन तमाम कठिनाइयों को जीत कर वह अन्तिम परीक्षा उत्तीर्ण कर लेता है। विद्यार्थी की यह विजय भी लौकिक विजय है।

एक मनुष्य राजा है। वह न्याय-नीति से प्रजा का पालन कर रहा है। किन्तु किसी लोभी राजा ने राज्य लोलुपता से प्रेरित होकर उस पर हमला कर दिया। वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति और वीरता के साथ हमलावर के साथ लड़ा और उसे भगा दिया। राजा की यह विजय भी लौकिक विजय है।

लौकिक विजय का स्वरूप बतलाने के लिए जो दृष्टान्त दिये गये हैं उनसे दो बातें साफ मालूम होती हैं। प्रथम बात यह

है कि लौकिक विजय का संबंध सिर्फ इह जीवन के साथ है, आगामी जीवन या परलोक के साथ उसका कोई संबंध नहीं है। रोगों पर विजय प्राप्त कर लेने से मनुष्य जन्म-जन्मान्तर के लिए नीरोग नहीं बन सकता। दरिद्रता को दूर कर देने से सदा के लिए अगले जन्मों के लिए—कोई सम्पत्तिशाली नहीं बन सकता। विद्यार्थी ने परीक्षा उत्तीर्ण करली है, मगर परलोक में उसकी उपाधि साथ नहीं जा सकती। इसी प्रकार जिस राजा ने अपने शत्रु को मार कर भगा दिया है, वह विजयी तो हो गया है परन्तु परलोक में भी वह विजयी ही बना रहेगा, यह नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार कोई भी लौकिक विजय क्यों न हो, वह इसी जन्म तक सीमित रहती है—अगले जन्म में उसका तनिक भी प्रभाव नहीं रहता।

दूसरी बात यह है कि लौकिक विजय जीवन पर्यन्त कायम ही रहेगी, यह नहीं कहा जा सकता। रोगों पर विजय प्राप्त करके मनुष्य नीरोग हो जाता है, मगर थोड़े दिन बीतने पर फिर रोग का हमला हो जाता है। दोबारा दरिद्रता आ जाती है। राजा ने आक्रमणकारी राजा को भगाकर विजय प्राप्त करली है, परन्तु यह तो नहीं कह सकते कि अब वही या दूसरा कोई राजा उस पर आक्रमण नहीं करेगा ?

इस प्रकार लौकिक विजय प्रथम तो परलोक में काम नहीं आती, दूसरे इहलोक में भी स्थायी नहीं रहती। यह तो दोष लौकिक विजय के महत्त्व को नगण्य-सा बना देते हैं। भला उस विजय का मूल्य ही क्या है, जिसके पीछे पराजय खड़ा-खड़ा ताक रहा है ? किसी नौका में छेद हो गया हो और पानी भरता

जा रहा हो। आप उस पानी को उलीचते जाएँगे और पानी का आना जारी रहेगा तो आपके उलीचने का महत्त्व क्या है? इसी प्रकार आप विजय प्राप्त करते हैं, मगर उसके साथ ही साथ अगर पराजय भी आ रही है तो ऐसी विजय का कोई मूल्य नहीं है।

इसके अतिरिक्त एक बात और है। पहले कहा जा चुका है कि लौकिक विजय अनेक प्रकार की है। उस अनेक प्रकार की लौकिक विजय में से एक मनुष्य सभी प्रकार की विजय नहीं प्राप्त कर सकता। उदाहरण के लिए—जिसने रोग पर विजय प्राप्त करली है, वह दरिद्रता पर भी विजय पा चुका है, यह नहीं कहा जा सकता। अगर एक राजा ने दूसरे राजा पर युद्ध करके विजय प्राप्त करली तो क्या उसने रोगों पर भी विजय प्राप्त कर ली है? नहीं। मतलब यह है कि मनुष्य एक प्रकार की लौकिक विजय पा लेने पर अनेक प्रकार की पराजयों का शिकार हो जाता है। जब अनेक प्रकार की पराजय उसकी जिंदगी को दुःख-मय बनाये रहती है तो एक प्रकार की विजय का क्या महत्त्व है?

इस विवेचन से आप समझ सकेंगे कि लौकिक विजय और लोकोत्तर-विजय में क्या अन्तर है? लौकिक विजय पूर्ण विजय नहीं है, लोकोत्तर विजय पूर्ण विजय है। लौकिक विजय परलोक मे साथ नहीं देती और इस लोक में भी अन्त तक साथ नहीं देती, जब कि लोकोत्तर विजय नित्य और शाश्वत है। लौकिक विजय पराजय के रूप में परिणत हो सकती है किन्तु लोकोत्तर विजय प्राप्त कर लेने के पश्चात् पराजय का कभी सामना ही नहीं करना पड़ता। लोकोत्तर विजेता अनन्त काल के लिए, सदा के लिए विजयी बनता है।

जब लौकिक विजय क्षणिक, महत्त्वहीन, नगण्य और निस्सार है और लौकोत्तर विजय शाश्वत, एकान्त और आत्यन्तिक है, तो फिर आचार्य महाराज ने भगवान् के नाम की महिमा बतलाते हुए लौकिक विजय का उल्लेख क्यों किया है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि आचार्य महाराज की रची हुई पूरी स्तुति अगर आप पढ़ेंगे तो विदित हो जायगा कि उन्होंने लौकोत्तर विजय का भी उल्लेख किया है और लौकिक विजय का भी उल्लेख किया है। लोकोत्तर विजय का उल्लेख आगे के पद्यों में आएगा, जो यथा समय आप सुन सकेंगे। अतएव यह प्रश्न ही सही नहीं है कि लोकोत्तर विजय का उल्लेख क्यों नहीं किया गया !

हाँ, यह सवाल जरूर खड़ा किया जा सकता है कि अगर लौकिक विजय महत्त्वहीन है तो फिर उसका उल्लेख करने की आवश्यकता ही क्या थी ? जिन भगवान् के नामस्मरण से महिमामयी लोकोत्तर विजय मिल गई तो कौन बड़ी बात हो गई ?

इस प्रश्न के उत्तर में एक बड़ा रहस्य है। बहुत-से लोग आत्मकल्याण के लिए वीतराग भगवान् का भजन करते है, परन्तु लौकिक कामनाओं की पूर्ति करने के लिए भैरों-भवानी, तेजाजी और पाबूजी आदि के सामने अपना मस्तक रगड़ते हैं। उन्होंने 'व्यवहार खाते' की एक पूंछ पकड़ रक्खी है। उनका कहना है कि व्यवहार-खाते में भैरों-भवानी की मान्यता और पूजा की जाती है। ऐसे लोगों की आँखें खोलने के लिए आचार्य महाराज ने यहाँ यह बतलाया है कि भगवान् ऋषभदेवजी का नामस्मरण करने से ही लोकोत्तर प्रयोजन के साथ लौकिक प्रयोजन भी सिद्ध हो जाते हैं। जब

भगवान् के स्मरण से ही सभी प्रयोजनों की सिद्धि हो जाती है तो फिर उसके लिए मिथ्यादृष्टि देवों के आगे मत्था टेकने की क्या आवश्यकता है ? जिसकी सेवा करने से आपको दो लाख रुपया मिल सकते है, उसकी सेवा से क्या दो पैसे नहीं मिलेंगे ? क्या दो पैसे के लिए किसी दूसरे से याचना करने वाला बुद्धिमान् कहा जायगा ? नहीं। भगवान् की भक्ति से लोकोत्तर-विजय मिलती है और लोकोत्तर-विजय में ही सब प्रकार की लौकिक विजय का समावेश हो जाता है। फिर क्या शेष रह गया जिसको पाने के लिए दूसरों के सामने हाथ फैलाया जाय ? क्या दो लाख रुपयों में दो पैसों का समावेश नहीं हो जाता है ?

जिस प्रकार घी पाने के लिए दूध जमाया जाता है, मगर घी के साथ छाछ अनायास-आनुसंगिक रूप में प्राप्त हो ही जाती है। इसी प्रकार लोकोत्तर प्रयोजन की सिद्धि के लिए भगवान् का नाम स्मरण किया जाता है, किन्तु आनुषंगिक रूप में लौकिक प्रयोजन भी उससे सिद्ध हो जाते हैं। जैसे सिर्फ छाछ के लिए दूध जमाने वाला आदमी विवेकवान् नहीं कहा जा सकता, उसी प्रकार सिर्फ लौकिक प्रयोजन के लिए भगवान् का नामस्मरण करने वाला बुद्धिमान् नहीं कहा जा सकता। मक्खन या घी को फैंक कर छाछ ग्रहण करने वाला मूर्ख है, उसी प्रकार लोकोत्तर प्रयोजन को छोड़ कर सिर्फ लौकिक प्रयोजन को ग्रहण करने वाला भी मूर्ख है।

मतलब यह है कि भगवान् का नाम जपने से लौकिक प्रयोजन भी पूरे हो जाते हैं। यद्यपि लौकिक प्रयोजन के लिए ही भगवान् का नाम जपना योग्य नहीं है, क्योंकि ऐसा करने से असली

और महत्त्वपूर्ण लाभ से वंचित रह जाना पड़ता है, मगर लौकिक लाभ प्राप्त करने के लिए अन्य देवताओं की शरण में जाने की भी जरूरत नहीं है।

राग-द्वेष आदि दोषों से दूषित देवों की भक्ति और आराधना करना मिथ्यात्व है। यह मिथ्यात्व जिसके मौजूद है वह वीतराग प्रभु के प्रति एकनिष्ठा प्रीति नहीं रख सकता। जैसे पतिव्रता स्त्री एक ही पुरुष को अपना पति मानती है, उसी प्रकार धर्मात्मा पुरुष एक मात्र वीतराग देव को ही अपना आराध्य और पूज्य समझता है। इसी रहस्य को समझाने के लिए स्तुतिकार ने इस पद्य में लौकिक प्रयोजन-सिद्धि का उल्लेख किया है।

भाइयो! भगवान् की महिमा अमित है। अहिंसा, सत्य और अस्तेय के अवतार, ब्रह्मचारी, निर्लोभ और निःस्वार्थ तथा संसार से कोई वास्ता न रखने वाले महात्माओं के चरण भी जहाँ पड़ जाते हैं, वहाँ की धूल भी पवित्र हो जाती है और औषध का काम देती है, तब फिर भगवान् के चरण-कमलों की धूलि का तो कहना ही क्या है? भगवान् के नाम में तो महिमा है ही, उनके चरण-कमलों की धूल भी महिमा से मंडित हो जाती है।

भाइयो ! महापुरुषों की हवा का स्पर्श हो जाय तो कोढ़ियों का कोढ़ चला जाता है। जहाँ उनके चरण पड़ते हैं उस घर के सब विघ्न दूर हो जाते हैं। पर यह तो दुनियां की बात है। असल में तो भगवान् के वचनामृत का पान करने वाला अपने समस्त पापों पर विजय पा लेता है।

जिससे आत्मा का पतन होता है वह पाप कहलाता है। किसी प्राणी को तकलीफ देना पाप है, क्योंकि सभी प्राणी सुख चाहते है; तकलीफ पाना कोई नहीं चाहता। किसी की रोजी को लात मारना भी पाप है, किसी की नौकरी को छुड़ा देना भी पाप है। इससे वह और उसके बालबच्चे तकलीफ पाते हैं। यह सब प्रत्यक्ष पाप हैं। कुछ पाप परोक्ष भी होते हैं, जैसे—मछली पकड़ने के लिए जाल गूंथना, शिकारियों के लिए धनुप-बाण बनाना, आदि। चाहे प्रत्यक्ष पाप हो या परोक्ष पाप हो, उससे आत्मा का पतन अवश्य होता है। यहाँ तक कि हृदय में बुरे विचार लाना भी पाप है और उससे भी पतन होता है। यों तो संसार में जितने भी धर्म विरुद्ध कार्य है, सभी पाप में गिने जाते हैं और उन सब की संख्या निश्चित करना कठिन है, किन्तु शास्त्र कारों ने मध्यम रूप से पापों की संख्या अठारह बतलाई है। इन अठारह पापों में ही सब का समावेश हो जाता है। वह अठारह पाप इस प्रकार हैं —

(१) प्राणातिपात (२) मृषावाद-असत्य भाषण (३) अदत्तादान-चोरी (४) मैथुन (५) परिग्रह (६) क्रोध (७) मान (८) माया (९) लोभ (१०) राग (११) द्वेष (१२) कलह (१३) अभ्याख्यान (१४) पैशुन्य (१५) परपरिवाद (१६) रति-अरति (१७) मायामृषावाद (१८) मिथ्यादर्शन।

इनमें सबसे बड़ा पाप अठारहवाँ है और सबसे महान् पाप पहला है। मिथ्यादर्शन का पाप सब पापों की जड़ है। जब तक वह न छूट जाय तब तक कोई भी पाप नहीं छूट सकता। यह पाप नरक और निगोद में ले जाने वाला है। जो जीव निगोद

अवस्था में हैं उन्हें एक समय में १७॥ बार जन्म और मरण करना पड़ता है। एक मुहूर्त में ६५५३६ बार जन्म लेना और मरना पड़ता है।

जब जीव में कारण मिलने पर सद्बुद्धि जागृत होती है, तब मिथ्यात्व का पाप हटता है और सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। सम्यग्दर्शन प्राप्त होने पर जब अप्रत्याख्यानावरण कषाय हटता है तो श्रावक के योग्य चारित्र का पालन करने की शक्ति आती है। उसके बाद जब प्रत्याख्यानावरण नामक कषाय भी हट जाता है साधुपना पालन करने की शक्ति आती है। मनुष्य जब दीक्षा अंगीकार कर लेता है तो अपना भी कल्याण करता है। और अन्य जीवों का भी कल्याण करता है। वह कैसा होता है:—

राजा पदवी को छोड़ हुए महाराजा,
महाराज सारे आतम का काजा जी।
वे तज कंचन के महल,
जाय वन बीच विराजा जी॥

धन्य हैं ऐसे महापुरुष जो ऋद्धि-सम्पदा, भोगोपभोग, कुटुम्ब-परिवार, मोटरों आदि की सवारी, उत्तम भोजन और वस्त्र त्याग कर जंगल की राह लेते हैं और संसार को झूठा समझते हैं। जो संसार की ओर पीठ करके मोक्ष के सामने मुँह करते हैं। जिसे बम्बई जाना होता है वह घर की तरफ पीठ करके स्टेशन की तरफ जल्दी-जल्दी जाता है। जब टिकिट लेकर गाड़ी में बैठ जाता है तो चित्त को शान्ति मिलती है। इसी प्रकार जब साधुपन लेने का विचार होता है तो दीक्षा लेने की

बड़ी उत्कंठा होती है। जब जीवनपर्यन्त की सामायिक ले ली जाती है, तभी निश्चय होता है कि अब मैं मोक्ष के रास्ते जा रहा हूँ। तब वह संसार की ओर से विमुख हो जाता है।

भाइयो ! साधु-महात्मा कब से हैं और कहाँ से चले आ रहे हैं ? उत्तर यह है कि जब से नवकारमंत्र है तभी से साधु भी चले आ रहे हैं और जब से साधु चले आ रहे है तभी से नवकारमन्त्र चला आ रहा है। नवकारमंत्र अनादि है तो साधु भी अनादि हैं। अनादिकाल से साधु-सन्तों की परम्परा चल रही है। कोई मोक्ष में जा रहे हैं और कोई स्वर्ग में जा रहे हैं।

कालचक्र अनादिकालीन है। उसके दो विभाग हैं—उत्सर्पिणी-काल और अवसर्पिणीकाल। उत्सर्पिणी के बाद अवसर्पिणी और अवसर्पिणी के बाद उत्सर्पिणी काल आता है। आजकल अवसर्पिणी काल है। इस अवसर्पिणी काल के छह आरों मे से पहले और दूसरे आरे में इस क्षेत्र में साधुओं की परम्परा नहीं थी। तीसरे आरे के अन्तिम समय में सर्वप्रथम ऋषभदेव भगवान् साधु बने। उन्होने जब केवलज्ञान प्राप्त किया तो चारों तीर्थों की स्थापना की। जैसे सेठ की गैर मौजूदगी में मुनीम सेठ का काम करता है, उसी प्रकार भगवान् की गैर मौजूदगी में साधु उनका काम कर रहे हैं। वे स्वयं भगवान् की आज्ञा की आराधना करते हैं और दूसरों को आराधना करने का उपदेश देते हैं। वे अपना भी कल्याण करते हैं और दूसरों का भी कल्याण करते हैं।

हाँ, तो भगवान् ऋषभदेव के बाद चोथे आरे मे तेईस तीर्थङ्कर हुए। उनमें अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर स्वामी

थे। भगवान् जब निर्वाण को प्राप्त हुए तो उनके पट्टधर सुधर्मा स्वामी हुए। सुधर्मा स्वामी के बाद जम्बूस्वामी, प्रभव स्वामी, भद्रबाहु स्वामी और तत्पश्चात स्थूलिभद्र स्वामी हुए। इस प्रकार होते होते ९८० वर्ष बाद श्रीदेवर्धिगणि क्षमाश्रमण स्वामी हुए। उन्होंने शास्त्र लिपिबद्ध किये और बीस वर्ष के बाद वे भी इस संसार को त्याग कर स्वर्गवासी हो गये। उनके बाद उनके शिष्यगण विचरते रहे।

एक बार बारह वर्षीय अकाल पड़ा। उस भयानक अकाल के समय में साधु क्रियाहीन हो गये। तभी से साधुओं के आचार में शिथिलता का प्रवेश हुआ। बीच-बीच में जिन्होंने ऊँची क्रिया की, उन आचार्यों के नाम पर अलग-अलग गच्छ स्थापित हो गये।

यों करते-करते वि० सं० १५०० में लोंकाशाह महता हुए। उन्होंने भगवान् के सच्चे मार्ग को पहचाना और उसका उपदेश दिया जिससे ४५ भद्रपरिणामी पुरुषों को वैराग्य आया। इन्होंने उन साधुओं को, जो करांची की तरफ थे और जिनका आचार शुद्ध था, संदेश भेजा कि अगर आप ग्यारह साधु अहमदाबाद की तरफ पधारें तो अच्छा होगा। वे अहमदाबाद की तरफ रवाना हुए किन्तु आठ-नौ मुनि मार्ग में ही स्वर्गवासी हो गये। शेष जो रहे, अहमदाबाद आये। वहाँ ४५ मनुष्यों ने दीक्षा ली। लोंकाशाहजी ने उन्हें शास्त्रों का अभ्यास कराया। फिर दो-दो के संघाड़े बना कर उन्हें भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भेज दिया। कोई मालवा की ओर तो कोई दक्षिण की ओर, कोई पंजाब की तरफ,

तो कोई सी० पी० यू० पी० की तरफ चले। उन्होंने भगवान् के धर्म को फैलाया।

बात सच्ची है कि दुनिया झुकने को तैयार है, झुकाने वाला चाहिए। प्रत्येक मनुष्य स्वभाव से सत्य का प्रेमी होता है। सत्य सभी को प्रिय है और रुचिकर है। झूठ किसी को प्रिय नहीं होता। यह बात दूसरी है कि असत्य और सत्य के रहस्य का पूरा पता कोई न लगा सके, यह भी संभव है कि कोई असत्य को ही सत्य समझ कर उसे सत्य के रूप में स्वीकार कर ले और सत्य को असत्य मान कर सत्य का त्याग करदे, किन्तु यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि ऐसे लोगों में भी सत्य के प्रति अखण्ड आस्था होती है। वे भी सत्य के ही अनुरागी होते हैं। कारण यही है कि प्राणी मात्र को सत्य स्वभाव से ही प्रिय है।

पैंतालीस साधुओं ने बाईस संघाड़ों के रूप में विचरना प्रारंभ किया। वे आदर्श आचार-विचार से सम्पन्न त्यागी, वैरागी और आत्मनिष्ठ अनगार थे। जहाँ कहीं पहुंचे, उनके गुणों की प्रशंसा हुई। लोग श्रद्धा के साथ उनके प्रति आकर्षित हुए। तभी से 'बाईस सम्प्रदाय' नाम प्रचलित हुआ। इस सम्प्रदाय में समय-समय पर बड़े-बड़े त्यागी-वैरागी महात्मा होते आये हैं:—

बाईस नाम धराने से ही सही धर्म नहीं दीप सकता; बल्कि शुद्ध साधुपना पालने से ही धर्म दीप सकता है। जो शुद्ध साधुत्व का पालन करेगा वह अपना भी कल्याण करेगा और दूसरों का भी कल्याण करेगा। बाईस सम्प्रदाय में समय-समय पर महा-महिमा से सम्पन्न जो मुनि हो गये हैं, उन सब का जिक्र करना बहुत कठिन है। उनमें से कितनों ही को मैंने स्वयं देखा है और

कितनों ही के विषय में श्रावकों से सुना है। याद करते हैं कि उनकी साधुता कितनी उच्च कोटि की थी !

आते आते हैं महा उपकारी जैन पूज्यवर याद ॥टेर॥
पूज्य मुनिश्री हुक्मचन्दजी, रहे व्याख्यान सुनाय।
बरसे थे रुपैये नभ से, नाथद्वारा मांय ॥ १ ॥

भाइयो ! पूज्य हुक्मीचन्द्रजी महाराज बड़े प्रतापी महात्मा हो गये हैं। उन्हीं का यह सम्प्रदाय है। उन महापुरुष ने २१ वर्षों तक बेले-बेले का पारणा किया। वे बारह महीने तक एक ही चद्दर रखते थे। भोजन में सिर्फ तेरह द्रव्य उन्होंने रक्खे थे और उनमें भी मीठी चीजों का, कढाई में तली हुई चीजों का तथा चूरमा वगैरह का त्याग था। केवल अग्नि पर जैसे पापड़, बाटी आदि सिकी हुई चीजें भी काम में नहीं लेते थे। बड़े ही तपस्वी और भाग्यवान् थे। पूज्यश्री हुक्मीचन्द्रजी महाराज विचरते-विचरते एक बार नाथद्वारा पधारे। प्रातःकाल व्याख्यान दिया तो एक चमत्कार हुआ। आकाश से रुपयों की वर्षा हुई। जिसने वह रुपया सामायिक के बैठके के नीचे सरका दिया, उसका तो रह गया, बाकी के सब रुपये गायब हो गये! उनमें से एक रुपया एक भाई के पास है और वह हमने देखा है।

भाइयो ! जो सच्चे महापुरुष होते हैं, देवता भी उनकी सेवा करते हैं। देवगण भी उनके प्रताप और प्रभाव को फैलाने में सहायक होते हैं।

पूज्य हुक्मीचन्द्रजी महाराज के संबंध में कई घटनाएँ और सुनी हैं। रामपुरा (मालवा) में बड़े जोरों का हैजा चल रहा था।

किन्तु ज्यों ही आपने रामपुरा में पाँव रक्खा, हैजा बंद हो गया।

एक बाई दीक्षा लेना चाहती थी। उसके कुटुम्बीजन दीक्षा नहीं लेने देते थे। उन्होंने उस बाई के हाथों-पैरों में जंजीरें बाँध रक्खी थीं। जब आप उस बाई के घर भिक्षा के लिए पधारे तो वह विषाद करती हुई बोली—पूज्यश्री ! मैं कैसे बहराऊँ ? पूज्यश्री ने कहा—उठ कर बहरा दो। बाई ज्यों ही खड़ी हुई, जंजीरें तड़ातड़ टूट गईं। पूज्यश्री के प्रताप से कई कोढ़ियों का कोढ़ चला गया। और फिर:—

पूज्य धर्मदासजी ने शिष्य अपना कायर जान।
धार शहर में अनशन कीना, रखी धर्म की शान ॥२॥

एक महात्मा पूज्य धर्मदासजी महाराज हुए हैं। उनके एक शिष्य ने धार में अनशन किया। शिष्य बीमार था और उसकी बीमारी असाध्य मालूम होती थी। उसने संथारा ले लिया। संथारा करने के बाद वह अच्छा हो गया तो उसकी भावना बदल गई। जब गुरुजी को मालूम हुआ तो उन्होने अपनी शान रखने के लिये वहां से विहार कर दिया। रास्ते मे किसी ने चूरमा-बाटी बनाई थी। आपने उसको आहार किया और जीवन भर के लिए पानी पीने का त्याग कर दिया और संथारा ले लिया। जहाँ उनका शिष्य था उसी जगह समाधि लगा दी और आप लेट गये। इसके बाद आपका शरीर छूट गया। ओह! धर्म की शान रखने के लिए उन्होंने अपने शरीर का उत्सर्ग कर दिया ! क्या यह त्याग कोई साधारण है ?

नेतसिंह मुनि किया संथारा, सेवा सुर आ करते।
उनके नाम का महुआ सैलाने, आज तलक जन कहते ॥३॥

एक नेतसिंहजी महाराज हो गये हैं। वे भी महाभाग्यवान् और प्रभावशाली महापुरुष थे। वे बेले-बेले का पारणा करते थे और एक ही चादर ओढ़ते थे, चाहे कैसी ही कड़ाके की सर्दी क्यों न पड़ती हो! उन्होंने यह भी नियम ले रक्खा था कि कोई गाँव कितना ही छोटा क्यों न हो, चाहे दो घरों का ही हो, एक रात अवश्य वहाँ ठहरना। एक बार कंजेड़े की तरफ एक गाँव में पहुंचे। गाँव में उपयुक्त स्थान न मिलने के कारण वे एक पेड़ के नीचे ठहरे। रात का समय था और सर्दी का मौसिम था। उस दिन लक्कड़दाह ठंड पड़ी। मुनिराज सिर्फ एक चादर ओढ़े हुए थे। वे ध्यान में बैठे थे कि एकदम लुढ़क गये और बेहोश हो गये। जब सबेरे सूर्य निकला और शरीर में गर्मी पहुंची तो सचेत होकर उठे। नित्यकर्म करके आगे विहार किया। विहार करते-करते जावद पहुंचे। वहाँ के श्रावकों की धर्म में बहुत लगन थी। उन्होंने श्रावकों को सूचना दे दी-रात्रि के समय कोई श्रावक यहाँ न ठहरे और न कोई सुबह जल्दी आवे। मगर पिछली रात में कई श्रावक जल्दी आ पहुंचे तो क्या देखते हैं कि मुनिराज जिस मकान में ठहरे हैं, उसके द्वार पर शेर बैठा है! शेर को देखते ही वे उलटे पैरों भागे!

मुनिराज जावद से विहार करके विचरते-विचरते रतलाम पधारे। उन्होंने जावद की तरह यहाँ भी श्रावकों से कह दिया कि रात के समय यहाँ कोई न रहे। सब श्रावक चले गये तो

देखा कि एक आदमी सजधज कर बैठा हुआ है। दूसरे दिन पूछा—रात को कौन आया था ? सब लोगों ने कहा—मैं नहीं आया, मैं नहीं आया। आज आवे तो आप उसी समय उससे पूछ लीजिएगा कि तू कौन है !

दूसरी रात फिर वही आदमी दिखलाई दिया। मुनिराज ने उससे पूछा—तू कौन है ? उत्तर मिला—मैं देवता हूँ।

मुनिराज ने फिर कहा—तुम देवता हो तो महाविदेह क्षेत्र में जाकर श्रीसीमन्धर स्वामी से पूछ आओ कि मेरी उम्र कितनी शेष है ?

देवता फौरन जाकर आ गया। उसने कहा—महाराज, सीमन्धर स्वामी ने फरमाया है कि आपकी उम्र समाप्त होने वाली है। उसकी पहचान यह है कि जब आप बेले का पारणा करें और तुरन्त वमन हो जाय तो समझ लीजिएगा कि उम्र समाप्त हो गई है।

दूसरे दिन पारणा करने पर यही हाल हुआ। मुनिराज ने अपनी आयु का अन्त सन्निकट समझ कर विशेष आराधना कर ली।

ऐसे महात्माओं को जीने की खुशी और मरने का शोक नहीं होता। वे देह में रहते हुए भी देह से अतीत होते हैं। जीवन और मरण में समभाव धारण करते हुए विचरते हैं।

बड़ी मुश्किल जैन फकीरी,
कही जिंदा ही मर जावना ॥टेर॥

जब से वेष मुनि का धर गये,
उनसे जग, जग से वो मर गये।
सब से पंथ निराला कर गये,
क्या गरज रही संसार से।
जब लिया फकीरी बाना ॥१॥

साधु-महात्मा सदैव कफन बगल में दबाये घूमते हैं। उन्हें मौत का डर नहीं लगता। मौत से डरते हैं चोर, व्यभिचारी, हिंसक, पापी! जिन्होंने अपना जीवन धर्म की साधना में ही लगा दिया है, वे मृत्यु से क्यों डरेंगे?

मृत्यु क्या है, इस संबंध में विस्तार पूर्वक चर्चा फिर कभी की जायगी। यहाँ केवल इतना ही कहना है कि जिन्होंने अपनी जिंदगी में धर्म की आराधना नहीं की, जो धर्म के प्रति उपेक्षा या घृणा का भाव रक्खे रहे हैं, जो निरन्तर पापों में फँसे रहे हैं, उन्हें मृत्यु बड़ी विकराल दिखाई देती है। वे परलोक की यातनाओं का स्मरण कर-करके दुखी होते हैं। उनमें एक प्रकार की कातरता आ जाती है। वे हाय-हाय करते हुए मरते हैं। मरते समय वे कहते हैं:—

कुछ नहीं किया मनुष्य भव पाकर, आता है अंदेशा बड़ा-बड़ा।
अब उपाय क्या करें कि, सर के ऊपर आकर काल खड़ा॥

ऐसा आदमी पहले सोचता है—खाओ, पीओ और मौज करो। खूब कमाना, खाना और मर जाना ही तो जीवन का उद्दे-

श्य है ! पर जब मृत्यु अपना भयानक मुँह फाड़े सामने आती है तो उनका रोम-रोम काँपने लगता है !

मुनिराज ने दिन निकलते ही विहार कर दिया । एक गांव में पहुँच कर उन्होंने आहार किया । जब उल्टी हो गई तो वे कहने लगे—हे काया ! तुझे मैं रोज खाने को नहीं देता हूँ । आज दिया तो उसे भी तूने निकाल दिया ! अच्छा, आज से मैंने तुझे खाना पीना देना सब बन्द किया ! अब इस जीवन में तुझे न आहार दिया जायगा, न पानी दिया जायगा ।

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके आप वहाँ से चल दिये । चलते चलते जंगल में पहुंचे । वहाँ भीलों से पूछा—इधर कहीं शेर की गुफा है ? हो तो बतला दो ।

भील ने कहा—महाराज ! शेर की गुफा में क्यों जाना चाहते हो ?

दूसरा भील बोला—भाई, इनकी बनियों से लड़ाई हो गई होगी । इसलिए ये मरने के लिए जाना चाहते हैं !

आखिर मुनिराज स्वयं गुफा खोजते-खोजते गुफा के पास जा पहुंचे । वे गुफा के द्वार पर बैठ गये । उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली—आज रात को यहाँ से नहीं उठूँगा । शेर आया मगर उसने मुनिराज को कुछ भी कष्ट नहीं पहुँचाया ।

दिन निकला । मुनिराज आगे बढ़े । उस संध्या के समय वे एक वृक्ष के नीचे ठहरे । उस वृक्ष के नीचे से बैल गाड़ी का रास्ता था । मुनिराज ने प्रतिज्ञा की—यहाँ से रात भर मैं नहीं उठूँगा ऐसी प्रतिज्ञा करके वे रास्ते में लेट रहे । रात को उस

रास्ते में सांठे की गाड़ियां निकली और गाड़ी के पहिये इनसे अड़े तो गाड़ीवान की नींद खुली। वह नीचे उतर कर देखता है कि रास्ते में कोई सोया पड़ा है। गाड़ीवान ने समझा—कोई भूत है! फिर साहस करके पूछा—अरे तू कौन है? मुनिराज ने कहा—मैं भूत नहीं हूँ। मेरे कुछ नहीं अटकता। आखिर गाड़ीवान ने उन्हें एक किनारे पटक दिया। मगर उन्होंने अब प्रतिज्ञा करली कि उस जगह को छोड़ दूसरी जगह पैर नहीं रक्खूंगा।

इस घटना का समाचार रतलाम के एक श्रावक को मिला। उसने श्रीसंघ को इकट्ठा किया। श्रीसंघ ने कुछ सिपाहियों को मुनिराज की रक्षा के लिए आगे भेजा और पीछे पीछे श्रावक रवाना हुए। सिपाही वहाँ पहुँचे तो क्या देखते हैं कि एक शेर मुनिराज के पैरों की ओर और दूसरा उनके सिर की ओर बैठा है। सिपाही भयभीत और चकित होकर एक पेड़ पर चढ़ गये और तमाशा देखने लगे। उन्होंने देखा जब कोई दूसरा जानवर मुनि के शरीर के पास आने को होता है तो शेर गुर्रा गुर्रा कर उसे भगा देते हैं। बाद में श्रावक लोग पहुँचे तो उन्हें सारा हाल मालूम हुआ। सिपाहियों ने कहा—महात्माजी की रक्षा तो देवता करते हैं। हमारी क्या ताकत है कि इनकी रक्षा करें। जो स्वयं जगत के रक्षक हैं, उनकी कोई क्या रक्षा करे?

अठारह दिनों तक यही स्थिति रही। उनके संथारा का संवत् और मिती आदि मेरे पास लिखी हुई है। उनके संथारे के समय रतनचंदजी महाराज के पिता भी मौजूद थे और वे उनकी अन्त्येष्टि में सम्मिलित हुए थे। मुनिराज के संथारे के समय हजारों आदमियों ने त्याग-प्रत्याख्यान किये। बहुतों ने

मद्य मांस के सेवन का और हिंसा करने का त्याग किया।

जिस महुवे के नीचे मुनिराज नेतसिंहजी का संथारा पूर्ण हुआ था, वह आज भी नेतसिंहजी का महुआ कहलाता है। और:—

रतनचन्द्र महाराज पधारे, शहर जावरा मांय।
प्रसन्न हो सुर मंगलिक सुनता, रात समय में आय॥ ३॥

एक महापुरुष रतनचन्द्रजी महाराज भी हो गये हैं। वे हमारे गुरु हीरालालजी महाराज के गुरु थे। वे भी बड़े भाग्यवान् मुनिराज थे। एक बार वे जावरा पधारे। जिस मकान में वे ठहरे थे, वहाँ इमली का पेड़ था। इमली के पेड़ में एक देवता का निवास था। वह देवता रात्रि के समय मुनिराज के पास आया करता था और मांगलिक सुनकर चला जाता था। जितने दिन रतनचन्द्रजी महाराज जावरा में ठहरे, वह बराबर आता रहा और मांगलिक सुनता रहा।

'देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो।'

जिसका मन निरन्तर धर्म में रत रहता है, देवता भी उसे नमस्कार करते हैं। और भी सुनिये:—

प्रत्यक्ष में भैरू बुलवाया, मेवाड़ी मुनि मान।
उनके पुजारी देखो आज तक, जैन धर्म रहे मान॥४॥

मेवाड़ में एक मानजी महाराज हुए हैं। वे भी बड़े जबर्दस्त महात्मा थे। दिन भर में एक बार भोजन करते, एक बार पानी पीते, एक ही बार पेशाब करते और एक ही बार जंगल

जाते थे। एक बार वे नाथद्वारे के पीछे, खामणोद नामक गाँव के निकटवर्ती एक छोटे से गाँव में पधारे, उस समय जोरों की वर्षा होने लगी। वहीं पास में भैरोंजी का एक स्थान था। मान मुनि वहीं ठहर गये। थोड़ी देर बाद वहाँ का पुजारी आया। उसने मुनि को देखकर कहा—तुम्हारे कपड़े मैले हैं। फिर तुमसे हमें क्या मतलब है? तुम यहाँ आये ही क्यों? खैर, आये सो आये, अब यहाँ से इसी वक्त चले जाओ।

मुनिजी ने शान्तचित्त से कहा—भाई, वर्षा आ गई, इस कारण हम यहाँ ठहर गये हैं। हम सचित्त जल का स्पर्श नहीं करते हैं!

मगर पुजारी अकड़ कर बोला—कुछ भी हो, हम तुम्हें यहाँ नहीं ठहरने देंगे। अभी इसी वक्त बाहर निकल जाओ।

तब मुनिराज बोले—तुमने कभी भैरोंजी को भी देखा है?

पुजारी—देखा क्यों नहीं? रोज देखता हूँ। अब भी देख रहा हूँ। वह बैठे तो हैं सामने ही!

मुनिराज—यह नहीं, असली भैरोंजी को देखा है क्या? देखा हो तो मुझे दिखलाओ। नहीं तो मैं तुम्हें दिखलाता हूँ।

पुजारी—अच्छा, आप ही बुलाइये। मगर मुझे डर लग गया तो?

मुनिराज ने चद्दर बाँध दी। फिर भैरों को बुलाया। पुजारी ने देखा–चादर के अन्दर एक बच्चा पर्दे में आकर खड़ा हो गया है!

थोड़ी देर रह कर भैरोंजी अन्तर्धान हो गये। मुनिराज

भी रवाना हो गये। पुजारी पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वही नहीं, उसका सारा खानदान पक्का जैन बन गया। आज भी वह धर्म-ध्यान करता आ रहा है।

एक सच्ची घटना और सुनो:—

स्वामी रोड़जी ने तपस्या में, ली प्रतिज्ञा धार।
गज वृषभ ने आहार वहराया, उदयपुर मंझार॥

यह मुनि-महात्माओं की महिमा का पाँचवाँ उदाहरण है। एक रोड़जी स्वामी नामक प्रभावक संत हो चुके हैं। उनके सम्बन्ध की यह घटना उदयपुर की है। रोड़जी स्वामी ने तपस्या की और उसमें अभिग्रह किया—हाथी अपनी सूंड से आहार देगा तो लूँगा, नहीं तो जावजीव अन्न-पानी का त्याग है। स्वामीजी ने अपना अभिग्रह एक कागज के पर्चे पर लिख कर रख लिया। लोगों ने अभिग्रह को जानने की बहुत चेष्टा की, मगर स्वामीजी ने कह दिया—जब अभिग्रह फलेगा तो बतला दूंगा। पहले बतला देने से अभिग्रह धारण करने का कोई प्रयोजन ही नहीं रहता।

एक दिन महाराणा साहब का हाथी पागल हो गया। वह शहर में हलवाइयों की दुकान की तरफ आया। लोग मकानों में घुस कर तमाशा देखने लगे। इधर स्वामीजी को पता चला तो वे पातरा लेकर उधर ही चल पड़े। दोनों का समागम हुआ। हाथी ने हलवाई की दुकान से सूंड द्वारा मिठाई उठाई और स्वामीजी ने पात्र सामने कर दिया। अंदर घुसे हलवाई ने चिल्लाकर कहा—महाराज, ले लीजिए, ले लीजिए।

स्वामीजी मिठाई लेकर अपने स्थान पर आ गये और हाथी अपने स्थान पर चला गया।

इस घटना की सत्यता उदयपुर जाकर कभी भी मालूम की जा सकती है। यह बात बहुत पुरानी नहीं है।

इन्हीं स्वामीजी ने कुछ दिनों बाद फिर अभिग्रह लिया सांड आहार देगा तो लूंगा; अन्यथा नहीं। मुनिराज की तपस्या के प्रताप से वह अभिग्रह भी फलित हुआ। एक सांड मदोन्मत्त हो गया। मुनिराज उसके पास गये तो सांड ने गुड़ की दुकाने पर रक्खी हुई गुड़ की भेली में सींग मारा। सींग में गुड़ लग गया। मुनिराज ने अपना पात्र आगे बढ़ा दिया और वह गुड़ सांड ने उनके पात्र में डाल दिया।

जोधपुर आसोप हवेली, पूज्य अमरसिंहजी आय।
शास्त्र श्रवण कर असुर वहां का सरल बना हर्षाय॥

भाइयो! पहले पहल अमरसिंहजी महाराज जब जोधपुर पधारे तो वहाँ उन्हें ठहरने के लिए मकान नहीं मिला। तब वे आसोप के ठाकुर सा० की हवेली में ठहरे। उस हवेली में एक देवता रहता था। जो मनुष्य उस हवेली में रहता था, वह मर जाता था। मगर अमरसिंहजी महाराज को मरने का कोई भय नहीं था। वे उस हवेली में ठहर गये। रात्रि के समय वह देवता महाराज के पास आया। महाराज ने उसे सज्झाय श्रवण कराया। देवता प्रसन्न हो गया। उसने कहा—महात्मन्! आप प्रसन्नता पूर्वक इस हवेली में ठहरिये; सिर्फ इसका अमुक भाग छोड़े रहिये।

हमने तो यहाँ तक सुना है कि वे एक तख्त लाये। तख्त रक्खा था कि अचानक उसका एक पाया टूट गया। रात्रि में महाराज ऊपर गये तो क्या देखते हैं कि देवता लोग बैठे हैं। महाराज ने उनसे कहा—हम साधु हैं। आपसे अधिक क्या कहें ? हम जो तख्त लाये थे, उसका पाया तोड़ दिया गया है ! यह कथन सुनकर देवताओं के मुखिया ने कहा—किसने महात्मा का तख्त तोड़ा ? जाकर जोड़ आओ। मुनिराज नीचे आये तो क्या देखते हैं कि पाया जुड़ा हुआ है।

भाइयो ! तपस्या की महिमा अवर्णनीय है। आप धन दौलत के स्वामी हैं और उसका अभिमान करते हैं। मगर संतों के पास जो दौलत है, उसके आगे देवगण भी नतमस्तक होते हैं। वह दौलत कौन-सी है ?

राम रुपैया एक है खरचै खूटे नाय।
सायब्र सरिखा सेठिया बसै नगर के मांय ॥
बसै नगर के मांय हुँडियां फिरै न पाछी।
क्या पैसे से प्रीति गिरिधर (जिनवर) से सांची
कहे गिरधर कविराय जपो वैराग तपैया।
खरचै खूटै नाय एक है राम रुपैया ॥

इस प्रकार संतों के पास जो सम्पत्ति है, उसके सामने संसार के बड़े से बड़े धनवान् की सम्पत्ति भी तुच्छ है। संतों की सम्पत्ति की एक बड़ी विशेषता तो यह है कि उसे कितना ही खर्च करो वह कभी कम नहीं होती। आधुनिक काल में भी ऐसी

सम्पत्ति के स्वामी संत हुए हैं और आज भी मिल सकते हैं। देखोः—

अहमदाबाद में धर्मसिंह मुनि, रहे दरगा में जाय।
जिन्द प्रसन्न हो मिला आपसे, रजनी के बीच आय ॥

अहमदाबाद में धर्मसिंहजी महाराज गये। उनका सम्प्रदाय दरियापुरी कहलाता है। उनके हाथ से लिखे शास्त्रों के टब्बे आजकल भी मिलते हैं। अहमदाबाद में उन्होने अपने गुरु से कहा—मैं उच्च श्रेणी का संयम पालना चाहता हूँ। गुरु ने समझाया तुम्हारी भावना प्रशस्त है, किन्तु इस समय यतियों का जोर है, अतः तुम्हारो चलना मुश्किल है। किन्तु जब धर्मसिंहजी ने बहुत आग्रह किया तो गुरु बोले—अच्छा, यहां की दरगाह में आज रात को रह जा, उसके बाद मैं तुझे आज्ञा दूंगा।

धर्मसिंहजी दरगाह में गये। फकीरों से कहा—आज मैं रात को यहाँ रहना चाहता हूँ। फकीरों ने कहा—रह तो सकते हो मगर सुबह तक जिंदा रहना कठिन है। इसलिए भला चाहते हो तो कहीं और जगह खोज लो। पर धर्मसिंहजी जब नहीं माने तो फकीरों ने चिढ़कर कहा—नहीं मानता तो रहने दो! जान से हाथ धोएगा!

उस दरगाह में एक बड़ा जिंद रहता था। धर्मसिंहजी रात्रि में वहाँ ठहर गये। उन्होंने ज्ञान-ध्यान करना शुरु किया। जैन-शास्त्रों में भवनपतियों का जो जिक्र आता है और मुसलमानों के यहाँ वहिश्त का जो जिक्र आता है, वही धर्मसिंहजी पढ़-पढ़ कर

सुनाने लगे। पाठ सुनकर वह जिंद खुश हो गया। उसने पूछा—आपको हमारी बातें कैसे मालूम हैं? अच्छा जाओ, मैं तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ूंगा। सुबह फकीरों ने उन्हें जीवित देखकर आश्चर्य किया और कहा—यह तो कोई ओलिया है!

धर्मसिंहजी लौटकर गुरु के पास गये। गुरु ने कहा—तुम जहाँ कहीं जाओगे, आराम पाओगे। आज भी उनकी सम्प्रदाय मौजूद है।

अंबाले में मुनि लाल का, हुआ अग्नि संस्कार।
चोलपट्टा चद्दर जली नहीं, मौजूदा इस बार॥

पंजाब में अम्बाला की बात है। एक महापुण्यवान् साधु व्याख्यान सुना रहे थे। एक चमार भी उनका व्याख्यान सुनता था। व्याख्यान सुनते-सुनते उसे वैराग्य हो गया और वह साधु बन गया। उसका नाम लालचन्द था। मुनि लालचन्दजी बेले-बेले की तपस्या करने लगे। वे बड़े तपस्वी हुए हैं। वे अकेले ही रहते थे। एक बार वे किसी गाँव में पहुंचे। वहाँ के लोगों ने शिकायत की कि यह जाति के चमार हैं और साधु बने फिरते हैं! राजा ने उन्हें गाँव से बाहर निकलवा दिया। लोगों ने कहा—महाराज! अब कभी मत आना। मुनि महाराज बोले—जब तक इस राजा का राज्य रहेगा तब तक नहीं आऊँगा।

मगर हुआ क्या कि दूसरे दिन ही राज्य पलट गया! आपने अंबाले में शरीर छोड़ा। अग्निसंस्कार किया गया। उस अग्नि में आपका शरीर तो भस्म हो गया किन्तु चोलपट्टा और

चादर ज्यों के त्यों रह गये—जले नहीं। अभी तक दोनों चीजें वहाँ मौजूद है। शास्त्र में कहा है:—

सक्खं खु दीसइ तवो विसेसो,
न दीसई जाइविसेस कोई ॥

उत्तराध्ययन, अ० १२

अर्थात्—तपस्या की महिमा तो प्रत्यक्ष देखी जाती है; मगर जाति की कोई भी विशेषता दिखलाई नहीं देती। वास्तव में धर्म का संबंध आचरण से है—तपस्या से है। जाति के साथ धर्म का कोई ताल्लुक नहीं है। ऊँची कही जाने वाली जाति में उत्पन्न होकर के भी जो नीच आचरण करता है वह नीच है। और जो नीच समझी जाने वाली जाति में जन्म लेकर भी उच्च आचरण करता है, वह ऊँचा है। जाति पूजनीय नहीं, आचरण ही पूजनीय होता है। जो धर्म का आचरण करता है, उसकी आत्मा का आचरण अवश्य होता है। हे भव्य जीवो !

जैनधर्म जो करे उसी का, श्रीमहावीर का फरमान।
तप संयम की महिमा जैन में, नहीं जाति का कोई ऋरमान।

जैनधर्म किसी जाति की सम्पत्ति नहीं है। वह किसी भी जाति के दायरे में सीमित नहीं है। भगवान् महावीर प्रभु का आदेश है कि जो जैनधर्म का पालन करे उसी का वह धर्म है। किसी भी जाति में जन्म लेने वाला, किसी भी देश में उत्पन्न होने वाला किसी भी वर्ण का, कोई भी पुरुष धर्म को धारण करके अपनी आत्मा का कल्याण कर सकता है। इसी प्रकार धर्म में लिंग

संबंधी कोई भेद नहीं है। नर हो या नारी हो, सब को धर्म-पालन करने का समान अधिकार है।

गुरु प्रसादे चौथमल कहे, सुनजो भायां बायां।
कई पूज्य मुनि हुए जैन में गुण जावे नहीं गाया।

भाइयो ! जैनधर्म के प्रताप से कई मुनि ऐसे हुए हैं, जो पूजनीय थे और जिनके गुणों का वर्णन करना भी शक्य नहीं है। पूज्य जयमलजी महाराज, पूज्य रघुनाथजी महाराज आदि-आदि अनेक महाभाग्यवान् संत हो चुके हैं। वीतराग देव का मार्ग सच्चा है किन्तु इस मार्ग पर चलने वाला सच्चा होना चाहिए। उसका कल्याण अवश्य होता है। भगवान किसको देखता है ? वह तुम्हारी पोली पगड़ी को देखता है अथवा लहरियादार साफे को निहारता है ? नहीं, प्रभु बनाव सिंगार से नहीं रीझता। गहनों से प्रसन्न नहीं होता। ईश्वर भक्त के हृदय को देखता है। प्रभु कहता है-ऐ बंदे ! तू मुझे कहाँ खोजता फिरता है ?

तू क्या ढूंढे रे वन-वन में,
तेरा प्रभु वसै तेरे तन में ॥

भगवान् तेरी आत्मा में है, बल्कि तेरी निर्विकार और निष्कलंक आत्मा ही भगवान् है। हृदय में भक्ति हो तो परमात्मा दूर नहीं है। बहुत-से लोगों का खयाल है कि माला फिरा लेने से, तिलक लगा लेने से या अमुक प्रकार का भेष पहन लेने से भक्त की पदवी मिल जाती है ! ऐसा करने वाला भले ही लोगों में भक्त कहला ले और आदर-सन्मान भी प्राप्त करले मगर यदि

उसका हृदय भक्ति के रंग में नहीं रँगा है, तो वह सच्चे कल्याण का भागी नहीं बन सकता। कहा भी है:—

माला बड़ी न तिलक बड़ो, न कोई बड़ो शरीर।
सब ही में भक्ति बड़ी, कह गये दास कबीर॥

परमात्मा के प्रति शुद्ध-निष्काम प्रेम जब रग रग में व्याप्त हो जाता है तभी ईश्वरीय शक्ति आत्मा में प्रकट होती है। भगवान् रूप को नहीं देखता, धनसम्पदा को नहीं देखता और जातपाँत को भी नहीं पूछता। रामचन्द्र ने शबरी की भक्ति से प्रेरित होकर ही उसके जूठे बेर खाये थे; दूसरे ऋषि शबरी के प्रति घृणा की भावना रखते थे, मगर मर्यादा पुरुषोत्तम राम किसी भी दूसरी बात का विचार करने वाले नहीं थे। वे सिर्फ अन्तरंग की पवित्रता को देखते थे। शबरी का हृदय निर्मल था। उसमें निःस्वार्थ भक्ति भरी हुई थी। रामचन्द्र ने उसी भक्ति का मूल्य समझा। प्रभु के प्रति सच्चा प्रेम होने के कारण उसकी जगत् में महिमा हुई और आज भी लोग उसे याद करते हैं। शबरी से घृणा करने वाले और अपनी जाति का अहंकार रखने वाले उन दूसरे मुनियों का आज नाम भी कोई नहीं जानता! शबरी के विषय में आज भी कहा जाता है:—

भीलनी तू सच्ची प्रेमिन है, प्रेमी का रुतबा आला है।
मैं सांच--सांच यह कहता हूँ एक प्रेम का पंथ निराला है॥

मतलब यह है कि किसी भी जाति का और किसी भी वर्ण का कोई व्यक्ति क्यों न हो, अगर उसने परमात्मा के प्रति

सच्ची निष्ठा धारण कर ली है, परमात्मा के आदेश को शिरोधार्य करके, प्रगाढ़ श्रद्धा के साथ परमात्मा के मार्ग पर ही चलने का निश्चय कर लिया है और उसी पर चलता जा रहा है तो वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है। उसी को लोकोत्तर विजय की प्राप्ति होती है। लोकोत्तर विजय जड़ पर चेतन की विजय है, प्रकृति पर पुरुष की विजय है, माया पर ब्रह्म की विजय है, कर्म पर आत्मा की विजय है! यही विजय मूल्यवान् और कल्याण-कारी विजय है। इस विजय को प्राप्त करने वाला वीरशिरोमणि पुरुष ही विश्ववंद्य बन जाता है और सदा के लिए विजयी हो जाता है। अतः भाइयो! लौकिक विजय की कामना मत करो। इस विजय से तुम्हारा स्थायी लाभ नहीं होगा। लौकिक विजय आज प्राप्त कर लोगे तो कल फिर वह पराजय के रूप में परिणत हो जायगी। ऐसी विजय यह जीव अनादि काल से प्राप्त करता आ रहा है। उससे आत्मा का कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ। अब भी सिद्ध होने वाला नहीं है। अगर तुम्हें कृतार्थ होना है, सदा के लिए सर्वोत्तम विजय प्राप्त करना है तो उसका एक ही मार्ग है। तुम भगवान् ऋषभदेवजी की शरण गहो। उनके चरणों में अपनी समस्त विजय समर्पित कर दो। निर्बल बन जाओ। उन्हीं पर निर्भर हो रहो। बस, तुम्हे लोकोत्तर विजय की प्राप्ति हो जायगी।

जम्बू कुमार की कथा—

श्री सुधर्मा स्वामी का लोकोत्तर उपदेश सुनकर जम्बू कुमार आज लोकोत्तर विजय प्राप्त करने के लिए कृतसंकल्प हुए हैं। उन्होंने लोकोत्तर विजय की महिमा समझ ली है। यही कारण

है कि संसार के बड़े से बड़े प्रलोभन भी उन्हें पथ से च्युत नहीं कर सकते। धन-सम्पत्ति का प्रलोभन, सुन्दरी स्त्रियों का प्रलोभन और नवयौवन का प्रलोभन उनके सामने तुच्छ है। उनके हृदय पर वैराग्य का पक्का रंग चढ़ गया है। उस रंग ने प्रभव जैसे क्रूरकर्मा व्यक्ति को भी रंग दिया है। प्रभव स्वयं संयम स्वीकार करने के लिए सन्नद्ध हो गया है।

प्रभव संसार का खूब अनुभव प्राप्त कर चुका है। वह जिंदगी के सभी खेल खेल चुका है। अतएव उसे अपने विषय में कुछ सोचना-विचारना नहीं था। मगर जम्बू कुमार अभी नौजवान थे। दुनियादारी से परिचित नहीं हुए थे। प्रभव को उनके विषय में फिर एक नवीन विचार उत्पन्न हुआ। वह थोड़ी देर तक सोच-विचार में पड़ा रहा। तत्पश्चात् वह अनुनय के स्वर में कहने लगा—कुमार! मेरे हृदय में एक बात आई है। आपकी उम्र अभी छोटी है। आपको अभी संसार का अनुभव नहीं हो पाया है। इस उम्र में पत्नियों का परित्याग करके मुनिवृत्ति धारण करना खतरनाक है। आप मेरी बात पर जरूर गौर कीजिए।

जम्बू कुमार बोले—भाई प्रभव! आत्मा अनादिकाल से है। इसकी उम्र का हिसाब ही क्या है? फिर मैं अबोध बालक नहीं हूँ। किसी के फुसलाने से साधु नहीं बन रहा हूँ। वासनाएँ बढ़ाने से बढ़ती और घटाने से घटती हैं। भोग भोगने से तृप्ति हो जायगी, यह कल्पना विपरीत है। भोग भोगने से अतृप्ति ही बढ़ती है-कभी तृप्ति नहीं होती। तृप्ति होती तो कभी की हो गई होती। अनन्त जन्मों में जो तृप्ति नहीं हुई, वह अब कुछ वर्षों में

कैसे हो जायगी ? अतएव मुझे अपने संकल्प को पूरा करने दो। मैं आगे-पीछे का सब विचार कर चुका हूँ। इससे अधिक विचार करने की अब गुंजाइश नहीं रही है।

प्रभव ने कहा—तो फिर ठीक है। मैं आपके साथ हूँ।

प्रभव नीचे उतरा। ४९९ साथी चोरों से उसने अपना विचार कहा। वे सब के सब साधु बनने के लिए तैयार हो गये।

आश्चर्य की बात है कि ज्यों ही उन्होंने संयम धारण करने का विचार किया कि उसी समय उनके समस्त बंधन टूट गये। सब चोर बंधन मुक्त हो गये उन्होंने ज्यों ही लोकोत्तर विजय प्राप्त करने का संकल्प किया कि उसी समय लौकिक-भौतिक-विजय उन्हें प्राप्त हो गई। यह चमत्कार देख सभी चोर चकित रह गये। जिस संयम का पालन करने के संकल्प में इतना महान् चमत्कार है, उसे स्वीकार करने में कितना चमत्कार न होगा ?

स्थान—जोधपुर
ता०२९-८-४८



निष्काम भक्ति



स्तुतिः—

अम्भोनिधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्र-
पाठीनपीठभयदोल्वणवाडवाग्नौ ।
रंगत्तरङ्गशिखरस्थितयानपात्रा-
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ।

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं कि:—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन्! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय? भगवन्! आपके गुण कहाँ तक गाये जाएँ?

मान लीजिए, कोई पुरुष समुद्र की यात्रा पर रवाना हुआ है। विलायत जा रहा है या आ रहा है। ज्वार-भाटे के कारण

समुद्र बहुत क्षुब्ध हो रहा है। उसमे पहाड़ सरीखी तरंगें उठ रही हैं। उनके कारण समुद्र अत्यन्त भीषण प्रतीत होता है। समुद्र में बड़े-बड़े विशालकाय मगर-मच्छ दौड़ रहे हैं। वे बड़े जबर्दस्त हैं। इतने जबर्दस्त कि अपनी पूंछ की फटकार मार कर चलते हुए स्टीमर को उलट सकते हैं। इन सब उपद्रवों के अतिरिक्त समुद्र में भयानक वडवानल भी प्रज्वलित हो रहा है।

कभी-कभी समुद्र में बड़ी ऊँची तरंगें उठती हैं—एक मील ऊँचा पानी चढ़ जाता है। एक बार हमने बम्बई में चौमासा किया था। हम समुद्र के किनारे-किनारे जा रहे थे। समुद्र के आड़े एक ऊंची दीवार थी। किन्तु पानी ने इतना जोर मारा कि वह दीवार को लांघ कर बाहर उछला और हमें उसकी बौछार लगी।

पैदल-पैदल भ्रमण करने वाले हम साधु घर-घर का चूल्हा देखते हैं। आप बंबई जाते हैं और चौपाटी की सैर करके ही चले आते है। रेलगाड़ी आपको कैद करके बम्बई में ले जाकर पटक देती है और वहाँ से पकड़ कर आपके गाँव के स्टेशन पर छोड़ देती है। हम लोग डग-डग और पग-पग नाप कर चलते हैं। स्वाधीन होकर चलते हैं। रास्ते के नैसर्गिक दृश्यों का अवलोकन करते हुए और उनमे अनेक प्रकार के अनुभवों का सत्व निचोड़ते हुए चलते हैं।

राजा मानसिंहजी ने जैन साधु को देख कर कहा है—'पहरने को नहीं जोड़ियाँ, खाने को नहीं पूड़ियाँ, खरचने को नहीं कौड़ियाँ और चढ़ने को नहीं घोड़िया; फिर भी मौज करे उघाड़ा माथा का मोड़ियाँ!' वास्तव में जैन साधु का जीवन संतोष के सुख से परिपूर्ण होता है। वह अभावों में भी रस का आस्वादन

करता है। उसके अन्तःकरण से रस का एक झरना बहता रहता है। उस रस का आस्वादन करके वह मस्त रहता है!

हाँ, तो वह समुद्रयात्री समुद्र के बीच पहुँचता है। उसी समय भयानक तूफान आ जाता है। पानी कभी ऊँचा चढ़ता है, कभी नीचा उतरता है। पानी के साथ-साथ जहाज भी ऊंचा नीचा हो रहा है। जहाज बड़े खतरे में पड़ गया है। सही-सलामत बचने का कोई मार्ग दिखाई नहीं देता। ऐसे समय में यात्री, हे प्रभो! आपका स्मरण करता है। आपका स्मरण करते ही उसके मार्ग के सब विघ्न दूर हो जाते हैं। वह सकुशल और सानन्द सागर के तट पर पहुंच जाता है। भगवान् के स्मरण का ऐसा प्रभाव है। ऐसे भगवान् ऋषभदेव को हमारा बार बार नमस्कार है।

भाइयो! यह संसार भी समुद्र के समान है। जैसे समुद्र में खूंख्वार और जबर्दस्त मगर-मच्छ, घड़ियाल आदि प्राणी होते हैं और उनसे बचना बहुत कठिन होता है, इसी प्रकार संसार में नाना प्रकार के शारीरिक और मानसिक दुःख है। इन दुःखों से छुटकारा पाना अत्यन्त ही कठिन है। जैसे समुद्र में वडवानल भड़कता रहता है उसी प्रकार संसार में इष्टवियोग और अनिष्टसंयोग आदि के कारण संताप और परिताप होता रहता है। जैसे समुद्र में ज्वार और भाटा आता रहता है, उसी प्रकार संसार में हर्ष और विषाद की उत्ताल तरंगें उठती रहती हैं। जैसे समुद्र का पार पाना कठिन है, उसी प्रकार संसार का अन्त करना भी कठिन है। जैसे समुद्र जहाज से पार किया जाता है, उसी तरह संसार धर्म-जहाज से पार किया जाता है। जहाज को चलाने के लिए

कुशल नाविक की आवश्यकता पड़ती है, उसी प्रकार धर्म-जहाज को चलाने के लिए भी सद्गुरु रूपी कुशल नाविक की आवश्यकता होती है। जहाज यदि ठीक न हो अथवा नाविक यदि कुशल न हो तो यात्री समुद्र में ही डूब मरता है, इसी प्रकार मिथ्या-धर्म और अज्ञानी गुरु का संयोग होने पर भी प्राणी को भव-सागर में डूबना पड़ता है।

इतना होने पर भी समुद्र में नाना प्रकार के रत्न पाये जाते हैं। इसी कारण उसे रत्नाकर कहते हैं। समुद्र रत्नों का आकर अर्थात् खान है। इसी तरह इस संसार में भी अनेक रत्न है। यहाँ साधु रत्न हैं, साध्वियाँ रत्न हैं, श्रावक रत्न हैं और श्राविकाएँ भी रत्न हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र भी रत्नत्रय कहलाते हैं। जो धी-वर (बुद्धिमान् ज्ञानी पुरुष) प्रयत्न करके इन रत्नों को प्राप्त करते हैं, वे निहाल हो जाते हैं, इसी अपेक्षा से संसार को 'संसार' कहते हैं। 'संसार' शब्द का अर्थ है—सम्यक् सार वाला अर्थात् जिसमें अच्छा सार हो वह संसार है। निस्सार होने पर भी मोक्षप्राप्ति के कारण यहाँ उपलब्ध हो जाते हैं, इसीलिए संसार 'सं-सार' है।

भाइयो ! समुद्र या नदी को पार कर लेना कठिन नहीं है, मगर भव-सागर को पार कर लेना बड़ा कठिन है। इसे पार करने के लिए सद्गुरु की कृपा होनी चाहिए। सद्गुरु वही हैं जो मोह, माया, मद, मत्सर आदि को मार चुके हैं; जो कंचन और कामिनी का परित्याग करके अकिंचन बन गये है। जहाज वाले तो कल्दार लेते हैं मगर सद्गुरु कलदार नहीं चाहते और फिर भी

संसारसागर से पार उतार देते हैं। अरे भाई, तुझे मुफ्त में पार उतारते हैं फिर क्यों मिजाज करता है ?

राम, लक्ष्मण और सीता माता को ताप्ती नदी पार करना था। उन्होंने नाविक से कहा—हमें परले पार जाना है, जहाँ उत्तरायण गाँव है वहाँ पहुंचना है। उस नाविक ने तीनों को बड़े प्रेम से नाव में बिठलाया और परले पार पहुंचा दिया।

उदाराशय महापुरुष न तो रुपया-पैसा ठहराते हैं और न पूछते ही हैं कि क्या लोगे ? रामचन्द्र ऐसे ही परम उदार महापुरुष थे। नाव में चढ़ते समय उन्होंने नाविक से उतराई के लिए कोई मोल-तोल नहीं किया था। आज वनवासी बन गये थे तो क्या हुआ, थे तो अवध के राजकुमार ! कहाँ तक उदार न होते ? परले पार पहुँच कर उतराई देने के लिए उन्होंने सीता की ओर अर्थभरी नजरों से देखा। सीता भी विदेहराज की राजकुमारी और रघुकुल की वधू थी। उदारता उनके रोम रोम में बसी हुई थी। सीताजी रामचन्द्रजी की नजरों का अर्थ समझ गईं। उन्होंने तत्काल अपने शरीर का आभूषण उतारा और नाविक को देने लगीं।

ऐसे अवसर पर और कोई स्त्री होती तो वह अपने पति के कहने पर भी शायद ही अपना गहना उतार कर देती। वह कहती—मैं राजा की लाड़ली बेटी हूँ, तुम्हारी बदौलत आज जंगल में भटक रही हूँ। अपनी इच्छा से तुमने राज्य छोड़ दिया, नहीं तो किसकी हिम्मत थी जो राज्य छीन लेता ? मेरा सब

कुछ चला गया है। एक ही गहना मेरे पास बचा है। इसे भी हथिया लेना चाहते हो ? मैं हर्गिज यह नहीं दूँगी।

मगर सीता माता ऐसी साधारण स्त्री नहीं थीं। उनमें अलौकिक गुण थे। प्रत्येक परिस्थिति में वे पतिव्रता और पति-परायणा ही बनी रहीं। राम ने निरपराध समझ कर भी जब उन्हें वनवास दे दिया, तब भी उन्होंने राम का अमंगल नहीं चाहा। उनके लिए आभूषण, आभूषण नहीं था, पति ही आभूषण था, पति ही उनका सुख था, पति ही उनका सर्वस्व था! पति की इच्छा के विरुद्ध कोई विचार भी उन्होंने कभी नहीं आने दिया। ऐसी सती नारियाँ ही जगत् में पूजनीय और प्रातः स्मरणीय होती हैं। अपने इन गुणों के कारण कितना ही लम्बा काल बीत जाने पर भी सीताजी आज वंदनीय मानी जाती हैं।

सीताजी आगा-पीछा विचारे बिना ही अपना गहना नाविक को देने लगीं। नाविक लज्जित-सा होकर बोला—महाराज! मैं इतने सस्ते में आपको नहीं छोड़ सकता। मैंने आप तीन को नदी के उस पार से इस पार उतारा है। मेरी मिहनत इस आभूषण से नहीं चुक सकती। मामूली आदमी होता तो उससे मैं मामूली मिहनत ले लेता; आप मामूली मनुष्य नहीं हैं। आपसे अधूरा नहीं, पूरा मिहनताना वसूल करूँगा।

राम नाविक के मन की बात समझ गये। फिर भी उन्होंने कहा—भाई, यह मामूली नहीं है। इससे बढ़ कर तुम क्या चाहते हो?

नाविक ने मुस्करा कर कहा—मैं नदी पार कराने के बदले संसार-सागर से पार होना चाहता हूँ। यही मेरा पूरा मिहनताना होगा। ऐसे आभूषण और नकद रुपया तो और लोग भी दे सकते हैं, मैं आपसे वह चाहता हूँ जो दूसरों से न मिल सकता हो!

राम ने उसकी भक्ति की सराहना की और उसके प्रति यथोचित प्रेम प्रदर्शित किया।

तो बात यह कह रहा था कि बड़े आदमी मोल तोल नहीं करते। हैदराबाद के निजाम के बाप मौजूद थे। एक समय आम बेचने वाला उधर जा पहुँचा। उसने आम खरीदने की पुकार की। निजाम के बेटे ने पुकार सुनी तो पूछा—आम क्या भाव देते हो? यह बात सुनकर निजाम ने कहा—पूछता क्या है? आम ले ले और एक कटोरा भर कल्दार दे दे! इस तरह बनियापन क्यों करता है? तू मेरी गादी के लायक नहीं है!

सुनते हैं, इन्दौर के राजा होल्कर सयाजीराव बैठे थे कि इतने में एक लड़का निकला। उसने आवाज दी—लो गरमा गरम मूंगफली! महाराजा होल्कर ने उसे अपने पास बुलवाया। उन्होंने एक मुट्ठी मूँगफली ले लीं और एक मुट्ठी रुपये दे दिये!

यह राजाओं के लक्षण हैं। भाव-ताव करने में झिकझिक करना और अधिक लेकर कम देने की भावना या कोशिश करना कमीनों और मंगतो का लक्षण है! यह प्रजा का ही पैसा है और प्रजा के पास ही जाना चाहिए। आज तो राजा लोग विलायत जाकर वहाँ पैसे को पानी की तरह बहाते हैं, पर उनकी यह भूल है। उन्हें देश का पैसा विदेश में खर्च नहीं करना चाहिए।

जब राम नाविक को मिहनताना चुकाने का आग्रह करने लगे तो नाविक बोला:—

अपने को ऋणी समझते हो,
तो ऋण तुम वहीं चुका देना।
मैंने है तुमको पार किया,
तुम मुझको पार लगा देना॥

भाइयो ! इस अपढ़-अशिक्षित नाविक की भावना पर विचार करो। अपनी भावना के साथ उसकी भावना की तुलना करो। वह उन लोगों में नहीं है कि राम-नाम की माला फेरे और चाहे कि सारी दुनियाँ की दौलत मेरे घर में आ जाय ! वह नहीं चाहता कि हे बालाजी, हे भैरोंजी ! मुझे धन दे दो; मेरा भंडार भर दो। नाविक गरीब आदमी था। यात्रियों से एक-एक पैसा और दो-दो पैसा लेकर अपने बाल-बच्चों की परवरिश करता होगा। आज उसे सीताजी का आभूषण मिल रहा है। उसके लिए वह कितनी बड़ी चीज है ? सीताजी का आभूषण मामूली कीमत का नहीं होगा। फिर गरीब केवट के लिए तो वह अनमोल ही समझो। जिंदगी भर पसीना बहाकर भी वह वैसा आभूषण शायद ही बनवा सके ! ऐसी हालत में उस आभूषण का लोभ छोड़ देना कितनी बड़ी बात है ? मगर केवट ने लोभ नहीं किया। उसकी निष्कामता धन्य है ! आप लोगों में वैसी निष्काम वृत्ति कब आएगी ? कभी भी आवे, जब आपका चित्त लोभ से ऊपर उठ जायगा तभी आपका सच्चा कल्याण होगा। तभी आपका जीवन ऊँचा उठेगा।

रे पुरुष ! तीन लोक के नाथ से मँगते की तरह क्या दो—चार पैसे माँगता है ! 'लोगस्स' के पाठ में कहा है:—

सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ।

अर्थात—हे सिद्ध भगवान् ! मुझे सिद्धि प्रदान कीजिए, मुझे मुक्ति का मार्ग प्रदर्शित कीजिए। भगवन् से याचना करो तो ऐसी करो। भगवान् से क्या माँगना चाहिए और क्या नहीं माँगना चाहिए, इस विषय में कहा है—

प्रभुजी थांरो कंइय न माँगूं राज,
म्हारी राखो प्रभुजी लाज ॥

दान में अभयदान जो मांगूं, ध्यान में शुक्ल ध्यान ।
समकित मांही क्षायिक मांगूं, ज्ञान में केवलज्ञान ॥

हे प्रभुजी ! मुझे राजपाट, धन-दौलत, महल-मकान आदि कुछ नहीं चाहिए। मैं आपसे इन चीजों की चाहना नहीं करता ! मुझे तो मेरी ही चीज दे दो। मैं समकित में क्षायिक समकित चाहता हूँ, जो एक बार मिलने के बाद फिर कभी जाती ही नहीं है। क्षायिक समकित रूपी बहिन आने पर ही केवलज्ञान रूपी भाई आता है।

प्रभो ! मैं ध्यानों में से शुक्लध्यान माँगता हूँ और चारित्रों में से क्षायिकचारित्र माँगता हूँ और ज्ञानों में से केवलज्ञान मांगता हूँ। यह सब जगत में अद्वितीय वस्तुएँ हैं। इनके मुकाबिले की दूसरी चीजें नहीं हैं। अपनी-अपनी जाति में यह सब प्रधान हैं।

सम्यक्त्व तीन प्रकार का है—औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक। अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ का तथा मिथ्यात्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय और समकितमोहनीय का—इस प्रकार मोहनीय कर्म की सात प्रकृतियों का उपशम होने से प्राप्त होने वाला सम्यक्त्व उपशम उपशम सम्यक्त्व कहलाता है। उक्त सात प्रकृतियों में से कुछ का क्षय और कुछ का उपशम होने पर और देशघाती समकितमोहनीय प्रकृति का उदय होने पर क्षायोपशमिक सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। पूर्वोक्त सातों प्रकृतियों का क्षय होने पर क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त होता है। क्षायिकसम्यक्त्व आदि अनन्त है। एक बार प्राप्त होने पर उसका नाश नहीं होता। शास्त्रों में उसकी बड़ी महिमा बतलाई गई है। अगर आयु का बंध पहले न हो चुका हो और क्षायिकसमकित हो जाय तो जीव निश्चय ही एक भव में मुक्ति प्राप्त कर लेता है। अगर पहले आयु बंध हो चुकी हो तो तीसरे भव में अवश्य मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

क्षायिकसमकित आ जाती है तो पौद्गलिक सुखों की इच्छा प्रायः नहीं रह जाती। अर्थात् इन्द्र पदवी के भोग, देवगति के सुख, मनुष्य संबधी कामभोग, चक्रवर्ती के चौदह रत्न, नौ निधियां, आदि-आदि सर्वोत्कृष्ट सांसारिक सुखों की भी इच्छा नहीं रह जाती है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि इन सुखो की सपने में भी आकांक्षा नहीं करता। वह आत्मा के स्वरूप को पहचान लेता है और उसकी दृष्टि एवं रुचि इतनी निर्मल हो जाती है कि सांसारिक सुख उसे तुच्छ और सारहीन प्रतीत होते हैं।

मिथ्यात्वमोहनीय इसकी विरुद्ध प्रकृति है। जिस जीव के मिथ्यात्वमोहनीय प्रकृति का उदय होता है, वह विपरीत श्रद्धा ही रखता है। उसे धर्म सुनने की भी इच्छा नहीं होती। वह धर्म को पाखण्ड समझता है। उसकी नजरों पर ऐसा चश्मा चढ़ा रहता है कि उसे सभी कुछ विपरीत ही विपरीत नजर आता है। वह स्वयं आत्मिक दृष्टि से दीवालिया होता है और दूसरों को भी बनाने की चेष्टा करता है। जो उसके संसर्ग में आता है, उसका भी दीवाला निकलने की सम्भावना हो जाती है। इसीलिए सूरदास कहते हैं—

तजो रे मन, हरिविमुखन को संग।

मिथ्यादृष्टि की संगति त्यागने का उपदेश संत पुरुष देते हैं। उससे यह नहीं समझना चाहिये कि संत उससे घृणा करते हैं। संत करुणा भाव से प्रेरित होकर ही दूसरों को अनिष्ट से बचने की शिक्षा देते हैं। उदाहरण के लिए बीमार को लीजिए। मान लीजिए किसी आदमी को छूत का रोग हो गया है। डाक्टर करुणा से प्रेरित होकर उसकी चिकित्सा करता है और दूसरों से कहता है कि इस रोगी के पास मत जाओ। इसके पास जाने से तुम्हें भी वह बीमारी लागू हो जायगी! तो क्या कोई कह सकता है कि डाक्टर को छूत के रोगी से घृणा है? नहीं, घृणा होती तो वह उसका इलाज ही क्यों करता? उसके हृदय में रोगी के प्रति घृणा नहीं करुणा है और साथ ही दूसरों के प्रति भी करुणा का भाव है। दूसरों के प्रति करुणाभाव होने से डाक्टर उन्हें उस रोगी के पास नहीं जाने देता और रोगी के प्रति करुणा भाव होने से उसकी चिकित्सा करता है। अगर डाक्टर रोग

को छूत का रोग समझते हुए भी दूसरों को उसके पास जाने या रहने की मनाई न करे तो वह दूसरों के प्रति करुणाहीन-निर्दय कहलाएगा। इससे रोगी का कुछ भला तो होगा नहीं, दूसरों का बुरा हो जायगा। रोगी का रोग तो मिटेगा नहीं, दूसरे और रोगी हो जाएँगे। अतः डाक्टर की दयालुता इसी में है कि वह छूत के रोगी का प्रेम के साथ इलाज करे और दूसरों को उसके सम्पर्क से बचावे।

यही बात मिथ्यादृष्टि की संगति को छोड़ने का उपदेश देने में है। संत जन डाक्टर के समान हैं और मिथ्यादृष्टि छूत के रोगी के समान है। जो मिथ्यादृष्टि के संसर्ग में आते हैं उन पर मिथ्यादृष्टि का प्रभाव पड़ जाता है। इससे मिथ्यादृष्टि का कोई लाभ नहीं होता, सम्यग्दृष्टि की हानि हो जाती है। संत पुरुष दयासागर हैं। वे दूसरों का हित चाहते हैं, अहित नहीं चाहते। इसी कारण वे उपदेश देते हैं कि मिथ्यादृष्टि की संगति मत करो। हाँ, जैसे डाक्टर रोगी का इलाज करता है, उसी प्रकार वे सन्तपुरुष भी मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्व रूपी रोग का इलाज करते है। उसके मिथ्यात्व को दूर करने के लिए वीतराग भगवान की वाणी रूपी औषध उसे देते हैं।

डाक्टर के प्रयत्न करने पर भी रोग अगर साध्य होता है तो मिट जाता है और यदि असाध्य हो तो नहीं मिटता। इसी प्रकार संतों के उपदेश से मिथ्यात्व किसी का दूर हो जाता है, किसी का नहीं होता। सन्त पुरुष परम करुणावान् हैं। जगत् के समस्त जीवों का कल्याण चाहते हैं। वे किसी से-मिथ्यादृष्टि से भी घृणा नहीं करते। घृणा करते तो उसके मिथ्यात्व को दूर करके उसे समकित के मार्ग पर लाने का प्रयत्न ही क्यों करते?

अतएव जब सन्तजन हरिविमुख, धर्महीन अथवा मिथ्यादृष्टि के संसर्ग का--परिचय का—संस्तव का त्याग करने को कहते हैं तो उनकी असीम अनुकम्पा ही समझनी चाहिए। इसी आशय से कहा है:—

पापी की संगति मत कीज्यो, उलटा पाठ पढ़ावेला।
इतना को होसी सो होसी, यूं समझावेला ॥
सुमति जद आवेला सत्संग में थारो जीव रमावेला ॥

मुनिराज कहते हैं—दया करो, सत्य बोलो, विना हक की चीज मत लो; ब्रह्मचर्य पालो, ईश्वर का भजन करो, पाप मत करो पाप करोगे तो नरक में जाकर पड़ोगे। मुनिराज के इस उपदेश को सुन कर मिथ्यादृष्टि कहता है--यह सब बातें झूठी हैं। वह पूछता है—अच्छा, बतलाइये कि धर्म करने वाले कितने हैं और पाप करने वाले कितने हैं? जवाब मिला कि धर्म करने वाले थोड़े और पाप करने वाले बहुत हैं! तब वह कहता है—तो बस बहुमत से प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि धर्म करने वाले नरक में जाएँगे और पाप करने वाले स्वर्ग के सुख भोगेंगे। कहा है—

पापी जो वैकुंठ जाय तो धर्मी नरकां जावेला।
नहीं हुई नहीं होने की, पापी पछतावेला ॥

भाइयो! मिथ्यादृष्टि और पापी मुँह से कुछ भी कह कर अपने मन को सन्तुष्ट कर लें, मगर प्रकृति का विधान नहीं पलट सकता। पापी स्वर्ग में और धर्मी नरक में जाएँ ऐसा कभी हुआ नहीं है, कभी होगा भी नहीं। अन्त में पापी जीवों को पछताना

पड़ेगा। उस समय उनकी वाक्शूरता काम नहीं आएगी। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि उलटी-ही उलटी श्रद्धा करता है। वह सत्य को झूठ और झूठ को सत्य मानता है। अतएव मिथ्यादृष्टियों की संगति से सदैव बचना चाहिए।

मोहनीय कर्म की एक प्रकृति है—मिश्र मोहनीय। जैसे दही और गुड़ मिला कर खाने से खट्टा-मीठा स्वाद आता है, उसी प्रकार जिस जीव की रुचि सच्ची-झूठी मिली-जुली-सी होती है, उसे मिश्रमोहनीय कर्म का उदय समझना चाहिये। ऐसा व्यक्ति हीरा और काँच को समान समझता है, अर्थात् सच्चे-झूठे देव, गुरु और धर्म की विशिष्टता को नहीं पहचान पाता। वह विना विवेक के सब को एक सरीखा मान बैठता है। वह कभी-कभी झूठे देव, गुरु और धर्म से दिल हटा लेता है, मगर सच्चे देव, गुरु और धर्म पर विश्वास नहीं लाता। ऐसा जीव भी कभी न कभी मोक्ष पा लेता है।

मिश्रदृष्टि को समझाने के लिए एक उदाहरण दिया जाता है। कोई एक महात्मा बाग में आये। गाँव में खबर लगी! लोग दर्शन करने के लिए जाने लगे। एक आदमी दुकान पर बैठा था। उसने पूछा तो लोगों ने कहा—हम मुनि महात्मा के दर्शनार्थ जा रहे हैं। तब वह कहने लगा—वास्तव में महात्मा किसे कहते हैं? महात्मा की पहचान किस प्रकार की जा सकती है? तब उनमें से एक ने कहा—

होते, होते हैं साधु ऐसे जैन मुनि जग मांय।
पंखा करे न करे सवारी, चलते जीव बचाय॥
मधुकर-सी है चरिया जिनकी सब जीवां सुखदाय ॥१॥

कनक कामिनी के हैं त्यागी, रजनी में नहीं खाय।
कच्चे जल को कभी न पीते, अगनी छूते नाय ॥

देखो भाइयो! दुनिया में दो चीजें जबर्दस्त हैं—एक कंचन और दूसरी कामिनी। कई लोग कंचन अर्थात् धन को और कई कामिनी अर्थात् औरत को छोड़ते हैं, मगर औरत को छोड़ देना बहुत मुश्किल है। कई लोग औरत को छोड़ कर भी धन को नहीं छोड़ पाते। मगर सच्चा सन्यासी वही है जो दोनों को छोड़ देता है। दोनों को छोड़कर फिर धन या और औरत को ग्रहण करने वाला नरक का अधिकारी होता है।

साधु वही हैं जो चाहे कितनी ही गर्मी क्यों न पड़े, पंखा नहीं झलते हैं। जो गाड़ी, घोड़ा, सायकिल, मोटर, रेल आदि सजीव या निर्जीव सवारी पर कभी सवार नहीं होते। जब कभी चलने का काम पड़ता है तो पैदल ही चलते हैं और सामने की चार पैर जमीन देखते हुए और जीव-जन्तुओं को बचाते हुए चलते हैं।

साधु अपनी उदरपूर्ति के लिए कोई व्यापार-धंधा या खेती वगैरह नहीं करते। न स्वयं भोजन पकाते हैं। गृहस्थ लोग अपने निज के लिए भोजन बनाते हैं, उसी में से थोड़ा-थोड़ा अनेक घरों में से लेकर साधु अपना निर्वाह कर लेते हैं। जैसे भौंरा अनेक फूलों में से थोड़ा-थोड़ा रस ग्रहण करके अपना काम चला लेता है, उसी प्रकार साधु किसी पर बोझ न डालते हुए अपनी उदरपूर्ति कर लेते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं:—

कोई बैठे हाथी घोड़ा, पालखी मंगाय के।
साधु चले पैंया पैंया, चिंटिया बचाय के॥

अर्थात् संसार में कोई हाथी पर बैठ कर चलता है, कोई घोड़े पर सवार होकर निकलता है और कोई पालखी मे बैठता है। मगर साधु पैदल चलते हैं और जीव जंतुओं को बचा-बचा कर चलते हैं। फिर—

ऊंच नीच सहे वचन जगत् के, क्षमाभाव चित लाय।
आशीर्वाद श्राप नहीं देते, नशा पता नहिं चाय।

जब साधु प्रयोजनवश अपने स्थान से बाहर निकलता है तो कभी कभी लोग मनमाने शब्दों का प्रयोग कर देते हैं। मगर साधु उन सब कर्कश, कठोर और अप्रीतिकर वचनों को सहन कर लेते हैं। वे कठोर शब्दों को उसी भाव से सुन लेते हैं जिस भाव से कोमल शब्दों को सुनते हैं। वे अपनी निंदा और स्तुति में समान भाव रखते हैं। स्तुति सुनकर हर्ष का अनुभव नहीं करते और निन्दा सुनकर विषाद नहीं मानते। सदैव समभाव में मग्न रहते हैं। कई लोग हमें 'अरे ढूंढिया, अरे ढूंढ़िया' आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। दूसरे साधुओं के लिए ऐसे शब्द बोले जाएँ तो वे चीमटा लेकर दौड़े कि कहने वाला कहना भूल जाय; मगर हम तो अपशब्द सुनकर भी क्षमाभाव रखते हैं। हम समझते हैं कि अपने आप शब्द में कोई शक्ति सुख-दुःख उत्पन्न करने की नहीं है। जब सुनने वाला किसी शब्द को दुःखजनक मानता है तभी शब्द दुःख उत्पन्न करता है। यही बात सुखजनक शब्द के विषय में है। साधु किसी शब्द को दुःखप्रद नहीं मानता तो कोई भी

शब्द उसे दुःख नहीं पहुँचा सकता । समता के शान्त सरोवर में अवगाहन करने वाला साधु अपने समभाव के यंत्र में समस्त शब्दों को सम बना लेता है । अतएव कोई भी शब्द उसके चित्त में विषम भाव उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होता ।

साधु का समभाव ऐसा बढ़ा हुआ होता है कि वह न किसी को आशीर्वाद देता है, न शाप देता है । भक्ति करने वाले को यह नहीं कहता कि–'जा, तेरे लड़का हो जायगा या तू धनी हो जायगा ।' इसी प्रकार निन्दा करने वाले को शाप भी नहीं देता ।

जो नीम के पत्ते खायगा उसका मुंह कड़ुवा हो जायगा और जो मिश्री खायगा उसके मुख से मिठास आयगी । प्रत्येक वस्तु अपना गुण आप ही प्रकट कर देती है । उसे प्रकट करने के लिए किसी के कहने-सुनने की आवश्यकता नहीं होती । इसी प्रकार जो संतों और महात्माओं की स्तुति करेगा उसे आप ही शुभ फल प्राप्त हो जायगा और जो निन्दा करेगा वह अशुभ फल का भागी होगा । इसके लिए आशीर्वाद और शाप देने की जरूरत ही नहीं है । जिसने भक्ति की है उसे फल मिले बिना नहीं रहेगा । सेवा का मेवा अवश्य मिलेगा ।

इसके अतिरिक्त साधु का एक बाह्य लक्षण यह है कि साधु कभी बीड़ी, गांजा, भंग या माजूम आदि नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करते । मांस-मदिरा आदि की तो बात ही दूर है । और–

मुंह पर सदा मुंहपत्ती बांधे, सच्चा ज्ञान सुनाय ।
चौथमल्ल ऐसे मुनियों के, चरणे शीश नमाय ॥

साधु मुंह पर सदा मुखवस्त्रिका बाँधे रहते हैं। भाइयो! खुले मुख बोलने से पाप होता है। मंदिरमार्गी भाई भी इस मान्यता से सहमत हैं। इसी कारण मंदिरमार्गी साधु भी मुखवस्त्रिका रखते हैं पर वे मुख पर न बाँध कर हाथ में रखते हैं। मगर कभी भी खुले मुख न बोलने का नियम भलीभांति तभी चल सकता है जब मुख-वस्त्रिका बंधी रहे।

साधु यथार्थ ज्ञान देता है—सत्य बात को ही प्रकाशित करता है। सर्वज्ञ वीतराग प्रभु ने जिस तत्व का जैसा निरूपण किया है, उसे उसी रूप में उपस्थित करना साधु का महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य है। उसमें अपनी ओर से मिलावट करके तत्त्व के स्वरूप को विकृत कर देने वाला व्यक्ति साधु तो क्या श्रावक भी नहीं हो सकता। और श्रावक को भी जाने दीजिए वह सम्यग्दृष्टि भी नहीं है। ऐसा व्यक्ति मिथ्यादृष्टि होता है।

हाँ, तो साधु की यह परिभाषा सुनेकर दुकान पर बैठा हुआ वह व्यक्ति भी जाने को तैयार हो गया। मगर उसी समय एक आदमी उसके पास आया उसने कहा—आप कहाँ जा रहे हैं? पहले यह तो देख लीजिए, बम्बई से तार आया है। वह तार देखने और तदनुसार कार्य करने में लग गया। उधर मुनिराज विहार कर गये। लोग दर्शन करके अपने-अपने घर लौट आए। उसने पूछा—मुनिराज हैं न? लोगों ने उत्तर दिया—नहीं, मुनि-राज विहार कर गये हैं। वह पछताने लगा—खेद! मैं नहीं पहुंच सका। उसकी ऐसी भावना होते ही वह उड़द की राशि से मोगर की राशि में आ गया। कृष्णपक्षी से शुक्लपक्षी हो गया। उसकी आत्मा में उज्ज्वलता के अंश प्रकट हो गये। मानों एक

करोड़ के कर्ज में से सिर्फ आठ आना चुकाना बाकी रह गया।

दर्शनमोहनीय कर्म की तीसरी प्रकृति समकितमोहनीय है। यह सम्यक्त्व की सर्वघातिनी नहीं, देशघातिनी है। मतलब यह है कि इस प्रकृति के उदय से सम्यक्त्व की उत्पत्ति में कोई बाधा नहीं पड़ती पर यह प्रकृति सम्यक्त्व को एकदम निर्मल नहीं होने देती। जब तक यह बनी रहती है, सम्यक्त्व में चल, मल और अगाढ़ नामक तीन दोष बने रहते हैं। श्री शांतिनाथ भगवान् शांति के कर्त्ता हैं, पार्श्वनाथ भगवान् हमारी रक्षा करें, यह हमारा शिष्य है, यह हमारे गुरु हैं, इस प्रकार की परिणामों में चंचलता उत्पन्न होते रहने से सम्यक्त्व में गाढ़ापन नहीं आने पाता। यही इस प्रकृति का कार्य है।

अनन्तानुबंधी कषाय हालांकि चारित्र मोहनीय कर्म की प्रकृति है, मगर वह चारित्र के साथ सम्यक्त्व का घात करती है। इस प्रकार वह दोहरी मार मारती है।

इन सात प्रकृतियों के क्षय से क्षायिकसमकित की प्राप्ति होती है। सम्यक्त्व के विषय में पिछले एक व्याख्यान में बहुत-सी बातें कह दी गई हैं। अतएव उन्हें दोहराने की आवश्यकता नहीं है। यहां सिर्फ इतना ही कहना है कि सम्यक्त्व ही भव-भ्रमण का अन्त करने वाला है।

सम्यक्त्व आत्मा का स्वरूप है। इसी कारण प्रभु से प्रार्थना की जाती है कि—हे प्रभो! मुझे सब में श्रेष्ठ क्षायिक-सम्यक्त्व प्रदान कीजिए। सच्चा मुमुक्षु वही है जो वीतराग भगवान से सांसारिक सम्पदा की आकांक्षा न करता हुआ, कुटुम्ब-

परिवार की कामना न करता हुआ, केवल आत्म शुद्धि की भावना रखता है। केवल आत्मशोधन के लिए की जाने वाली भक्ति, स्तुति या आराधना ही सच्चा और परिपूर्ण फल प्रदान करने वाली होती है। इसी को निष्काम भक्ति कहते हैं।

यहाँ एक बात स्पष्ट कर देने की आवश्यकता है। वह यह है कि क्या वीतराग भगवान् किसी भक्त को क्षायिक समकित, शुक्लध्यान आदि दे सकते है? क्या गुण दिये और लिये जा सकते हैं? अगर ऐसा नहीं है तो फिर भगवान् से इनको याचना करने से क्या लाभ है?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि भौतिक पदार्थों में ही लेने-देने का व्यवहार हो सकता है। आत्मा के गुण न किसी से लिये जा सकते हैं और न दिये जा सकते हैं। फिर भी भगवान् से इन गुणों को जो याचना की जाती है उसका अभिप्राय सिर्फ अपनी भावना को प्रकट करना है। वह सांसारिक पदार्थों की भावना न करता हुआ सिर्फ आत्मा के गुणों की प्राप्ति की ही भावना रखता है, यह बात उस याचना से प्रकट हो जाती है। अन्तर को प्रबल भावना शब्दों के रूप में व्यक्त हो जाती है।

दूसरी बात यह है कि आत्मिक गुणों की याचना करने से सांसारिक पदार्थों की ओर से रुचि हट जाती है। इस प्रकार की रुचि का हट जाना आत्मिक उन्नति में बहुत महत्त्वपूर्ण बात है।

तीसरी बात यह है कि विद्यार्थी, अध्यापक से ज्ञान प्राप्त करता है। ज्ञान विद्यार्थी की ही आत्मा में मौजूद है। अध्यापक

अपना ज्ञान विद्यार्थी को भेंट नहीं कर देता। ऐसा होता तो अध्यापक का ज्ञान कम हो जाता और किसी समय समाप्त भी हो जाता। मगर ऐसा नहीं देखा जाता। बल्कि हम देखते हैं कि अध्यापक ज्यों-ज्यों शिष्यों को ज्ञान देता है, अध्यापक का भी ज्ञान बढ़ता चला जाता है। इससे यह साबित होता है कि अध्यापक अपना ज्ञान निकाल कर विद्यार्थी को नहीं देता, बल्कि निमित्त बन कर विद्यार्थी का ज्ञान, जो स्वयं उसमें विद्यमान है, विकसित कर देता है। इसी प्रकार आत्मा के गुण स्वभाव से ही आत्मा में मौजूद हैं। मगर वे छिपे हुए हैं। जैसे सूर्य बादलों से ढंक जाता है, उसी प्रकार आत्मा के गुण कर्मों के कारण ढँके हुए हैं। भगवान् की स्तुति और भक्ति करने से कर्म ढीले पड़ते हैं, पतले हो जाते हैं या नष्ट हो जाते हैं। तब आत्मा के गुण भी प्रकट हो जाते हैं। इस प्रकार भगवान् की भक्ति से गुणों की प्राप्ति होती है। भगवान् से आत्मिक गुणों की याचना करना भी एक प्रकार की भक्ति है।

भाइयो ! पुत्र, कलत्र, धन सम्पत्ति आदि की कामना से प्रेरित होकर नहीं वरन् आत्मा के शुद्ध स्वरूप की उपलब्धि के लिए भगवान् की भक्ति करो। भगवद्भक्ति का यही सबसे बड़ा फल है। निष्काम भक्ति आत्मा को अनन्त सुख देने वाली है।

केवट ने राम, लक्ष्मण और सीताजी को परले पार पहुँचा दिया। सीताजी उसे आभूषण उतार कर देने लगीं। गरीब केवट के लिए उस आभूषण के लोभ को त्यागना क्या मामूली बात थी ? मगर नहीं, उसने निष्काम भाव से अपना फर्ज़ अदा किया था। उसने आभूषण लेना स्वीकार नहीं किया। क्या

आप में केवट जितना भी निष्काम भाव है ? आप राम-राम रटते हो और रास्ते में पड़ी कोई चीज मिल जाय तो उस पर फौरन झपटते हो ! क्या उस चीज को उठाने में अटकते हो ? मुफ्त का माल नहीं गटकते हो ? फिर राम-नाम लेने का क्या परिणाम ? कहावत है—'नाम लेवे राम का, काम करे हराम का' अगर आप राम जैसे काम करोगे तो राम जैसे बनोगे। फिर कल्याण होने में देरी नहीं लगेगी। आप भी राम की तरह संसार सागर से पार हो जाओगे।

जम्बूकुमार की कथा !

जरा जम्बूकुमार की निष्काम भावना को देखो। उनके घर में धन-सम्पत्ति की विपुलता थी। अभी-अभी दहेज के रूप में धन की वर्षा-सी हो गई है। एक नहीं, आठ पत्नियाँ उन्हें प्राप्त हुई हैं। सभी सुन्दरियाँ हैं और अन्तःकरण से जम्बूकुमार को चाहती हैं। मगर कुमार की कामनाएँ शान्त हो गई है। संसार की कोई भी वस्तु उन्हें अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकती। धन्य है ऐसी निष्काम भावना।

प्रभव अपने साथियों के साथ चला गया। वह धन लेने आया था मगर सर्वस्व देकर चला गया है। उसके चले जाने पर कुमार की पत्नियों को बड़ी निराशा हुई। आठों ही पत्नियाँ खड़ी होकर कहने लगीः—

नाथ ! आप पंचों के समक्ष पाणिग्रहण करके हमें लाये हैं। आपने हमारा हाथ पकड़ा है। अब इतनी जल्दी क्यों हाथ छुड़ाते हो ? हमारी लाज रखना आपका कर्त्तव्य है। हमारी

अवस्था का विचार कीजिए। हम किसके सहारे अपना जीवन व्यतीत करेंगी। नारी के लिए पति के अतिरिक्त और क्या गति है? कहा भी है:—

जिय बिनु देह, नदी बिनु वारी।
ऐसे हि नाथ पुरुष बिनु नारी॥

जैसे जीव के बिना शरीर शोभाहीन है और पानी के बिना नदी शोभाहीन है, उसी प्रकार पति के बिना स्त्री शोभाहीन है!

हे नाथ! यदि हमारी कोई भूल-चूक आपके ध्यान में आई है, हममें कोई अवगुण है, तो हमें बतलाइए। अगर कोई अपराध हमने किया है तो वह प्रकट कर दीजिए। किन्तु बिना अपराध त्याग कर देना न्यायी पुरुष का काम नहीं है। हमारे लिए सासरा क्या पीहर क्या, सब आपके पीछे ही है। फिर आप हमें क्यों छोड़कर जाते हो? आप ही तो हमारे जीवन के आधार हो। आप हमारा परित्याग कर देंगे तो हमारा जीवन किस प्रकार टिक सकेगा?

जम्बूकुमार ने कहा—प्रियाओ! तुम शिक्षा और संस्कारों से युक्त हो। फिर तुम्हारे हृदय में इतनी कायरता क्यों है? यह ठीक है कि नर और नारी एक दूसरे के सहायक हैं, एक दूसरे के अभाव की पूर्ति करते हैं, फिर भी नारी का अस्तित्व स्वतंत्र है, जैसे कि नर का है। तुम्हारे चित्त की दुर्बलता ही वास्तव में नारी की दुर्बलता है। चित्त की दुर्बलता दूर कर दो और फिर देखना कि तुम अनन्त शक्ति का स्रोत हो। तुमने अभी तक

अपनी शक्ति को पहचाना नहीं है। जिस दिन अपनी शक्ति को पहचान लोगी, उसी दिन तुम समझ जाओगी कि तुम्हारा जीवन किसी दूसरे पर निर्भर नहीं है। तुम स्वयं अपने जीवन का निर्माण करने वाली हो, तुम स्वयं ही अपने भविष्य को बना सकती हो; तुम्हारा भाग्य तुम्हारे ही हाथों में है। अतएव तुम अपने मन में से कायरता की भावना निकाल कर फैंक दो। भगवान् महावीर ने नारी जाति की शक्तियों को पहचान कर उन्हें सर्वोत्तम सिद्धि का अधिकार दिया है तो क्या तुम वर्त्तमान जीवन को सफलता पूर्वक व्यतीत करने की शक्ति भी अपने भीतर नहीं पाती हो ? दूसरे का सहारा लेकर जीवन व्यतीत करने वाला—फिर वह चाहे पुरुष हो या स्त्री-वास्तव में मृतक के ही समान है।

भद्राओ! मोहमयी दृष्टि को दूर करके जरा ज्ञान दृष्टि से विचार करो। मानव-जीवन एक बार नहीं, अनन्त बार प्राप्त हुआ है। अनन्त बार विवाह हुआ है। अनन्त बार संसार के भोग-उपभोग भोगे हैं। लेकिन इससे आत्मा में क्या तृप्ति हुई है ? अनादि काल से लगाकर आज तक भोग भोगने में अगर तृप्ति नहीं हुई तो इस बार भोग भोगने से आत्मा की तृप्ति हो जायगी ? नहीं, ऐसा नहीं होगा। आत्मा की तृप्ति नहीं होगी। भोग भोगने से अनन्त काल तक भी कभी तृप्ति नहीं हो सकती। होने वाली होती तो अभी तक हो चुकी होती।

इस प्रकार भोग जब तृप्ति प्रदान करने वाले नहीं हैं, बल्कि अतृप्ति ही बढ़ाते हैं तो फिर उनके प्रति इतना आकर्षण क्यों होना चाहिये ? ज्ञानियों ने कहा है कि ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की ६४ हजार

रानियाँ थीं। वह भोग भोगते-भोगते नहीं अघाया और अन्त में नरक में गया। अतएव मनुष्य के विवेक की सार्थकता इसमें है कि वह आत्मा की तृप्ति के वास्तविक साधनों को खोजे और उन्हीं को काम में लावे।

तृप्ति के साधन क्या हैं? त्याग में तृप्ति है, वैराग्य में तृप्ति है, सन्तोष में तृप्ति है। यह विवेक जिसे प्राप्त हो जाता है और जिसकी इस पर दृढ़ आस्था हो जाती है, वह भोगों को भुजंग के समान समझने लगता है। वह उनसे दूर रहने में ही कल्याण मानता है।

देखो, पहले तो मनुष्य भव ही मिलना मुश्किल है। फिर सद्गुरु का संयोग प्राप्त हो जाना और भी कठिन है। सौभाग्य से मुझे सुधर्मा स्वामी जैसे सद्गुरु मिल गये हैं। अतएव मैं इस अवसर को चूकना नहीं चाहता। मैं तो यह भी चाहता हूँ कि तुम भी अपने लिए इसी मार्ग पर चलने का निश्चय कर लो। इसी में तुम्हारा भी कल्याण है।

पत्नियों ने कहा—यह खूब रही। हम आपको रोकना चाहती हैं और आप हमें उलटा वैराग्य के कंटकाकीर्ण रास्ते पर ले जाना चाहते हैं! अभी आपको साधु बनने का शौक लग रहा है पर थोड़े ही दिनों में यह शौक समाप्त हो जायगा। अभी आपने नवयौवन अवस्था में पाँव रक्खा है। इस अवस्था में मन पर काबू रखना बहुत कठिन होता है। साधु बनने पर घर-घर भिक्षा लेने के लिए जाना पड़ेगा। अतएव -

पियाजी ! एक तो अर्ज म्हारी सांभलो जी ।
घर-घर मांगोला भीख, ममता नहीं मरेलाजी २
हो म्हारी जोड़ी रा सरदार छोड्यां नहीं सरेला जी ।
म्हारी बाजूबंद की लूम तोड्यां नहीं सरेला जी ।।

प्रियतम ! आहार लेने जाओगे तो तरह-तरह की स्त्रियाँ इन्द्रानियों की तरह खड़ी मिलेंगी। उस समय मनोविकारों को जीतना कठिन हो जायगा। मैं कहती हूँ, उसे सुनो और विचारो। नारियों के जाल में फंसकर कई महात्मा साधुपन छोड़-कर भाग गये हैं। उन्होने अपने जीवन को भ्रष्ट कर दिया है। वे न घर के रहे, न वन के रहे। दोनों दीन से गये। यह समय जोग लेने का नहीं है। खींचतान का समय नहीं है। समय आने से पहले, अपने पर जबर्दस्ती करके, संयम लेने का परिणाम अच्छा नहीं आता। इसलिए गृहस्थ होकर रहो और श्रावक धर्म का पालन करो। अभी आपके लिए यही योग्य है। समय आने पर हम सब साथ ही संयम ग्रहण करेंगे।

इसके सिवाय अभी आपके माता-पिता मौजूद हैं। माता-पिता की मौजूदगी क्या मामूली बात है ? ये तीर्थ के समान हैं। इसकी सेवा करो। माता-पिता की सेवा करना भी ऊँचे दर्जे का कर्त्तव्य है।

फिर पुत्र कुल का अवलम्बन होता है। अभी आपके एक भी पुत्र नहीं है। कम से कम एक पुत्र होने दीजिए। फिर उसे अपना भार सौंप कर दीक्षा ले लेना और अपना कल्याण

करना। प्राणनाथ! एक बात तो हमारी भी मान लो! निष्ठुरता मत धारण करो।

जम्बूकुमार बोले—तुम सब साथ-साथ अपनी बातें कहोगी तो मैं उत्तर कैसे दे सकूँगा? अच्छा हो कि तुम एक-एक अपनी बात कहो। तब उत्तर देने में मुझे सुभीता होगा और तुम्हें भी सन्तोष होगा।

यह बात सुन कर आठों चुप हो गईं। थोड़ी देर बाद उनमें से एक खड़ी हुई। उसका नाम समुद्रश्री था। उसने कहा—नाथ! आप किस तृष्णा में फंसे हो? लोक में कहावत है—'गोद का छोड़ कर पराये की आशा करना!' ऐसी आशा बुद्धिमान् नहीं करते। आखिर आप संयम क्यों लेना चाहते हैं? सुख प्राप्त करने के लिए ही तो? मगर कौन-सा सुख आपको यहाँ प्राप्त नहीं है? आप मोक्ष के सुख की आशा लेकर प्राप्त सुखों का परित्याग करने को तैयार हुए हैं, मगर मोक्ष सर्वथा परोक्ष है। किसने मोक्ष देखा है और कौन वहाँ के सुख देख कर आया है? आपकी बुद्धि तो किसान सरीखी है। सुनिये—

एक किसान था। उसका नाम बंग था। थली प्रान्त का रहने वाला था। उसकी सुसराल मेवाड़ में थी। उसने कभी सांठा नहीं देखा था। एक बार वह अपनी पत्नी को लेने गया। वह शाम को पहुँचा था, अतः रात्रि को सादा भोजन, जो पहले ही तैयार हो चुका था, करा दिया गया। सुबह गुड़ के मालपुवे बनाये गये। थाली सामने रक्खी तो उसमें एक मालपुवा था। थली के किसान ने पूछा—ओ कंई है? उसे उत्तर मिला—मालपुआ। उसने थोड़ा-सा तोड़ कर चखा तो मीठा मालूम हुआ। अतएव

उसने सारा का सारा मोड़-मरोड़ कर मुँह में रख लिया। औरतें गाती-गाती हँसने लगीं। फिर मालपुवे परोसे गये। सासू ने उंगली दिखला कर दो का इशारा किया। उसका आशय यह था कि मालपुवे के दो टुकड़े करके खाओ।

मगर किसान बुद्धिहीन था। उसने सासू की दो उंगलियाँ देख कर समझा एक साथ दो-दो मालपुवे खाने चाहिये। फिर क्या था! उसने दो मालपुवे एक साथ उठाये और मुँह में ठूँस लिये।

औरतों के लिए तमाशा हो गया। वे गीत गाना भूल गईं और हँसती-हँसती लोट पोट हो गईं। सब थली के किसान का मज़ाक उड़ाती हुई अपने-अपने घर लौट गईं।

जीमने के बाद जमाईजी को खेत पर ले जाया गया। खेत पर पहुंच कर उसने पूछा—आज जो चीज़ खाई, वह किस पेड़ में लगती है? उसके साले ने कहा—इस सांठे से बनाई जाती है। वह किसान आश्चर्य करने लगा और बोला—हमारे उधर यह चीज़ नहीं होती! तब साले ने एक सांठा काट कर चुसाया। उसे सांठा बहुत पसन्द आया। उसने कहा—मैं अपने साथ यह चीज़ ले जाऊँगा।

वह किसान दस-पन्द्रह दिन सुसराल में रहा। जब अपने घर रवाना हुआ तो एक-दो गाड़े सांठे भर कर साथ ले गया। उधर उसके खेत में बाजरी उग रही थी। बाजरी अभी पकी नहीं थी, पकने की तैयारी में थी। इसने घर वालों से कहा—मैं हज़ारों की कमाई की चीज़ लाया हूँ। अपने खेत में यही चीज़ बोएंगे।

घर वाले समझदार थे। उन्होंने कहा—ठीक है। पहले बाजरी की खड़ी हुई फसल ले लें, फिर इसे बो देना।

इसने कहा—नहीं, शुभस्य शीघ्रम्। अच्छे काम में देरी करना अच्छा नहीं है। हम तो अभी बोएंगे।

आखिर बंग नहीं माना। उसने बाजरी की फसल उखाड़ फैंकी और खेत साफ करके गन्ने बो दिये। कुए मे पानी कम पड़ा तो घर का जेवर बेच कर और गहरा खुदवाया। मगर बालू रेत में भी कभी गन्ने उगते हैं ? और फिर बोने का मौसिम भी तो अनुकूल होना चाहिए ! नतीजा यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में पौधे सूखकर नष्ट हो गये।

बंग दंग रह गया। घर वालों ने उसे तंग कर दिया। उन्होंने कहा—हमने पहले ही कहा था कि खड़ी फसल पहले ले लो, फिर गन्ने बोना। मगर हमारी बात नहीं सुनी। अब बाल-बच्चे बारह महीने क्या खाएंगे ? बंग भी अब पछता रहा था। मगर करता क्या ?

हे नाथ ! यह तो दृष्टान्त है। आपको भी साधुजी से ज्ञान मिला है। मगर याद रखिये, सांठा बोने चलोगे तो बाजरी भी हाथ से चली जायगी। अर्थात् ज्यादा सुख की अभिलाषा में यह प्राप्त सुख भी खो बैठोगे। अनिश्चित चीज के भरोसे निश्चित चीज को छोड़ना बुद्धिमत्ता नहीं है। मोक्ष के सुखों का क्या पता है कि वह मिलेंगे या नहीं ? पर आज जो सुख आपको प्राप्त हैं वे तो हाथ मे चले ही जाएंगे। कहा भी है—

यो ध्रुवाणि परित्यज्य, अध्रुवाणि निषेवते ।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति, अध्रुवं नष्टमेव हि ॥

अर्थात्—जो मनुष्य निश्चित–हाथ में आई चीज को त्याग कर अनिश्चित चीज की आशा करता है, वह दोनों से हाथ धो बैठता है। अनिश्चित तो नष्ट है ही, निश्चित भी नष्ट हो जाती है।

हे प्रियतम ! मेरी इस हितकर सलाह पर विचार करो और हम लोगों पर भी दया करो। आप उतावल करेंगे और हमारी बात पर ध्यान नहीं देंगे तो आपकी दशा भी बंग किसान के समान होगी। बंग को बाद में पश्चात्ताप हुआ था, मगर उस पश्चात्ताप का कोई परिणाम नहीं निकला। इसी प्रकार आपका पश्चात्ताप भी वृथा जायगा।

जैसे रेतीली भूमि में सांठा नहीं उगते, उसी प्रकार आप के समान अत्यन्त सुकुमार शरीर से संयम भी नहीं पाला जा सकता। संयम के लिए कठोरता चाहिए, सहनशीलता चाहिए। वह आप में कहाँ है ? सूरज की धूप को देखकर ही कुम्हला जाने वाला कैसे आतापना लेगा ? अगर आप मेरी सलाह मानेंगे तो आपको और हम लोगों को भी आनन्द ही आनन्द होगा।

स्थान–जोधपुर }
ता० ३०-८-४८ }



कर्त्तव्याकर्त्तव्य-विवेक



स्तुतिः—

उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्नाः,
शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः
त्वत्पादपङ्कजरजो ऽमृतदिग्धदेहा-
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं कि:—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन्! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय? भगवन्! आपके गुण कहाँ तक गाये जाएँ?

भगवन्! यदि किसी पुरुष के जलोदर जैसी भयानक बीमारी हो गई हो और पेट में पानी भर जाने से हाथ पैर गल गये हों और वह शोचनीय दशा को प्राप्त हो गया हो—मरणासन्न

हो गया हो-वैद्यों ने बीमारी को असाध्य कह कर चिकित्सा करना छोड़ दिया हो; किन्तु वही पुरुष अगर भगवान् के चरण कमल की धूल लेकर अपने शरीर पर मल ले तो अनायास ही उसकी सारी बीमारियाँ दूर हो जाती हैं। वह पुरुष कामदेव के समान सुन्दर शरीर वाला हो जाता है। भगवान् के चरण-कमल की धूल में ऐसी शक्ति है। उन्हीं भगवान् ऋषभदेव को हमारा बार-बार नमस्कार है।

भाइयो! जब अन्तरंग कारण पाप का उदय और बहिरंग कारण अपथ्य-सेवन आदि का संयोग मिलता है तो कई प्रकार की बीमारियाँ लग जाती हैं। बीमारियाँ अनगिनती हैं। उनमें से जलोदर की बीमारी भी एक है। जलोदर सोलह महारोगों में से एक है। आयुर्वेद के ग्रंथों के अनुसार यह बीमारी प्रायः जूं के खा लेने से हो जाती है।

कई-एक स्त्रियों और पुरु .. के सिर में जूं पड़ जाती हैं। उनके माथे में जूं किलबिलाती रहती हैं। वे बार-बार अपना माथा खुजलाती हैं। रसोई बनाते समय हाथ से सिर खुजलाती हैं, तब उनके नाखूनों में जूं भर जाती है और वह गीले आटे में मिलकर खाने वाले के पेट में चली जाती है। पाप का उदय होता है और झटपट अनुकूल निमित्त भी मिल जाता है।

विवेकवान् और प्रमादहीन पुरुष और स्त्रियाँ ऐसा अवसर ही नहीं आने देतीं, जिससे गंदगी के कारण कोई अनर्थ उत्पन्न हो।

ज्यादातर बीमारियाँ पेट के द्वारा उत्पन्न होती हैं। पेट में कोई जहरीला जानवर चला जाय तो बीमारी खड़ी हो जाती है।

जब दिन में भी पूरी तरह सावधानी रक्खे बिना सूक्ष्म जन्तु नजर नहीं आते तो रात्रि में तो आ ही कैसे सकते हैं ? रात्रि में भोजन करने से क्या हाल होता है ? जरा सुनिये—

जलोदर उत्पन्न होए जूं के पड़िया पेट।
मुख में जाये मक्षिका, वमन करावे नेट॥
वमन करावे नेट ठेट तज मन ढेटाई।
बाल-करे सुर भंग कोढ़ मकड़ी से थाई॥
कपाली सड़-सड़ मरे बिच्छू के संबंध।
रतन कहे तज मानवी रात्री भोजन अंध॥

जूं खाने से पेट में जलोदर रोग हो जाता है। इससे हाथ-पैर गलते जाते हैं और पेट बढ़ता जाता है। भोजन के साथ मक्खी पेट मे चली जाय तो तत्काल वमन हो जाता है। कांटा खाने में आ जाय तो कण्ठ में व्यथा होती है। मकड़ी खा लेने से कोढ़ हो जाता है। कोई-कोई मकड़ी ऐसी जहरीली होती है कि आदमी मर ही जाता है! शरीर पर सफेद-सफेद दाग अकसर मकड़ी के खाने से ही पड़ते हैं। कदाचित भोजन में बिच्छू मिल जाय और वह पेट में चला जाय तो कपाल सड़ जाता है, या वह तालु को फोड़ देता है। यह सब बीमारियाँ प्रायः उन्हीं को होती हैं जो रात्रि में भोजन करते हैं अथवा दिन में असावधानी से खाते हैं। अतएव रात्रि में भोजन करने का सर्वथा ही त्याग कर देना उचित है और दिन में भी असावधान होकर—भोजन को देखे-भाले बिना नहीं खाना चाहिए।

संसार में सात सुख माने जाते हैं। उन सब में पहला सुख निरोगी काया है। अगर शरीर निरोग हुआ तो दूसरे सुख भोगे जा सकते हैं। शरीर अगर रोगों का घर बन गया तो कोई भी सुख नहीं भोगा जा सकता। शरीर स्वस्थ होगा तो दुनिया के काम भी ठीक तरह होंगे और धर्म-ध्यान भी हो सकेगा। शरीर का बिगड़ना जीवन का बिगड़ना है शरीर रुग्ण हो जाने पर सारी जिंदगी खराब हो जाती है। जीवन भार मालूम पड़ता है। चित्त व्याकुल रहता है। न खाने-पीने को मन होता है और न धर्म-ध्यान की तबियत चाहती है। अतएव सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए शरीर की स्वस्थता अनिवार्य है और शरीर की स्वस्थता के लिए भोजन सम्बन्धी विवेक अनिवार्य है। भोजन सम्बन्धी विवेक में रात्रि भोजन के त्याग का स्थान प्रधान है। अतएव रतनचन्दजी महाराज कहते हैं कि रात्रि का भोजन अंधा होता है। रात्रि में भोजन के साथ कुछ भी जीव-जन्तु खाया-पीया जा सकता है।

भाइयो! रात्रि में भोजन करना बड़ा भारी पाप है। रात्रि में भोजन करने वाले को क्या पता चलेगा कि भोजन में दाल में कीड़ी है या जीरा है? वह तो कीड़ियों को भी जीरा समझकर खा जायगा। इसीलिए कहा है:—

तजो तुम रात का खाना, इसी में पाप भारी है।

जो मनुष्य रात्रि में चारों प्रकार के आहार का त्याग कर देता है, उसे बारह महीने में छह महीने की तपस्या का फल मिलता है। उसकी आधी जिंदगी तप में व्यतीत होती है। अत-

एव किसी भी स्थिति में रात्रि भोजन नहीं करना चाहिए।

शारीरिक दृष्टि से भी रात्रिभोजन त्याज्य है। भोजन के पचने में कम से कम ३-४ घन्टे लगते हैं। अगर रात्रि मे भोजन किया जायगा तो उसके हजम होने से पहिले ही सोना पड़ेगा। इससे स्वस्थ और गहरी नींद नहीं आएगी तथा पानी की कमी रह जायगी। हजम होने से पहिले ही सो जाओगे तो खाना पचाने के लिए पेट की मशीन को बहुत ज्यादा मिहनत करनी पड़ेगी और इससे मशीन जल्दी कमजोर हो जायगी। जो लोग सूर्यास्त से पहले ही खा लेते हैं, उनके पेट की मशीन को विश्राम मिल जाता है। गहरी नींद आने के कारण वह स्वस्थ रहते हैं।

कई लोगो की आदत इतनी खराब हो जाती है कि चाहे दिन मे कोई काम न हो, फिर भी वे रात्रि में ही भोजन करते हैं। ऐसे लोग अपने धर्म को और स्वास्थ्य को अपने हाथों नष्ट करते है। कहा है:—

चिड़ी कमेड़ी कागला, रात चुगण नहीं जाय।
नर देह धारी मानवी, रात पड्या किम खाय?

चिड़िया और कौवा जैसे व्यक्ति भी रात के समय चुगने नहीं निकलते तो हे मनुष्य! तू क्या उनसे भी गया-बीता है? तूने मनुष्य का उत्तम शरीर पाया है और पक्षियों की अपेक्षा अच्छी बुद्धि भी पाई है, सो क्या इसलिए कि तू उनसे भी गये बीते काम करे? अरे समझदार प्राणियों के सरदार! तू रात्रि पड़ने पर भी खाने से नहीं चूकता?

भाइयो ! एक कामदार साहब के घर भिंडी का शाक बना। उसमें संयोगवश छिपकली पड़ गई और उसमें मसाला लिपट गया। जब वे भोजन करने बैठे तो उनकी थाली में शाक परोसा गया ! छिपकली भी थाली में आ गई। कामदार साहब भोजन करने लगे। मगर किसी तरह उन्हे शंका पड़ी। गौर से देखा तो पता चला कि भिंडियों के साथ छिपकली भी थाली में विराजमान है ! उस दिन से रात्रि भोजन से उन्हें ऐसी घृणा हुई कि फिर कभी उन्होंने रात में नहीं खाया।

रात्रि का भोजन राक्षसी भोजन कहा गया है। वह अभक्ष्य है। अतएव स्वास्थ्य की रक्षा और धर्म की रक्षा के लिए रात्रि भोजन का त्याग करना आवश्यक है। जब मारे जीवन का आधार भोजन है तो यह समझना कठिन नहीं होना चाहिए कि भोजन के सम्बन्ध में कितनी सावधानी की आवश्यकता है। भोजन की जांच करने के लिए प्रकृति की ओर से कितने ही डाक्टर नियुक्त किये गये हैं।

सब से पहले कान सुनकर चीज की परीक्षा करते है। बाजार में जो चीज आई है, वह अच्छी है या नहीं, यह बात पहले अक्सर कानों को मालूम होती है। जब कान जान जाते हैं कि अमुक चीज अच्छी है तो वे मनुष्य को उसे खरीदने के लिए भेजते हैं। मगर वहाँ आँखें कहती है कि अब हम भी परीक्षा करेंगी कि वास्तव में यह चीज अच्छी है या बुरी ? इसके बाद नाक साहब का काम शुरू होता है। वे उसे सूंघ कर जाँचते हैं। इस प्रकार कई डाक्टरो द्वारा पास कर देने पर भोजन-सामग्री घर पर आती है। भोजन तैयार होता है। अब यदि भोजन

अच्छा नहीं बना है तो प्रथम तो होठ ही जवाब दे देते हैं। अगर कौर मुंह में ले लिया तो दांत और जीभ उसे पास करेंगे। कटुक, कसायला या कंकरीला हुआ तो फौरन थूक दिया जायगा। इस पर भी यदि चबा लिया गया तो गले में जो कागला है, वह उसे 'पास' करता है। अटकने वाली चीज़ होगी तो वह वापिस कर देगा। फिर भी कदाचित् पेट मे पहुँच गया और मशीन ने पास नहीं किया तो वह खराब खाना किसी भी रास्ते से बाहर फैंक दिया जाता है।

इतने डाक्टरों के होने पर भी मनुष्य अपनी हवस के कारण ध्यान नहीं देता। वह अभक्ष्य क्या है और भक्ष्य क्या है, इस बात का विचार किये बिना ही अपने पेट को अन्न का भंडार बनाता चला जाता है। इतना बड़ा दिन पड़ा है! इसमें खाते-खाते भी नहीं अघाता तो रात्रि में भी ठूंसता है!

भाइयो! मनुष्य वही कहलाता है जो कृत्य-अकृत्य, भक्ष्य-अभक्ष्य, सत्य-असत्य, हित-अहित और भाव-अभाव के सम्बन्ध में विवेकपूर्वक मनन करता है। कृत्य-अकृत्य को कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य भी कहते हैं। जिसने कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेक प्राप्त कर लिया है, उसका इहलोक और परलोक सुधर गया समझो। इसके विपरीत जिसे कार्य-अकार्य का भान नहीं हुआ, वह चाहे दर्जनों भाषाएँ क्यों न पढ़ चुका हो, मूढ ही है। उसका समस्त ज्ञान अज्ञान है। सब पढ़ना-लिखना वृथा है। नीतिकार कहते हैं:—

कर्त्तव्यमेव कर्त्तव्यं, प्राणैः कण्ठगतैरपि।
अकर्त्तव्यं न कर्त्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि॥

प्राण जाने की नौबत आ जाय तो भी मनुष्य को कर्त्तव्य— करने योग्य प्रशस्त पुण्य कार्य, करना चाहिए। और कंठ में प्राण आ जाने पर भी अकर्त्तव्य कर्म कदापि नहीं करना चाहिए।

अब यह प्रश्न खड़ा होता है कि कर्त्तव्य कर्म क्या है और अकर्त्तव्य कर्म कौन-से है ? प्रश्न सचमुच जटिल है, क्योंकि एक मनुष्य जिसे कर्त्तव्य समझता है, दूसरा उसी को अकर्त्तव्य समझता है। और दूसरा जिसे अकर्त्तव्य मानता है, दूसरा उसे कर्त्तव्य मानता है। इसके अतिरिक्त एक अवस्था मे जो कार्य करने योग्य समझा जाता है, वही कार्य दूसरी अवस्था में-भिन्न परिस्थिति उपस्थित होने पर न करने योग्य प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति में कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का निर्णय कर लेना एकदम सहज नहीं है।

इस सम्बन्ध में दो बातें कही जा सकती हैं। परिस्थिति के अनुसार कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य बदल सकता है, पर उनके आधारभूत सिद्धान्त नहीं बदलते। उन सिद्धान्तों के आधार पर ही कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। यह ज्ञान प्राप्त करने के लिए किसी पाठशाला या महाविद्यालय में जाने की आवश्यकता नहीं है, किसी गुरु के द्वार खटखटाने की भी जरूरत नहीं है। आपके पास, और मनुष्य मात्र के पास, हृदय की कसौटी मौजूद है। हृदय की कसौटी पर कस कर देखलो तो पता चल जायगा कि कर्त्तव्य क्या है और अकर्त्तव्य क्या है ? तुम्हारा पड़ौसी किसी वेदना के कारण छटपटा रहा है। उसे देखकर तुम्हारा हृदय ही तुम्हारा कर्त्तव्य निर्देश कर देगा। वेदना से कराहते हुए और छटपटाते हुए किसी मनुष्य को देखकर अपना कर्त्तव्य

निश्चित करने के लिए क्या पुराणों और पोथियों के पन्ने टटोलने जाओगे ? अथवा गुरुजी से सलाह माँगने दौड़ोगे। नहीं, उसी समय तुम्हारे हृदय का शास्त्र और भीतर बैठा हुआ गुरु तुम्हें तुम्हारा कर्त्तव्य प्रदर्शित कर देगा। इस प्रकार कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का निश्चय करने के लिए तुम्हें कहीं जाने की जरूरत नहीं है। अपने शुद्ध हृदय की ध्वनि को ही सुनो, अन्तर्नाद की ओर कान दो बस निर्णय तुम्हें मिल जायगा।

कभी-कभी ऐसे प्रसंग भी आ जाते हैं कि हृदय स्पष्ट निर्णय नहीं दे सकता। उस समय कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का विवेक प्राप्त करने के लिए महापुरुषों की वाणी का सहारा लेना चाहिये। महापुरुष बतला गये हैं कि असुक कार्य कर्त्तव्य है और असुक अकर्त्तव्य है। यह कसौटी अभ्रान्त कसौटी है। शास्त्रों से कभी किसी को अपने कर्त्तव्य के विषय में धोखा नहीं हो सकता। शास्त्रों में कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की विस्तृत और विशद विवेचना तो है ही, दोनों के फल भी बतलाये गये हैं और साथ ही उदाहरणों द्वारा यह भी दिखलाया गया है कि कर्त्तव्य कर्म करने वालों की क्या स्थिति हुई है और अकर्त्तव्य करने वालों की कैसी दशा हुई है।

मतलब यह है कि कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के सम्बन्ध में दोनों कसौटियाँ आपको प्राप्त हैं। इनमें से जहाँ जो कसौटी उपयुक्त हो, उसी पर कस कर आप निर्णय कर सकते हैं और अकर्त्तव्य से बच सकते हैं।

तीर्थङ्कर भगवान् राज्य को त्याग कर जब मुनिव्रत अंगीकार करते हैं तो क्या प्रतिज्ञा लेते हैं ? 'सव्वं अकरणिज्जं जोगं

पच्चक्खामि।' अर्थात् अब मैं मन से, वचन से और काय से कोई भी अकर्त्तव्य कर्म नहीं करूंगा, न किसी से कराऊँगा और न करने वाले का अनुमोदन करूँगा। तीर्थंकर भगवान् के मार्ग का अनुसरण करने वाले महापुरुष आज भी यही प्रतिज्ञा लेते हैं। कितनी महान् प्रतिज्ञा है? कितना कठोर उत्तरदायित्व है? इसीलिए तो ऐसी प्रतिज्ञा लेने वाले और उसका पूरी तरह पालन करने वाले जगत् के वन्दनीय और पूजनीय होते हैं!

कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की तरह भक्ष्य और अभक्ष्य का विवेक प्राप्त करना भी मनुष्य के लिये आवश्यक है। भोजन तीन प्रकार का होता है—सात्विक, राजस और तामस। सात्विक भोजन सद्गुण बढ़ाने वाला, राजसी भोजन रजोगुण की वृद्धि करने वाला और तामस भोजन तमोगुण को बढ़ा देने वाला होता है।

गांजा, बीड़ी, सिगरेट, तमाखू, चरस, चंडू, भंग, शराब और मांस यह सब तमोगुण बढ़ाने वाली वस्तुएँ हैं, इनका सेवन करने वाले मनुष्य की प्रकृति तमोगुणमयी बन जाती है। अतएव यह सब त्याज्य हैं।

जगत् में राम और कृष्ण को कितनी गहरी श्रद्धा और ऊँची भावना से देखा जाता है? भैरों और भवानी को वैसी दृष्टि से नहीं देखा जाता। गाँव-गाँव में राम और कृष्ण के मंदिर मौजूद हैं। वहां भाव-भक्ति से उनकी भेंट-पूजा होती है, लेकिन उनके मन्दिरों में तामसिक भोजन के पदार्थ नहीं चढ़ाये जाते हैं। न गांजा चढ़ाया जाता है, न भंग, चंडू, शराब आदि ही चढ़ाये जाते हैं। ५६ भोगों में भी इन चीजों की गणना नहीं की गई है। अतएव अगर आप राम के भक्त हैं तो आपको भी

इन चीजों का त्याग कर देना चाहिए। अगर मांस, मदिरा आदि चीजें अच्छी होतीं तो मंदिरों में क्यों नहीं चढ़ाई जातीं? ये खराब चीजे हैं, इसी कारण तो इन्हें मंदिरों मे नहीं जाने दिया जाता। भाइयो! जब यह चीजेंमंदिरों मे भी नहीं घुस सकतीं तो वैकुण्ठ में कैसे घुस सकेंगी? और इनका सेवन करने वाले वैकुण्ठ में कैसे घुस सकेंगे? थोड़ी देर के लिए वैकुण्ठ की बात जाने दीजिए। यह चीजें इतनी अधिक हानिकारक हैं कि इस शरीर को भी नष्ट कर डालती हैं। इनका सेवन करने वाले नाना प्रकार की बिमारियों से पीड़ित होकर, दुःख भोगते हुए मरते हैं। भाइयो! यह अभक्ष्य चीजें हैं। छोड़ने योग्य है।

मांस और मदिरा से तो बहुत से भाई बचे हुए हैं, मगर बीड़ी, सिगरेट और तमाखू ने घर-घर में अपना डेरा डाल रक्खा है। लेकिन—

ईने गंडकड़ा नी खावे, वे तो देखी दूरा जावे।
थाँने कैसे या भावे तम्बाखुड़ी,
मत पीओ मारा छैल तम्बाखुड़ी ॥टेर॥

देखो, इस तम्बाकू को कुत्ते भी नहीं खाते हैं। आप कुत्ते से भी गये-बीते तो नहीं हैं, फिर भी तम्बाकू का सेवन करते हैं? तुम राम के भक्त हो, मनुष्य हो। रामजी की मूर्ति के आगे भी जो चीज नहीं चढ़ सकती, उसका सेवन करके तुम रामजी के पास कैसे पहुँच सकोगे? भाइयो! अगर तुम राम के सच्चे भक्त हो और मनुष्य हो और अपनी ज़िंदगी को सुखमय बनाना चाहते

हो तो आज, इसी समय बीड़ी और तंबाकू का सेवन करना त्याग दो।

(यह उपदेश सुनकर बहुत—से जैन और जैनेतर भाइयों ने तमाखू का त्याग किया)

और सुनोः—

अणो तंबाकू के नेड़ो नहीं आवे छे गधेड़ो।
थाने कैसे सुहावे तमाखुड़ी......

भाई! तंबाकू ऐसी गंदी चीज है कि गधे भी उसके पास नहीं फटकते। किसी मनुष्य को 'गधा' कह दिया जाता है तो वह अपना भारी अपमान समझता है और कहने वाले का सिर फोड़ देने के लिए तैयार हो जाता है। मगर वही आदमी गधे से गये—बीते काम करता है! गधा भी जिस गंदी चीज का सेवन नहीं करता, उसे भी खुशी-खुशी सेवन करता है! यह कितनी अद्भुत बात है।

जो तमाखू खाता है वह घर के कोने में पिच—पिच करके थूकता है और सभ्य एवं शिष्ट लोगों के समुदाय में, सभा—सोसाइटी में नहीं बैठ सकता। तमाखू पीने वाले का घर श्मशान सरीखा दिखाई देने लगता है। जो सूंघता है उसके कपड़े गंदे रहते हैं अतएव तमाखू का खाना, पीना और सूंघना, सभी कुछ बुरा है। किसी भी रूपमें इसका सेवन नहीं करना चाहिए।

औरतें अपने पति से कहती हैं:—

देखो चिनगारी उड़ जावे,

थारो धोतियो बल जावे,
तो भी नहीं छिटकावे तम्बाखुडी ॥

हे पतिदेव ! चिलम पीते समय जब कभी चिनगारी उड़ जाती है तो तुम्हारो धोती जल जाती है, कुर्त्ता जल जाता है और कभी-कभी तो घर में आग लग जाती है ! एक बजाज की दुकान में इसी तरह आग लग गई थी और उसका ४०-५० हजार का नुकसान हो गया था।

तमाखू के धुएँ से मकान ही काला नहीं हो जाता है बल्कि दिल भी काला हो जाता है, फैंफड़े भी जल कर खाक हो जाते हैं।

अरे नान्या का भाईजी !
तमाखू मत पीओ वरजाँ आपने ॥ टेर ॥
कहताँ आवे लाज घणी पण, थाँ लेवो जब श्वास।
मुंडा ने तो टेढो राखो, म्हाने आवे वास ॥

देख लो, गुलाबबाई कहती हैं कि—हे नान्या (नन्हें) का भाईजी ! तमाखू मत पीओ। हमें कहते लाज आती है, पर क्या करें ? कहे बिना भी नहीं रहा जाता। जब आप बातचीत करते हो और आपके मुंह से सांस निकलती है तो ऐसा मालूम होता है जैसे अजमेर की लाखन कोठड़ी की नाली का मुंह खोल दिया हो ! और—

पीला दाग लग्या हाथां के पीले पड गए दाँत।
धाँसी से नहीं आवे नींद या म्हाने सारा रात ॥

तमाखू का धुंआ लगते रहने के कारण आपके हाथों में पीले दाग पड़ गये हैं और आपके दांत भी पीले पड़ गये हैं। नहीं तो दांत ऐसे साफ रहने चाहिये जैसे मोगरे का फूल ! इसके अतिरिक्त आप रात में खों-खों करते रहते हो। इस कारण मुझे नींद नहीं आती। हे स्वामी ! तमाखू बहुत बुरी वस्तु है। लायक आदमी ऐसी गंदी चीजों को काम में नहीं लेते। और:—

पी के बिगाड़े आंगणो मरे खूणो बिगाड़े खाय।
वस्त्र बिगाड़या सूंघने सरे कहूँ कठा लग ताय॥

इस प्रकार से हानिकारक होने पर भी लोग क्यों तमाखू का सेवन करते हैं ? इस संबंध में एक कवि ने कहा है:—

न स्वादु नौषधमिदं न च वा सुगन्धि,
नाक्षिप्रियं किमपि शुष्कतमाखुपत्रम्।
किं चाक्षिरोगजनकं च तदस्य भोगे,
बीजं नृणां न हि व्यसनं विनाऽन्यत्।

अर्थात्—लोग अच्छे स्वाद वाली वस्तु का सेवन करते हैं, मगर तमाखू स्वाद में अच्छी नहीं होती। स्वाद न होने पर किसी-किसी चीज का औषध के रूप में सेवन करना पड़ता है, मगर तमाखू किसी रोग की दवा भी नहीं है। उसमें किसी तरह की सुगन्ध भी नहीं है और न वह देखने में ही अच्छी लगती है। उलटे उसके सेवन से आँखों की बीमारी हो जाती है। इस प्रकार अच्छा रूप, अच्छा रस और अच्छा गंध न होने पर

भी रोगोत्पादक होने पर भी लोग तमाखू का सेवन क्यों करते हैं ? कवि कहता है—तमाखू के सेवन का एक मात्र कारण कुटेव ही है। कुटेव के कारण ही लोग इसका सेवन करते हैं। इसके सिवाय और कोई भी कारण नजर नहीं आता।

एक दूसरे संस्कृत भाषा के कवि ने तमाखू के सम्बन्ध में बड़ी सुन्दर बातें कही हैं। कवि कहता है:—

भ्रातः कस्त्वं तमाखुर्गमनमिह कुतो वारिधेः पूर्वपारात्।
कस्य त्व दण्डधारी न हि तव विदित श्रीकलेरेव राज्ञः।
चातुर्वर्ण्यं विधात्रा विविधविरचितं ब्रह्मणा धर्महेतो-
रेकीकर्तुं बलात्तन्निखिलजगति रे शासनादागतोऽस्मि ॥

इस श्लोक में प्रश्नोत्तर के रूप में कवि ने तमाखू का परिचय दिया है और वह परिचय आलंकारिक भाषा में है। किसी ने तमाखू से पूछा—भाई साहब आप कौन हैं ?

तमाखू—मैं तमाखू हूँ।

प्रश्नकर्त्ता—आप कहाँ से पधारे हैं ?

तमाखू—समुद्र पार से आ रहा हूँ।

प्रश्नकर्त्ता—आप किसके दण्डधारी—सिपाही या सैनिक हैं ?

तमाखू—आपको यह भी नहीं मालूम ! मैं राजा कलिकाल का सिपाही हूँ। ब्रह्माजी ने अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए चार वर्ण स्थापित किये हैं। मैं जबर्दस्ती इन सबको एक करने के लिए कलिराज की आज्ञा से यहाँ आया हूँ।

कहने का आशय यह है कि तमाखू ने ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आदि के भेदभाव को भी मिटा दिया है। यों ब्राह्मण दूसरे के हाथ से छुई हुई मटकी का पानी नहीं पीता, मगर दूसरे की पीई हुई चिलम को बिना संकोच किये पी जाता है! दूसरे के मुँह लगी चिलम को अपने मुँह से लगा लेता है।

कवि ने यहाँ तमाखू के इतिहास पर भी प्रकाश डाला है। तमाखू मूलतः भारतवर्ष की चीज नहीं है। प्राचीन काल में इस आर्यव्रत की पवित्र भूमि में तमाखू के पौधे नहीं होते थे। उस समय के आर्य लोग इस विषैले पौधे से परिचित नहीं थे। कहते हैं, यह पौधा मुगलकाल में, समुद्र पार से इस देश में आया। धीरे-धीरे इसका प्रचार बढ़ता गया और आज इसका सर्वव्यापी प्रचार हो गया है। आज क्या अमीर और क्या गरीब, सब इसके चंगुल में फंस गये हैं। तमाखू बड़ी ही जहरीली चीज है। वैज्ञानिकों ने इसके जहर को बहुत हानिकारक बतलाया है। विस्तार से कहने का वक्त नहीं है। फिर भी इसके जहरीलेपन को प्रकट करने वाली एक उक्ति आपको सुनाता हूँ। संस्कृत के एक तीसरे कवि कहते हैं:—

श्रीकृष्णः पूतनायाः स्तनमलमपिबत्कालकूटेन पूर्णं,
प्रस्कन्नं भूप्रदेशे किमपि च पिबतो यत्तदा तस्य वक्त्रात्।
तस्मादेषा तमाखुः सुरवरपरमोच्छिष्टमेतद्दुरापं,
स्तुत्वा नत्वा मिलित्वा ह्यनिशमतिमुदा सेव्यते वैष्णवाग्र्यैः॥

पुराणों की कथा के अनुसार श्रीकृष्ण ने पूतना राक्षसी का स्तनपान किया था। उसके स्तन कालकूट नामक अत्यन्त

ही भयंकर विष से परिपूर्ण थे। कृष्णजी पूतना के स्तनों का वह कालकूट बिष पीने लगे तो पीते समय कुछ बूंद जमीन पर भी पड़ गये। उसी प्राणहारी विष से इस तमाखु की उत्पत्ति हुई है।

कहा जा सकता है कि यदि तमाखु इतनी विषैली चीज है तो बड़े-बड़े ज्ञानी वैष्णव लोग इसका सेवन क्यों करते हैं? इस प्रश्न का उत्तर कवि ने दिया है—इसे देवों के देव विष्णु भगवान् का उच्छिष्ट समझ कर और दुर्लभ वस्तु समझ कर वे आपस में मिल कर और उसकी तारीफ करके सेवन करते हैं।

यहाँ अन्त में कवि ने भक्त कहलाने वाले और तमाखू का सेवन करने वाले वैष्णवों का मजाक उड़ाया है! परन्तु पूर्वार्ध से स्पष्ट है कि तमाखू कितनी जहरीली चीज है। कवि उसे कालकूट का ही नीचे गिरा हुआ अंश बतला कर उसकी विषाक्तता को भलीभांति प्रकट कर रहा है।

तमाखू के सेवन से स्मरण शक्ति का ह्रास हो जाता है, वीर्य में पतलापन आ जाता है और जीवनी शक्ति की कमी हो जाती है। इस प्रकार सभी दृष्टियों से तमाखू हानिकारक है। भाइयो! कवि के कथनानुसार तमाखू कलिकाल का सिपाही है, ऊँच-नीच का भेद मिटाने आया है, यह पूतना के स्तनों का कालकूट जहर है, इसके चंगुल में मत फंसो। इससे दूर ही दूर रहो। इसका सेवन न करने में ही तुम्हारा कल्याण है। तमाखू से बचोगे तो अनेक रोगों से बच जाओगे।

भाईयो! आज पर्युषण महापर्व का प्रथम दिन है। पर्युषणपर्व जीवन का महामंगलमय पर्व है। यह हमारे कल्याण का

पर्व है। यह पर्व क्या संदेश लेकर आया है ? प्रत्येक पर्व का अलग-अलग संदेश होता है तो इस पर्व का संदेश कौन सा है ? किस बात की घोषणा करने के लिए, हृदय में कौन-सी अनूठी प्रेरणा जगाने के लिए इसका आगमन हुआ है ? सुनिये:—

पर्यु षण पर्व आज आया, कि मित्रो पर्व आज आया।
सब जीवों की करो दया यह संदेशा लाया ॥

यह पर्व सब पर्वों में पवित्र है। पर्वाधिराज है। आठ दिन की अठाई का महोत्सव है। इसलिए:—

आठ दिवस तक प्रेम धरी ने बायां और भाया।
खूब करो धर्मध्यान खास सद्गुरु ने फरमाया ॥

इन आठ दिनों मे धर्म के प्रति प्रेम जागृत करके भाइयों और बाइयों को खूब धर्मक्रिया करनी चाहिये। तीन सौ पैंसठ दिनों मे यह आठ दिन ही सब से अधिक महत्त्व के दिन हैं। आठ दिनों का यह त्यौहार सब त्यौहारों में अनोखा है। और त्यौहारों के उपलक्ष में तो जीवों की हिंसा की जाती है!

नौरतां त्यौहार तामें पंच-इन्द्रिय की घात होत।
दशहरा त्यौहार सो तो हत्यारो कहायो है।
दीवाली त्यौहार मांही विकलेन्द्रिय की घात होत,
होली के त्यौहार मांही अक्कल गंवाई है।
तीज के त्यौहार मांही विषय-विकार बढ़े,
राखी के त्यौहार मांही दीखे मंगताई है।

पर्व पर्युषण त्यौहार जीवन की दया पाल,
जीव दया पाल्यां विना सभी दुखदाई है ॥

नवरात्रि (नौरता) के त्यौहार मे बकरों और भैंसों की बलि चढ़ाई जाती है। दशहरे के दिन तो मुसलमानों के ईद की तरह घोर हिंसा होती है। दीवाली के त्यौहार पर भी बहुतेरे कीड़ों और पतंगों की हिंसा होती है। होली का त्यौहार आने पर लोग अपनी अक्ल गँवा कर बावले से हो जाते हैं। बालक और बूढ़े एक राशि होकर पागलों की तरह बकते हैं। तीज का त्यौहार विषय वासना बढ़ाने वाला है। रक्षाबंधन के त्यौहार पर लखपति की लुगाई भी हाथ पसारती है तो मगती सी दिखाई देती है।

यद्यपि इन सब त्यौहारों का अपने मूल रूप में, अलग-अलग कोई स्थान है। यह सब त्यौहार भी एक-एक संदेश लेकर आते हैं; परन्तु पर्युषण के समान पावन संदेश लाने वाला और कोई त्यौहार नहीं है। अन्य त्यौहारों की भावना में विकृति आ गई है किन्तु पर्युषण की योजना ही इस रीति से हुई है कि उसकी भावना में कोई विकार आज तक नहीं आया है और न आने के लिए गुंजाइश ही है। इसीलिए हम कहते हैं कि पर्युषण पर्व सर्व पर्वों मे शिरोमणि है क्योंकि वह प्राणी मात्र के प्रति दया, प्रेम, सहानुभूति और समवेदना की प्रेरणा लेकर आता है। इस त्यौहार के अवसर पर सर्वत्र भूतदया का प्रचार किया जाता है। जिन्हें लोग जाति से अनार्य और मांसभक्षी कहते हैं, उन मुगलों के जमाने में भी पर्युषण पर्व के अवसर पर विशेष रूप से दया का पालन किया जाता था। मुगल सम्राट् अकबर ने

हीरविजयसूरि के उद्‌बोधन से पर्युषण के समय जीवहिंसा और शिकार की मनाई की घोषणा की थी और सूरिजी को इस तरह का ताम्र पत्र लिख दिया था। जिस समय चन्द्रगुप्त सरीखे जैन राजा थे, उस समय की तो बात ही क्या पूछना है? और त्यौहार संसार की ओर आकर्षित करने वाले हैं, जब कि पर्युषण पर्व मुक्ति की ओर ले जाने वाला है। यह त्यौहार किस प्रकार मनाया जाता है?

ज्ञान दर्शन चारित्र पोषवा, पोषा करो जरूर।
षट आवश्यक संवर सामायिक, करो पाप होवे दूर॥

ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना में जो कमी रह जाती है, उसे दूर करने के लिए, इनकी विशिष्ट आराधना करने के लिए और इनकी विशिष्ट भावना से हृदय को भावित करने के लिए यह पर्युषण पर्व आता है। यों तो प्रातःकाल और सायंकाल सदैव प्रतिक्रमण करना चाहिए और कोई-कोई श्रद्धालु श्रावक करते भी हैं, किन्तु इन आठ दिनों में तो खास तौर पर किया जाता है। इसका प्रयोजन यही है कि रात और दिन में पापों एवं दोषों का जो कचरा आत्मा में इकट्ठा हुआ हो, उसे निकाल कर फैंक दिया जाय और अन्तःकरण को निर्मल एवं निश्शल्य बना लिया जाय। इस पर्व के पवित्र दिनों में विशेष रूप से सामायिक, संवर और पौषध किये जाते हैं।

भाइयो! यह पर्व वर्ष में एक बार आता है। आपके पुण्य का योग समझना चाहिए कि आपके जीवन में यह फिर आ गया है। इस पर्व के आने से पहले ही कितने ही लोग चल

बसे हैं। कौन कह सकता है कि आपके जीवन में भी यह पर्व दोबारा आयगा या नहीं आयगा ? अतः जो अवसर आपको मिल गया है, उसका सदुपयोग करलो। इन आठ दिनों में कोई खाली मत रहना। ऐसा न हो कि—

नौ नेजा पानी चढ्यो, तो हि न भींज्यो अंग।
रीतो रह्यो रे सीदड़ा, सदा तेल के संग॥

भाइयो ! इन आठ दिनों मे कुछ न कुछ अवश्य करो। बारह महीने में नहीं किया तो चौमासे मे करो और चौमासे में भी धर्म-ध्यान नहीं किया तो इन आठ दिनो में तो अवश्य ही कर लो। अरे राबड़ी से भी क्या नीचे उतरोगे ?

इस अवसर पर और क्या करोगे ?—

रात्रि भोजन और नशा सब, छोड़ो विणज व्यापार।
हरी लीलोती मिथ्या त्यागी, शील रतन लो धार॥

जैसा कि मैंने अभी कहा था, रात्रि भोजन कभी नहीं करना चाहिए और खास तौर से चौमासे में तो करना ही नहीं चाहिए। कदाचित् शिथिलता के वश होकर कर लिया हो तो अब आठ दिन के लिए तो दृढ़तापूर्वक त्याग कर ही देना चाहिए।

हरि-सचित्त वनस्पति के सेवन का भी त्याग कर देना चाहिए। वनस्पति में भी जीव है। यह बात शास्त्र सदा से कहते आये हैं। अब विज्ञान ने भी इस मान्यता को स्वीकार कर लिया है। वनस्पति के जीव भी हमारी ही भाँति सुख-दुःख का

अनुभव करते हैं। भले ही उनकी और हमारी वेदना-शक्ति में तरतमता है, मगर यह बात तो नहीं है कि उन्हें सुख-दुःख का अनुभव ही न होता हो। डा. जगदीशचन्द्र बोस ने ऐसे यंत्रों का आविष्कार किया है, जिनसे साफ देखा जा सकता है कि वनस्पति काय भी अनुकूल व्यवहार करने से हर्ष और प्रतिकूल व्यवहार करने से विषाद का अनुभव करते हैं। ऐसी स्थिति में हमारा कर्त्तव्य है कि हम उन जीवों को हिंसा से भी बचें और पर्युषण की दयामयी भावना को अपने चित्त में धारण करें।

भद्र पुरुषो! इन आठ दिनों में मिथ्या भाषण का भी पूरी तरह त्याग करो। पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का भी पालन करो। ब्रह्मचर्य को यहाँ रत्न कहा है, क्योंकि यह सब व्रतों और तपों में उत्तम है। कहा भी है—

तवेसु वा उत्तम बंभचेरं।

—सूयगडांगसूत्र

अर्थात्—ब्रह्मचर्य समस्त तपों में उत्तम है।

व्यापार-धंधा करने में आरंभ-समारंभ होता है और साथ ही चित्त में एक प्रकार की व्याकुलता बनी रहती है। चित्त जब व्याकुल होता है तो चिन्ताहीन नहीं हो पाता और चिन्ताहीन न होने के कारण एकाग्रता के साथ धर्मध्यान नहीं किया जा सकता। अतएव एकाग्र भाव से धर्मध्यान करने के लिए आवश्यक है कि पर्युषण के दिनों में व्यापार-धंधा बंद रखा जाय। पेट के लिए बारहों मास आकुल-व्याकुल रहते हो, तीन सौ पैंसठ दिन, घाणी के बैल की तरह जुते रहते हो तो आठ दिन शांति ले लो! सारा

समय ज्ञान, ध्यान, तप, व्रत-नियम आदि के लिए अर्पित कर दो। ऐसा करने से कोई बड़ी हानि नहीं हो जायगी; बल्कि बड़ा लाभ ही होगा।

धर्मसाधना के लिए यह दिन बहुत उत्तम है। उपवास, बेला, तेला, चोला, पचोला, अठाई या और जो तपस्या बन सके वह करो और जीवन का लाभ ले लो। यही लाभ लेने का समय है। मनुष्य जन्म मे हो लाभ नहीं लोगे तो फिर कब लोगे? यह सब चूक गये तो फिर समय नहीं मिलेगा। भगवान् ने बतलाया है:—

दुमपत्तए पंडुरए जहा, निवडइ राइगणाण अच्चए।
एवं मणुआण जीवियं, समयं गोयम! मा पमायए॥

जैसे पका हुआ पेड़ का पत्ता समय बीतने पर किसी भी क्षण गिर पड़ता है, इसी प्रकार मनुष्य के जीवन का किसी भी क्षण पतन हो सकता है। इसलिए समय मात्र का भी प्रमाद करना उचित नहीं है।

भाइयो! कौन कह सकता है कि तुम जो श्वास छोड़ रहे हो सो उसके बाद श्वास आयगा भी या नहीं? इसलिए कहा है:—

स्वास एक खाली मत खोय रे खलक बीच,
कनक कीच अंग धोना हो तो धोय ले।
और अंधियार पूर पाप में भरयो है तामें,
ज्ञान की चिराग चित्त जोना हो तो जोय ले।

क्षणभंगुर देह तामें जनम सुधार ले रे,
　　प्रभुजी से प्रेम प्यारा होना हो तो होय ले।
मानव–जनम मूढ़! बार–बार मिले नाहीं,
　　बीजली झमुके मोती पोना हो तो पोय ले॥

भाइयो बिजली की चमक में मोती पिरोना हो तो पिरोलो। मनुष्य जन्म बिजली की चमक के समान अस्थायी और क्षणभंगुर है। जो करना हो सो कर लो; जल्दी कर लो, पल भर भी प्रमाद किये बिना करलो। देखो भगवान् ऋषभदेव का समय चला गया। उसके बाद तेईस तीर्थङ्कर का काल भी व्यतीत हो गया। चौथा आरा भी चला गया। अब पंचम आरा है। इसमें भी आत्मकल्याण नहीं करोगे तो आगे आने वाले छठे आरे में करने की तो उम्मीद ही क्या है? यह सुअवसर बार-बार मिलने वाला नहीं है। इसके वृथा बीत जाने पर चौरासी का चक्कर है।

आपने क्या ही उत्तम पुण्य कमाया था कि आपको आर्यावर्त्त देश मिल गया। आपने ऐसे मुल्क में जन्म लिया है कि जहाँ साधु साध्वी, श्रावक और श्राविका का योग मिला है। जहाँ शान्ति से अपने बाल-बच्चों को लेकर बैठे हो। अब भी आत्महित के कार्य नहीं करोगे तो फिर कौन से समय में करोगे?

एक समय था जब कि साक्षात् तीर्थंकर भगवान् इस देश में विराजमान थे। नेमिनाथ भगवान् विराजते थे तो उनके पास कृष्ण महाराज और बलदाऊजी वगैरह आते थे। नेमिनाथजी के पिता के दस भाई थे। सब से बड़े समुद्रविजयजी थे और उनके पुत्र भगवान् नेमिनाथजी थे। सब से छोटे वसुदेवजी थे, जिनके

दो रानियाँ थीं—एक रोहिणी, दूसरी देवकी । रोहिणी देवी से बलदाऊजी और देवकी रानी से श्रीकृष्णजी उत्पन्न हुए। कृष्णजी का जन्म होने के पश्चात् नेमिनाथजी का जन्म हुआ। नेमिनाथजी शौरीपुर में और कृष्णजी मथुरा में जनमे थे।

सेवो श्रीअरिष्टनेमि जहां घर वरते कुशलजी—क्षेम ॥ टेर ॥
समुद्रविजय शिवा देवी के नन्दा ।
यादव—वंश में पूनम चंदा ॥

राजा समुद्रविजयजी शौरीपुर में राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम शिवादेवी था। एक बार रात्रि में शिवादेवी ने चौदह उत्तम स्वप्न देखे। (१) सिंह (२) बैल (३) ऐरावत हाथी (४) लक्ष्मी (५) पुष्पमाला (६) सूर्य (७) चन्द्र (८) ध्वजा (९) कलश (१०) पद्मसरोवर (११) क्षीर सागर (१२) विमान में आते हुए देवी-देवता (१३) रत्नों का ढेर और (१४) निर्धूम अग्नि की शिखा। इस प्रकार शिवादेवी ने चौदह स्वप्न देखे। स्वप्न देख कर शिवादेवी अपने पति समुद्रविजय के पास गई। उन्होंने स्वप्नों का हाल सुनकर कहा—तुम्हारे एक महान् पुण्यवान् पुत्र उत्पन्न होगा। उसी रात को अनुत्तर विमान से भगवान् नेमिनाथ का जीव रानी के गर्भ में आया। यथा समय पुत्र का जन्म हुआ। चौसठ इन्द्रों ने मिलकर जन्मोत्सव मनाया। भगवान् नेमिनाथ के शरीर का वर्ण साँवला था—

साँवरो वदन अलसी फूल समान ।
एक अष्ट लक्षण प्रधान ॥

पहले कहे चौदह स्वप्नों में अरिष्ट रत्न का स्वप्न माताजी ने देखा था। इस कारण आपका नाम श्री अरिष्टनेमि रक्खा गया। आपके शरीर का वर्ण मोर की गर्दन या अलसी के फूल के समान था। शरीर पर सर्वोत्कृष्ट १००८ लक्षण थे। बड़ा ही मनोहर और दिव्य रूप था। धीरे-धीरे वे बड़े हुए।

मस्तक मुकुट काने कुन्डल सोह,
तिलक ललाट सुर नर मन मोह ॥

माता अपने हृदय का सम्पूर्ण दुलार उन पर बरसा देती है। वैसे तो भगवान् स्वयं ही सुन्दरता की साक्षात् मूर्ति थे। मगर माता को उनका शृंगार किये बिना संतोष नहीं होता था। अतएव वह उनके मस्तक पर मुकुट पहराती, कानों में कुंडल पहनाती और विशाल तथा तेजस्वी भाल पर तिलक लगा देती थी। इन सुन्दर और मूल्यवान् आभूषणों से नेमिनाथजी का नैसर्गिक सौन्दर्य सौ गुना खिल उठता था। उनका रूप इतना मनमोहक था कि हठात् देवताओं और मनुष्यों के मन को मुग्ध किये बिना नहीं रहता था।

नेमिनाथजी आठ वर्ष के हुए तो लड़कों के साथ खेलने लगे। आनन्द करते हुए वे कुछ और बड़े हुए। बालकों के साथ खेलते-खेलते एक बार वे कृष्णजी की आयुधशाला में चले गये। शस्त्रों के भंडार के रक्षक ने उन से कहा—आप नजरों से शस्त्रों को देख लेना। किसी शस्त्र को हाथ मत लगाना। इतना कह कर वह भी उनके साथ हो गया। वह शस्त्र दिखलाता और उसका परिचय भी देता जाता था। उसने बतलाया—यह सारंग धनुष है और यह पाचजन्य शंख है।

नेमिनाथजी ने पूछा-इस धनुष में क्या विशेषता है ?

शस्त्र रक्षक-जो इसे चढ़ाता है, वही इसकी विशेषता को जानता है। जब कृष्ण महाराज इसे चढ़ाते हैं, जमीन और आसमान काँपने लगते हैं।

नेमिनाथजी ने सोचा-आजमाइश करके देख तो लें।

बस, उन्होंने धनुष हाथ में लिया और टंकार लगाई। पांचजन्य शंख भी पूर दिया। उस समय श्रीकृष्णजी शयन-शय्या पर थे। धनुष की टंकार और शंख की ध्वनि सुन कर वे सहसा उठ बैठे और सोचने लगे--मेरे जैसा दूसरा कौन पैदा हो गया ? वे आयुधशाला में जाकर देखते हैं कि नेमिनाथजी मुस्कराते हुए सामने खड़े हैं ! कृष्णजी ने पूछा-- यह क्या बात है ?

बलदाऊजी बोले-- यह तो महापुरुष हैं, धर्म के अवतार हैं। यह बड़े होकर तपस्या करेंगे ! इनके शरीर में और साथ ही आत्मा में असीम बल है।

कृष्णजी अपनी जगह लौट आये। मगर नेमिनाथजी का अतुल बल उनकी चिन्ता का विषय बन गया। उन्होंने अपनी रानियों से कहा--कोई ऐसा उपाय करो कि नेमिनाथ की ताकत कम हो जाय !

रानियाँ बोली—इनका विवाह कर दीजिये। विवाह होने पर अनेक उलझनों में पड़ जाएँगे और फिर यह ताकत नहीं रह जायगी।

श्रीकृष्ण, नेमिनाथजी की विकारविहीन मनोवृत्ति से भलीभांति परिचित थे। उन्होंने कहा—विवाह करना तो शायद ही स्वीकार करें। फिर भी प्रयत्न करना चाहिए।

इसके बाद क्या हुआ ?

फाग रचाया जहां, कृष्ण मुरार।
रुक्मणी बोली थें परणोनी नार॥
ब्याह रचाया बणी आलीजा वींद।
पशुओं की करुणा आणी मुनींद॥

कृष्णजी ने द्वारिका के बाग में, बसन्त ऋतु में, केसरिया हौज भरवाये। कृष्णजी, नेमिनाथजी, बलदेवजी और सब रानियाँ बाग में फाग खेलने गये। जी भर कर फाग हुई। जब फाग खेली जा चुकी तो बलदाऊजी के गीले कपड़े, उनकी रानियों ने बदल दिये। कृष्ण महाराज के कपड़े भी उनकी प्रमुख आठ रानियों ने बदल दिये। मगर नेमिनाथजी के कपड़े कौन बदलता ? वे यों ही खड़े रहे। तब उनको भौजाइयों ने हँसी करना शुरू किया। कहा—कुंवरजी ! किसकी राह देख रहे हो ? विवाह करने से कतराते हो तो कपड़े बदलने कौन आएगा ? अजी, आप भी विवाह कर लो। एक विवाह करने में क्या है ? विवाह नहीं करोगे तो लोग कहेंगे कि वासुदेव के भाई होकर भी नेमिनाथजी यों ही कुंवारे फिरते है !

इत्यादि मजाक करने पर भी नेमिनाथजी कुछ बोले नहीं। उन्होंने अपने कपड़े आप ही बदल लिये। तब उनकी भौजाइयों

में से किसी ने कहा—कुंवरजी औरतों को आफत की पुड़िया समझते है। सोचते हैं कि लुगाई के पाले पड़ जाऊँगा तो वह चैन नहीं लेने देगी। एक ही औरत के पीछे दुनिया भर की चीजें बसानी पड़ती हैं!

यही सोच कर तो देवरजी शादी नहीं करते! मगर देवरजी, चिन्ता मत करो। विवाह कर लो। सब जिम्मेदारी हमारी रही। विवाह करके अपनी पत्नी हमे सँभला देना!

यह सुन कर नेमिनाथजी भी हँसने लगे। तब दूसरी ने कहा—देवरजी की विवाह करने की इच्छा तो है; मगर श्रीकृष्णजी कोई कन्या खोजते ही नहीं है। यह बेचारे कहाँ खोजते फिरें।

आखिर सब लोग अपने-अपने महलों में लौट आये। श्रीकृष्णजी ने नेमिनाथ का विवाह करने का निश्चय कर लिया। वे सोचने लगे—नेमिनाथ बहुत ही सुन्दर हैं, अतएव इनसे भी अधिक सुन्दरी कन्या मिलेगी तो वही इनका मन हरण कर सकेगी। साधारण कन्या इन्हे आकर्षित नहीं कर सकती। ऐसी कन्या राजा उग्रसेन की पुत्री राजीमती है। वह भी रूप की राशि है। उसका सौन्दर्य असाधारण है। उसकी आभा बिजली की चमक के समान है। वह नेमिनाथ के चित्त को आकर्षित करने मे समर्थ हो सकेगी।

इस प्रकार सोच-विचार कर कृष्णजी ने राजा उग्रसेन के पास संदेश भेजा। उग्रसेन ने उत्तर दिया—अगर आप बरात लेकर मेरे यहाँ पधारें तो मैं सगाई करने को तैयार हूँ। कृष्णजी ने यह शर्त स्वीकार करली। सगाई पक्की हो गई।

दोनों तरफ बाजे बजने लगे ! मंगलगीत गाये जाने लगे। धूमधाम के साथ विवाह की तैयारियां होने लगीं । धीरे-धीरे बरात की रवानगी का दिन आ गया। उस रोज खास तौर पर नेमिनाथजी का पीठी मर्दन हुआ। स्नान कराया गया। बढ़िया से बढ़िया वस्त्र और आभूषण पहनाये गये। आभूषणों की कीमत का क्या पूछना है ! एक-एक करोड़ों की कीमत के थे ! और फिर—

पचरंगी पोशाकां सजकर जान्या रंग्या चंग्या रे,
गज रथ घोड़े बैठ पालकी चले उमंग्या रे।
नेम बनड़ा के रे २ संग बरात चढ़ी बड़ी धूम धड़ाके रे ।टेर।

सभी बराती पचरंगी पोशाक पहन कर, बन-ठन कर तैयार हुए। धूमधाम के साथ बरात रवाना हुई। बरातियों में—

कृष्ण और बलदाऊ दोई भ्रात बरात के माहीं रे।
समुद्रविजय राजादिक संग कर कर जत्लसाई रे ॥

इस तरह श्रीकृष्णजी, बलदेवजी तथा समुद्रविजयजी वसुदेव जी वगैरह सभी बरात में सम्मिलित होने के लिए तैयार हो गये। उधर स्वर्ग में शक्रेन्द्रजी को पता चला तो वे भी द्वारिका की ओर रवाना हुए। शक्रेन्द्र ने अपने अवधिज्ञान का प्रयोग करके देखा कि नेमिनाथजी विवाह करने वाले नहीं हैं। इस बात की सूचना कृष्ण महाराज को कर दी जाय। तब शक्रेन्द्रजी ने ब्राह्मण का रूप बनाया और कृष्णजी के पास आकर कहने लगा:—

शक्रेन्द्र ब्राह्मण का रूप धरी,
सन्मुख आई यों अरज करी।

शक्रेन्द्र बोले – हे वासुदेव, आपने विवाह का मुहूर्त्त निकलवाया है, उसमे त्रुटि है। यह लग्न नहीं होगा। इस मुहूर्त्त मे नेमिनाथजी विवाह नहीं करेंगे।

श्रीकृष्ण झुंझलाए। बड़ी कठिनाई से नेमिनाथजी विवाह करने को तैयार हुए थे और बरात की तैयारी हो चुकी थी। ऐसे अवसर पर मुहूर्त्त का अडंगा उन्हे रुचिकर नहीं हुआ। अतएव उन्होंने कहा—ब्रह्म देवता! आप मुहूर्त्त का अडंगा बीच में न लगाइए। आपको किसने पीले चावल दिये थे। आपने आने का वृथा कष्ट क्यों उठाया?

श्रीकृष्ण का उत्तर सुनकर इन्द्र चुपचाप वहाँ से चल दिया।

बड़ी सजधज, बड़ी धूमधाम और बड़े भारी समारोह के साथ बरात रवाना हुई। देवगण गुप्त रूप से सारा दृश्य देखने लगे। चलती-चलती बरात महाराजा उग्रसेन के यहाँ पहुंची। उस समय यादव वंश में कोई दया पालता था और कोई नहीं पालता था। उनमे कोई-कोई मांसभोजी भी थे। उग्रसेन ने बरात को जिमाने के लिए एक वाड़े में कई प्रकार के जानवर इकट्ठे कर रक्खे थे। नेमिनाथजी जब तोरण पर पहुँचे तो उन्होंने उन पशुओं की करुणाजनक पुकार सुनी।

उधर महल के छज्जे पर अपनी सखियों के साथ राजीमती, नेमिनाथजी की निराली छटा देखने के लिए उपस्थित हुई

और इधर नेमिनाथजी ने सारथी से प्रश्न किया—यह करुण ध्वनि कहाँ से आ रही है ? सारथी ने कहा—कुमार ! यह पशु-पक्षी आपके विवाह के जीमन के लिए इकट्ठे किये गये हैं ! यह सुनकर:—

सोऊण तस्स वयणं, बहुपाणिविणासणं ।
चिन्तेइ से महापन्ने, साणुक्कोसे जिए हिऊ ॥

उत्त० अ. २२, गा. १८

सारथी का उत्तर सुनकर प्रभु के अन्तःकरण में दया की लहरें उठने लगीं। महाज्ञानी भगवान् अनुकम्पा से प्रेरित होकर विचार करने लगे; क्योकि वे प्राणियों का हित चाहने और करने वाले थे। अन्ततः उन्होंने कहा—मुझे ऐसा विवाह ही नहीं करना है। सारथी, तूने ठीक समय पर अच्छी खबर सुनाई। जा, बाड़े को खोल दे और सब पशुओं को मुक्त कर दे। उन्हें जीवन प्यारा है, इसलिए जीने दे। सारथी ने बाड़े का द्वार खोल दिया। भीतर भरे हुए सब पशु भर-भराकर बाहर निकले और कूदते-फाँदते चले गये। यह दृश्य देखकर भगवान् के चित्त को बहुत सन्तोष हुआ। वे प्रसन्नता से खिल उठे। अपने शरीर के समस्त आभूषण उतार कर उन्होंने सारथी को इनाम दे दिये। नेमिनाथजी विवाह किये बिना ही वापिस लौट पड़े।

राजीमती ने जब इस संवाद को सुना तो वह बेहोश हो गई ! उनके चित्त को असह्य वेदना हुई। वेदना के इस गुरुतर भार को राजीमती का कोमल दिल सहन नहीं कर सका। अभी-अभी वह क्या सोच रही थीं, और क्या हो गया ! हा ! संसार बड़ा विषम

है। हर्ष में विषाद की काली छाया मिली रहती है। किसे खबर है कि पल भर में क्या से क्या हो जायगा।

सखियों का दिल भी बैठ गया था। सर्वत्र श्मशान की सी निस्तब्धता छाई हुई थी। किसी के मुंह से बोल भी नहीं निकलता था! कौन बोले और क्या बोले, यही समझ मे नहीं आ रहा था! फिर भी राजीमती को बेहोश देखकर उनकी सखियाँ चुपचाप नहीं बैठ सकीं। शीतोपचार करके उन्होने राजीमतीजी को सावधान किया। होश मे आते ही राजीमती ने कहाः—

छोटी मोटी सखियां री, नेम को मनावना, हां।
नेम गये गिरनार, यही तो पछतावना ॥ १ ॥

और फिर राजीमती विलाप करने लगीं। कहने लगीं—हे प्राणनाथ! आपका हृदय नवनीत से भी कोमल है, मगर क्या वह पशुओं और पक्षियों के लिए ही है? मुझ जैसी अबला के लिए उस कोमल हृदय मे कोई स्थान नहीं है? अपरिमित कोमलता में अपरिमित कठोरता भी हो सकती है, यह तो आज ही मालूम हुआ! नाथ! आपने मेरे साथ इतना गहरा छल किया है!

इधर नेमिनाथजी घर आ पहुंचे। एक करोड़ अस्सी लाख सोनैया का दान प्रतिदिन करते हुए विरक्त भाव से रहने लगे।

राजीमती को जाति स्मरण ज्ञान हो गया। उन्होंने जाना कि पिछले आठ भवों में हम दोनों साथ-साथ रहे हैं। तब वह सोचने लगीं—अफसोस! प्रभु ने आठ भवों के प्रीति सम्बन्ध को इस भव में अचानक ठुकरा दिया।

नेमिनाथजी ने राजीमती से कहलाया— मैं तुम्हें विषय-वासना के अन्धे कूप में गिराने के लिए तोरण पर नहीं आया था। बल्कि अभ्युत्थान के महा मार्ग पर चलने का आह्वान करने के लिए आया था। पिछले आठ भवों में तुमने और हमने साथ-साथ ही सुख-दुःख सहन किये हैं। तब इस भव में मैं तुम्हारी उपेक्षा कैसे कर सकता था ? इस भव में भी मैं तुम्हें अपना साथी बनाना चाहता हूँ। पिछले भवों का सम्बन्ध और तरह का था और इस भव का सम्बन्ध और तरह का होगा। इसलिए राजी-मती विषाद मत करो। अपने वास्तविक कर्त्तव्य का विचार करो और मानव जीवन को सर्वोत्तम सिद्धि को प्राप्त करने की तैयारी करो। मैं तैयार हूँ, तुम्हें भी तैयारी कर लेनी चाहिए।

नेमिनाथजी साधु बन गये। राजीमतीजी को जब उनका संदेश मिला तो एक नवीन ही विचारधारा उनके मस्तिष्क में उत्पन्न हो गई। अभी तक नेमिनाथजी के व्यवहार में उन्हें जो कठोरता दिखलाई देती थी, वह अनन्त अनुकम्पा मालूम होने लगी। वह सोचने लगी—भगवान् की मुझ पर कितनी दया है ! उन्होने मेरे उद्धार के लिए कैसी अनोखी युक्ति निकाली है। प्रभु मेरी आत्मा का कल्याण चाहते हैं। वे मुझे अक्षय सुख के मार्ग पर ले जाना चाहते हैं। आखिर राजीमती ने संकल्प कर लिया—

राजीमती कहे संयम लूंगी,
छोड़ सकल परिवार—
यही है मेरी भावना ॥

उन्होंने अपने संकल्प की घोषणा कर दी। उनके माता

पिता को जब यह बात मालूम हुई कि राजीमती संयम धारण करने का विचार कर रही है, तो उन्होंने हजार तरह समझाने की कोशिश की। पर राजीमती पर किसी का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने स्पष्ट कह दिया—पिछले आठ भवों के सगाई-संबंध को मैं आज ठुकरा नहीं सकती। नेमिनाथजी के प्रति मेरे रोम-रोम में ही नहीं, आत्मा के कण-कण में प्रीति व्याप्त है। अभी तक उस प्रीति में स्वार्थमय प्रेम का कालापन था, अब वह एकदम निःस्वार्थ होगी और इसी कारण एकदम निर्मल भी होगी। इस प्रीति के पथ से मैं विचलित नहीं होऊंगी। नेमिनाथजी के सिवाय संसार का कोई भी पुरुष मेरा स्वामी नहीं हो सकता।

उधर नेमिनाथ भगवान् एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षित हुए थे। राजीमती ने ७०० क्वारी कन्याओं के साथ संयम धारण किया। धन्य है शिवा देवी जैसी माता, जिन्होंने नेमिनाथ सरीखे पुत्र को उत्पन्न किया। भगवान् नेमिनाथ ने अपने महान् त्याग के द्वारा उस समय की जनता को एक आदर्श बोधपाठ पढ़ाया। कितने ही हिंसक अहिंसक बन गये। कितने ही मांसभोजियों ने मांस भोजन का त्याग कर दिया। गाजर-मूली की तरह पचेन्द्रिय प्राणियों का सिर काटने वालों के सामने एक नवीन कल्पना खड़ी हो गई। अहिंसा की महिमा लोक में फैल गई!

भाइयो! जिस जीव ने पहले पुण्य का उपार्जन किया है, उसी को ज्ञान लगता है। वही ज्ञान की बात पर विचार करता है। पुण्य हीन पुरुष को ज्ञान की बात रुचिकर नहीं होती। कहा है—

लगे ताल झंकार, लगे देवल के टांची,
लगे सिंह के बोल, लगे सूरा के सांची।

लगे सूरज की धूप, लगे चंदा की ठारी,
लगे वृक्ष के फूल, लगे प्रीतम को प्यारी।
लगत-लगत फल वह लगे, जिस फल को पक्षी चुगे।
वैताल कहे विक्रम सुनो, मूरख जन को क्या लगे?

पत्थर को जब कुशल कारीगर की टांची लगती है तो वह मूर्ति के रूप में परिणत हो जाता है। इसी प्रकार मनुष्य अगर सद्गुरु का कहना मान ले तो वह देवता बन जाता है। मगर पुण्यवान् को ही सद्गुरु का योग मिलता है, पुण्यहीन को नहीं। कहा है:—

भाग्यहीन को ना मिले, भली वस्तु का योग।
जब दाखां पाकन लगीं, होत काक कण्ठ रोग॥

भगवान् नेमिनाथ ने तत्काल अपने कर्त्तव्य का निश्चय कर लिया। निश्चय करने में उन्हें विलम्ब नहीं लगा। भगवती राजीमती ने भी कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का विवेक प्राप्त करके कर्त्तव्य के पथ पर चलना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार पुण्यशाली जीव कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का ज्ञान पाते ही अकर्त्तव्य कर्म से विमुख हो जाते हैं। ऐसे ही लोग विवेकवानों की गिनती में गिने जाते हैं। जिसे कर्त्तव्य का ज्ञान नहीं है, भक्ष्य-अभक्ष्य का भान नहीं है, वह विवेकविहीन है, मूर्ख है। मूर्खों को न बात करने का तमीज होता है, न कही हुई बात को समझने का ही।

चार मूर्ख किसी गाँव में गये। वे गाँव के बाहर, कुए के पास, किसी पेड़ के नीचे ठहरे। अफीम की भाजी छौंकने के लिए

तेल की आवश्यकता पड़ी। तब उनमें से एक मूर्ख एक पैसा लेकर तेली के घर गया। तेली तेल तोलने लगा और मूर्ख आँखें फाड़-फाड़ कर तेली के शरीर को बड़े गौर से देखने लगा। तेली ने उससे पूछा—कहो भाई, घूर-घूर कर मेरी तरफ क्यों देख रहे हो? मूर्ख ने उत्तर दिया—तू बहुत मोटा ताजा है। जब मरेगा तो अर्थी उठाने वालों को बहुत तकलीफ होगी। यही देख और सोच रहा हूँ। तेली को बड़ा गुस्सा आया। उसने तेल दिये बिना ही उसे भगा दिया।

जब वह मूर्ख खाली हाथ अपने साथियों के पास पहुंचा तो सब ने उसे आड़े हाथों लिया। कहा—मूर्ख कहीं के, तू यह भी नहीं जानता कि मोटे-ताजे आदमी को श्मशान तक कैसे ले जाया जाता है! आखिर उनमें से एक तेल लाने को फिर तेली के पास गया। तेली ने पिछला किस्सा सुनाया। दूसरे मूर्ख ने कहा—भाई तेली! पहले जो आया था, वह वज्र मूर्ख था। भला ले जाने वालो को तकलीफ क्यों होगी? मरने के बाद एक बैल तुम्हारे पास है ही, दूसरा किसी पड़ौसी का यों दोनों बैलो से तुम आसानी से चले जाओगे। तेली को फिर गुस्सा आया और उसने उसे भी भगा दिया। जब वह भी खाली हाथ लौटा तो पहले ने कहा—वह तेली महा-मूर्ख है। कोई भी बात समझता ही नहीं। चलो हम तुम दोनों बराबर रहे। मगर शेष दो ने उसे भी फटकारा।

फिर तीसरा मूर्ख तेल खरीदने चला। वह भी उसी तेली के पास पहुँचा। तेली ने पहले वाले दोनों की कहानी सुनाई। उसे सुन कर यह बोला—तेली भाई! वे दोनों ही मूर्ख थे। जब तुम

इतने मोटे-ताजे हो तो तुम्हें क्या जरूरत है श्मशान जाने की और क्या जरूरत है किसी का बैल माँगने की ! तुम्हारे ही घर में लाट है और घाणी है। इसीसे तुम जला दिये जाओगे। पर उन मूर्खों को इतनी सूझ ही कहां है !

इस बार तेली को और ज्यादा क्रोध आया। उसने इसे मार कर भगा दिया !

अन्त में चौथा मूर्ख तेल खरीदने निकला। उसने रवाना होते-होते कहा—देखना मैं तेल लेकर आता हूँ या नहीं ! तुम तीन जने भी एक पैसे का तेल न खरीद सके और मै अकेला ही लेकर आऊँगा।

चौथा मूर्ख बड़े घमंड के साथ, शान में आकर तेल खरीदने चला, मगर चलते समय बरतन लेना ही भूल गया। वह तेली के पास पहुँचा और तेल माँगा तो तेली ने कहा—किसमें लोगे ? अब हजरत को खयाल आया कि-अरे ! मै तो बरतन ही नहीं लाया !

पास ही भैरोंजी का एक स्थान था। वह भागा-भागा वहाँ गया और एक धुपारना, उठा लाया। उसने धुपारना मे तेल भरवाया मगर बच गया तो धुपारने को औंधा करके उसमे बाकी का तेल गिरवा लिया। फिर वह अपनी जगह के लिए रवाना हुआ। भला औंधे धुपारना में कितना तेल समाता ? थोड़ा-सा तेल लगा था सो रास्ते में वह भी सोख गया।

धुपारना लेकर चौथा मूर्ख अपने साथियों में पहुँचा। बोला-देखो, आखिर मैं तेल ले आया कि नहीं ? क्या तुम्हारी तरह बेवकूफ हूँ ?

तीनों बोले—मगर यह तो धुपारना है, तेल कहाँ है ?

वह बोला—बड़ी मुश्किल से तेली का तेल निकाला तो अब यह धुपारना उसे पी गया ! मगर जायगा कहाँ । होगा तो इसी के भीतर ! मैं तो ले आया हूँ, अब तुम्हारा काम है कि उसे पीस कर तेल निकाल लो । मैं तेली के घर में से निकाल लाया तो क्या, तुम इस धुपारने में से नहीं निकाल सकोगे ?

भाइयो ! ऐसे मूर्खों को ज्ञान लगना कठिन है ।

जम्बूकुमार की कथा—

ज्ञान और उपदेश का प्रभाव पड़ता है जम्बूकुमार जैसे पुण्यशाली पवित्र-हृदय पुरुषों पर ! उन्होंने सुधर्मा स्वामी का उपदेश सुना । उससे उन्हें संसार की सच्ची स्थिति का ज्ञान हो गया । और जब ज्ञान हो गया तो तत्काल संसार से छुटकारा पाने का निश्चय कर लिया । उनके निश्चय में पूरी दृढता थी । प्रभव उन्हें विचलित नहीं कर सका और उसकी पत्नियाँ भी विचलित नहीं कर सकतीं । समुद्रश्री ने किसान का उदाहरण देकर जम्बूकुमार को यह समझाने का प्रयत्न किया कि लोकोत्तर सुखों की मृगतृष्णा में पड़कर लौकिक सुखों को त्याग देना उचित नहीं है । ऐसा करना उस मूर्ख किसान के समान कार्य होगा, जिसने गन्ना बोने के लिए खेत में खड़ी बाजरी उखाड़ कर फैंक दी थी ।

समुद्रश्री का कथन सुनकर जम्बूकुमार ने कहा—समुद्रश्री ! वह किसान विवेकहीन था, मगर मैं ऐसा नहीं हूँ । मैं ज्ञानियों के मार्ग पर चल कर आत्मकल्याण करना चाहता हूँ । देखो:—

किसी जंगल में एक हाथी मर गया। उसे खाने के लिए जानवर आने लगे। पशु भी आते और पक्षी भी आते। शाम होने पर पक्षी उड़ कर चले जाते और सुबह फिर आ जाते थे।

एक कौवा ने सोचा—यह ठीक नहीं है। रात को भाग जाना पड़ता है, इससे हम घाटे में रहते हैं। यह सोच कर कौवा लीद करने की जगह से मरे हाथी के पेट मे घुस गया। रात भर भीतर घुसा-घुसा वह नरम-नरम मांस खाता रहा। दूसरे दिन कौवों ने ऐसा करने के लिए मना किया, पर वह नहीं माना। एक रात आँधी चली और मूसलधार वर्षा हुई। पहाड़ के पानी के बहाव में पड़कर हाथी की लाश भी बहने लगी। बहती—बहती वह गंगा में पहुंची और फिर समुद्र में जा पहुँची। चमड़ा गीला होने से नरम पड़ा तो कौवा बाहर निकला। और लाश पर बैठ कर मांस नोंचने लगा। संयोग से उधर होकर एक जहाज निकला। मल्लाहों ने उससे कहा—इस जहाज पर आजा तो किनारे लग जायगा। पर वह नहीं माना। अन्त में उसने समुद्र में ही अपने प्राण गँवा दिये।

इसी तरह, हे प्रिये! यह संसार समुद्र है। कामभोग हाथी की लाश के समान हैं और सुधर्मास्वामी गुरु नाविक के समान हैं। वे मुझे संसार—सागर मे तारने को तैयार हैं। मैं कौवे की तरह कामभोगों में आसक्त होकर अपने जीवन को नष्ट नहीं कर सकता। जो कामभोगों को तज कर धर्म के पथ पर चलेगा, उसे आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा।

स्थान—जोधपुर }
ता० ३१-८-४८ }



तपस्तेज



स्तुतिः—

आपादकण्ठमुरुशृङ्खलवेष्टिताङ्गा-
गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घाः।
त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः,
सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फरमाते हैं कि:—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन्! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय? हे भगवन्! आपके गुण कहाँ तक गाये जाएँ?

हे महाप्रभु! कोई पुरुष किसी कारण कारागार में पहुँच गया हो। वहाँ पैरों से लेकर गले तक जंजीरों से जकड़ दिया

गया हो और ऐसी गाढ़ी बेड़ियाँ उसे पहना दी गई हों कि उसकी जाँघें छिलती हों, और ऐसी कालकोठरी में रख दिया गया हो कि जहाँ हवा का प्रवेश भी कठिन है, तो वहाँ उसकी पुकार सुनने वाला कौन है ? ऐसी संकटमय अवस्था में वह विचार करता है कि यहाँ मैं किसके आगे पुकार करूँ ? कौन मेरी सहायता करेगा ? सिवाय भगवान् के और कोई दीनों और दुःखियों का सहायक नहीं है। यह सोच कर वह भगवान् आदिनाथ को याद करता है। 'ॐ ऋषभ' इस चार अक्षर वाले महामंत्र का जाप करता है। तो भगवान् के पावन नाम का स्मरण करते ही तमाम हथ-कड़ियाँ और बेड़ियाँ तड़ातड़ टूट कर गिर पड़ती हैं। वह बंधन से मुक्त हो जाता है और स्वतन्त्र होकर, बरी होकर, सानन्द अपने घर पहुँच जाता है।

हे भव्य पुरुषो ! भगवान् के नाम की अद्भुत महिमा है। भगवान् के नाम की महिमा का फल उन्हीं को प्राप्त होता है, जो संसार के समस्त सहायकों-साधनों से अपनी आस्था हटाकर केवल भगवान् के प्रति ही अनन्य श्रद्धा रखता है। जब तक दिल में दुविधा है, प्रभु के पावन नाम की महिमा का फल प्राप्त नहीं हो सकता।

कहा जा सकता है कि आचार्य महाराज ने भगवान् के नाम की जो महिमा प्रदर्शित की है वह भक्ति मात्र है, प्रशंसा मात्र है। वास्तव में भगवान् के नाम का जप करने से हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ टूट नहीं सकतीं। अगर टूट सकती हों तो आज कोई भी कैदी 'नाम' जप कर स्वाधीन क्यों नहीं बन जाता ?

इस प्रकार की शंका में, भगवान्-नाम की महिमा में अविश्वास छिपा हुआ है। जिनके हृदय में भगवान् के प्रति पूरी आस्था नहीं वही ऐसी शंका को अपने हृदय मे स्थान देते हैं। और श्रद्धा न होने का कारण यह है कि उन्होने कभी ऐसी सिद्धि प्राप्त करने का प्रयत्न ही नहीं किया। श्रद्धापूर्वक प्रयत्न किये बिना ईश्वर की महिमा अनुभव में नहीं आ सकती। ऐसी स्थिति मे ईश्वर की महिमा का अनुभव करने के बाद जो प्रयत्न करना चाहते हैं, उन्हें निराशा के सिवाय और क्या हाथ लगने वाला है? ईश्वर की महिमा के अनेक प्रमाण शास्त्रों में मौजूद हैं। सुदर्शन सेठ शूली पर चढ़ा दिये गये थे, पर किस भौतिक शक्ति ने शूली को सिंहासन बना दिया था? सती सीता को अग्नि के कुंड में झौंक दिया गया, पर ईश्वरी महिमा के सिवाय किसने उसकी रक्षा की थी? अमरकुमार के प्राण बचाने कौन गया था? चन्दनबाला की हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ किस तरह तड़ाक से टूट गई थी? शास्त्रों में ऐसे बहुत से दृष्टान्त मौजूद हैं, जिनसे पता चलता है कि परमात्मा के नाम का, एकाग्र भाव से जप किया जाय तो संसार की भीषण से भीषण शक्ति भी परास्त हो जाती है। अतएव भगवान के नाम के अलौकिक माहात्म्य के विषय में शंका को गुंजाइश नहीं है।

इस अवसर्पिणी काल में चौवीस तीर्थङ्कर हुए। भगवान् ऋषभदेव सबसे पहले तीर्थङ्कर थे। उनके बाद अजितनाथजी, संभवनाथजी, अभिनन्दनजी, सुमतिनाथजी, पद्मप्रभुजी, सुपार्श्वनाथजी, चन्द्रप्रभुजी, सुविधिनाथजी (पुष्पदन्तजी) और दसवें शीतलनाथजी हुए। सुविधिनाथजी और शीतलनाथजी के समय

में जैनों और वैदिकों में कोई भेद नहीं था। भगवान् ऋषभदेवजी ने वेद की जो ऋचाएँ फरमाई थीं, वही चली आ रही थीं। बाद में उनमें अन्तर पड़ गया। भगवान् ऋषभदेव के उपदेश में जिसने जैसा चाहा, परिवर्तन कर डाला। तब आम्नायभेद हुआ और तभी से जैन धर्म और वैदिक धर्म अलग-अलग हो गये।

ग्यारहवें तीर्थङ्कर श्रेयांसनाथजी और बारहवें वासुपूज्य स्वामी हुए। वासुपूज्य स्वामी की एक घटना बड़ी ही प्रेरणादायिनी है। जब वासुपूज्यजी अपनी माता के गर्भ में थे तब की बात है। किसी सेठ ने बड़ी विशाल हवेली बनवाई। शुभ मुहूर्त्त में सेठ और सेठानी ने उस हवेली में शयन किया। आधी रात्रि का समय हुआ तो अकस्मात् आवाज सुनाई दी—'पड़ू ?' इस समय अचानक यह आवाज सुनकर सेठ और सेठानी विस्मित हो गए। उन्होंने इधर-उधर चारों ओर देखा, मगर कोई भी नजर नहीं आया। जब कोई नजर न आया तो वे आँखे मूंद कर लेट रहे। मगर फिर वही आवाज कानों में पड़ी—'पड़ू ?'

दोबारा वही आवाज सुनकर सेठ-सेठानी का धैर्य छूट गया। भय के मारे वे नयी हवेली छोड़कर अपनी पुरानी हवेली में ही भाग गये। उड़ीसा में जब भूकम्प आया था तो कुन्हाड़ी (कोटा राजस्थान) राज घराने के दौलतसिंहजो फौज के कर्नल होकर वहां गये थे। दौलतसिंहजी मेरे प्रति पक्की भक्ति रखते थे। उन्होंने मुझे यह वृत्तान्त सुनाया था:—

उड़ीसा में इनका तम्बू लगा हुआ था। एक बार रात्रि के समय तम्बू में आवाज आई—'चले जाओ।' यह आवाज सुनकर

उन्होने अपने बाल-बच्चों को तो भेज दिया, मगर खुद नहीं गये। दोबारा फिर वही आवाज सुनाई दी। दौलतसिंहजी ने इधर-उधर देखा भाला, मगर कहीं कोई भी दिखाई नहीं दिया। रोज यही हाल होता रहा। मगर उनकी खुश किस्मती से उनका वहाँ से तबादला हो गया। वे कोटा चले आये। यह बात स्वयं दौलतसिंहजी ने मुझे सुनाई थी और मुझ से पूछा था कि—'यह क्या बात थी ? मैंने उनसे कहा--'वह ध्वनि आपकी तकदीर की ध्वनि थी।'

दौलतसिंहजी के पिताजी की भी मेरे ऊपर भक्ति और श्रद्धा थी। कोटा दरबार उन्हें साथ बिठलाकर भोजन करते थे। एक बार दरबार ने उन्हें भोजन के लिए बुलवाया तो वह नहीं आये। उन्होंने उत्तर दिया-'मैं मांस मदिरा का त्यागी हूँ।' यह जानकर दरबार ने कहा कि यह पक्का जैन हो गया है। हमने कोटा में चातुर्मास किया तो उन्होंने निर्ग्रन्थ प्रवचन और महावीर-चरित्र दोनों पढ़े। कोटा के बाद हम आगरा पहुँचे। कुल्हाड़ोरावजी सा. दौलतसिंहजी के पूज्य पिताजी के मन में फिर दर्शन करने का विचार आया। और विचार आते ही, पिछली रात्रि में, वे अलवाने पैर ही रवाना हो गये। जब कोटा-नरेश और दूसरे मित्र उनसे मिले और पूछा—क्या बात है ? तब उन्होंने उत्तर दिया-अब मैं तपस्या करूँगा। उन लोगों ने उन्हें रोक लिया, किन्तु वे एक चौबारे में बैठ गये। अन्न-पानी का त्याग कर दिया और चार दिन बाद शरीर त्याग दिया। उन्होंने सोचा—जब घर से निकल पड़ा हूँ तो घर वापिस नहीं लौटूँगा। सचमुच वे घर नहीं लौटे और संसार से ही चल दिये।

कहने का अभिप्राय यह है कि संसार में दिखाई देने वाली

शक्तियाँ हैं तो कुछ ऐसी शक्तियाँ भी हैं जो दिखाई नहीं देतीं; मगर अपना प्रभाव अवश्य दिखलाती हैं।

सेठ और सेठानी वाली घटना का समाचार राजा के पास पहुंचा कि बहुत-सा द्रव्य खर्च करके सुन्दर हवेली बनवाई और वह व्यर्थ हो गई ! राजा ने रानी से भी जिक्र किया। तब रानी ने कहा—'आज हमारा पलंग उसी हवेली में लगवाना !'

भाइयो ! माता के विचारों का असर गर्भ पर पड़ता है तो गर्भ का प्रभाव माता पर भी पड़ता है। रानी के गर्भ में साक्षात् तीर्थंकर भगवान् की आत्मा विराजमान थी। उस परम पुण्यशाली आत्मा के प्रभाव से रानी मे इतना साहस आगया, जो शूरवीर पुरुषों में भी क्वचित दिखलाई पड़ता है। रानी की आज्ञा से उनके नौकरों ने खतरे से भरी हुई हवेली में रानी का पलंग लगा दिया। मगर हवेली मे पॉव धरते ही वे कॉपने लगे। किसी तरह पलंग बिछा कर वे बाहर आ गये। अकेली रानी हवेली में सोई। आधी रात्रि का समय हुआ। फिर वही आवाज कानों में पड़ी—"पड़ूं, पड़ूं, पड़ूं, ?"

रानी प्रत्येक स्थिति का सामना करने के लिए तैयार होकर ही हवेली में सोई थी। अतएव विना घबराहट के उत्तर दिया—पड़ता है तो पलंग छोड़ कर पड़ना। बस, फिर क्या था। पड़ने वाला पलंग छोड़ कर पड़ा। प्रातःकाल होते ही राजा अपने नौकरों चाकरों—के साथ दौड़े-दौड़े आये। हवेली में घुसकर उन्होंने जो देखा तो उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। रानी सकुशल और प्रसन्न थी और पलंग के चारों ओर सोना ही सोना पड़ा था !

हवेली का मालिक सेठ भी राजा के साथ चला आया था। रानीजी ने उनसे कहा सेठ, तेरी तकदीर मे सोना नहीं था, लेकिन यह सोना मैं तुझे ही देती हूँ।

इस चमत्कारपूर्ण घटना का कारण रानी का गर्भ था। अतएव जब बालक का जन्म हुआ तो उसका नाम "वासुपूज्य" रक्खा गया।

तेरहवें तीर्थंकर विमलनाथजी हैं। फिर अनन्तनाथजी, धर्मनाथजी और सोलहवें शान्तिनाथजी हुए। शान्तिनाथ स्वामी के समय मे राजा हरिश्चन्द्र हुए हैं। इसके बाद कुन्थुनाथजी, अरहनाथजी, मल्लिनाथजी और मुनि सुव्रतनाथजी हुए। राम और लक्ष्मण इन्हीं के शासन में हुए है। फिर इक्कीसवें नेमिनाथजी और बाईसवें अरिष्टनेमिजी हुए। अरिष्टनेमिजी का कल कुछ परिचय दिया गया था। श्रीकृष्णजी और बलदाऊजी आदि इन्हीं के समय में हुए हैं। कृष्ण और बलदाऊ तो इन्हीं के चचेरे भाई थे।

कृष्णजी महाराज पूर्व जन्म में ९९ लाख मासखमण की महान् और तीव्र तपस्या करके उत्पन्न हुए थे। पूर्वजन्म की तपस्या का प्रचण्ड बल उन्हें प्राप्त हैं। अतएव किस की ताकत है जो उनका सामना कर सके? उन्हें भौतिक बल के साथ-साथ आत्मिक बल तपोबल भी प्राप्त है। भौतिक बल की अपेक्षा तपोबल की शक्ति महान् होती है। संसार में सर्वोत्कृष्ट समझी जाने वाली शक्ति भी तप की शक्ति के समक्ष पानी भरती है। अपनी आत्मा पर विजय प्राप्त किये बिना तपस्या नहीं होती और आत्मा पर विजय प्राप्त करना बड़ा ही दुष्कर कार्य है। कहा है—

जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे।
एगं जिणिज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ॥

—उत्तरा०, अ० ९

अर्थात्—हजार को हजार से गुणित करने पर दस लाख होते हैं। ऐसे दस लाख सिपाहियों की फौज एक तरफ और आत्मा अकेला दूसरी तरफ। एक आदमी दस लाख फौज पर विजय प्राप्त करता है और दूसरा अपनी आत्मा पर विजय प्राप्त करता है। इन दोनों की विजय में क्या अन्तर है? दोनों की विजय में से किस की विजय अधिक महत्त्वपूर्ण है? शास्त्रकार कहते हैं:—

एगं जिणिज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ।

जो अकेली अपनी आत्मा को जीतता है, उसकी विजय परम विजय है। दस लाख सिपाहियों को जीत लेने की अपेक्षा अपनी आत्मा को जीत लेना बहुत कठिन है।

ऐसी विजय तपस्या के बिना प्राप्त नहीं हो सकती। कृष्णजी ने पूर्व जन्म में तपस्या करके आश्चर्यजनक शक्ति प्राप्त की है। एक ओर लाखों सैनिक हों और दूसरी ओर कृष्णजी अकेले हों, तो भी वे उन सैनिकों को उसी प्रकार उड़ा-भगा देते थे, जिस प्रकार किसान एक ही गोफन से फैंक कर चिड़ियों को भगा देता है। श्रीकृष्ण महाराज में बीस लाख अष्टापदों का बल था। वे बड़े ही जबर्दस्त थे।

उनका बचपन गोकुल में व्यतीत हुआ। गोकुल उनकी क्रीड़ा भूमि है। यशोदा ने उन्हें प्राणों से भी अधिक प्रीति के

साथ पाला-पोसा है। कभी-कभी देवकी रानी भी उनके पास पहुंच जाती हैं और खिलौने, वस्त्र तथा आभूषण ले जाती हैं। फिर यशोदा के भाग्य की सराहना करने लगती हैं। कहती हैं—सखी यशोदा ! संसार में तुम्हारे समान कौन होगा, जिसे यह बालक रात-दिन पास मे रहकर आनन्द पहुँचाता है। मै अत्यन्त भाग्यशालिनी होती हुई भी अत्यन्त अभागिनी भी हूँ कि इसका विछोह सहना पड़ता है ! यह बालक तुम्हारे और हमारे-दोनो के कुल को उज्ज्वल करेगा। हम दोनों की कीर्त्ति अमर कर देगा।

समय बड़ा बलवान् है। धीरे-धीरे कृष्णजी बड़े होते हैं और खेलते कूदते तेरह वर्ष के हो जाते हैं। गोकुल मे धूम मची रहती है। जिसे देखो उसी की जीभ पर कृष्णजी की चर्चा है। तमाम गोकुल वासी कृष्ण को हृदय से चाहते हैं, प्यार करते हैं। मानो वे अकेली देवकी के नहीं हैं अकेली यशोदा के भी नहीं हैं, बल्कि सारे गोकुल के हैं। सभी गोपियाँ अपने-अपने बालकों की अपेक्षा भी उन पर अधिक प्रीति रखती हैं। उन्होंने सभी के हृदय को जीत लिया है। उनका नटखटपन सब के मन को मोह चुका है। अद्भुत-अद्भुत काम करके वे गोकुलवासियों को चकित और हैरान कर देते हैं। सब समझते हैं—कृष्ण के रूप में एक लोकोत्तर आत्मा गोकुल में अवतरित हुई है।

इस बचपन में भी कृष्ण बड़े-बड़े साहस के काम करते हैं। एक दिन उन्होंने काला साँप देखा। साँप पर दृष्टि पड़ते ही डर के मारे उनके साथी सब छोर भाग खड़े हुए, मगर कृष्णजी तो डर को पहचानते ही नहीं है। वे साँप के पास चले गये और उसे पकड़ कर घर ले आये ! बोले—मैया तेरे लिए दही विलाने

को यह रस्सी ले आया हूँ। यशोदा ने जो रस्सी देखी तो उसकी छाती पर साँप लोट गया! पुत्र के अनिष्ट की शंका से यशोदा बुरी तरह घबरा गई! कहा—लल्ला! इसे छोड़, छोड़, जल्दी छोड़ दे! *फिर वह सोचने लगी—तीन लोक से निराला यह बालक* कौन है? भविष्य में अवश्य हो कुछ बड़ा काम करेगा! वह मन ही मन उसकी कुशल मनाने लगी।

कृष्णजी कभी कुछ और कभी कुछ निराले काम किया ही करते हैं। कभी भैंसे पर चढ़ कर सवारी निकालते है तो कभी और ही कुछ कर डालते है।

मात यशोदा दही रे विलोवे,
मक्खन मांगी–मांगी खावे रे कुंवरियो।
जल जमना तट जावे रे सांवरियो॥

यशोदा माता दही विलोती हैं तो पहले तो माँग-माँग कर मक्खन खाते है, और जब मौका पाते हैं तो मटकिया पर खुद ही *हाथ साफ कर देते हैं। कभी यमुना के किनारे जाकर क्रीड़ा करते* हैं। कभी मयूर-पीछी का मुकुट अपने मस्तक पर धारण करके सुशोभित होते हैं। इस तरह—

अलि कमल से दूर रहे नहीं।

जैसे भ्रमर फूलों पर जाता है, उसी प्रकार कृष्णजी गुवाल वालों और गोपियों में हिल मिल जाते हैं। कभी बंसरी का राग सुनाते हैं तो इधर-उधर से भाग कर गायें इकट्ठी हो जाती हैं। इस प्रकार गोकुल में सदैव चहल-पहल मची रहती है। श्रीकृष्णजी

स्वयं आनन्द में रहते हुए और गोकुलवासियों को आनन्द देते हुए दिन प्रतिदिन बड़े हो रहे हैं।

इधर एक दो दिन से कंस देवकी के पास आने लगा है। देवकी की लड़की को देख कर उसने कहा—क्या यही छोकरी मुझे मारेगी? और वह अपनी बात पर आप ही हँस दिया। फिर भी उसके दिल में धड़कन शुरु हो गई। उसने सभा में ज्योतिषियों को बुलवाया। उनसे पूछने पर मालूम हुआ कि कंस का विध्वंस करने वाले का जन्म हो चुका है। यह जानकर कंस को चिन्ता फिर बढ़ी। उसने अपने संहारक की तलाश करने का निश्चय किया। पूछताछ करते-करते उसे पता चला कि नन्द अहीर के घर एक छोकरा है। वह छोटी-सी उम्र में ही बड़े-बड़े काम करके दिखला रहा है। कहीं वही तो कंस का शत्रु नहीं है?

कंस ने जाँच-पड़ताल करने का विचार किया। उसने सोचा—गोकुल गाँव मे एक केसरी सिंह को छुड़वा दिया जाय। अगर कोई असाधारण शक्ति वाला होगा तो वह सिंह को मार डालेगा। इस प्रकार उस बदमाश का पता चल जायगा। इस प्रकार विचार कर कंस ने केसरी सिंह छुड़वा दिया।

उधर कृष्णजी अपने साथियो के साथ खेल रहे थे। सिंह को देखते ही सब भर-भरा कर भागे। कृष्णजी से भी कहने लगे—कान्ह! भाग आओ, भाग आओ! मगर कृष्ण तो किसी और ही धातु के बने थे। वे कब भागने लगे? उन्होंने भागने वालों से कहा—ठहरो, ठहरो, भागो मत! यह तो गीदड़ की तरह है। देखो, मैं इसे अभी पकड़ लेता हूँ! और सचमुच ही कृष्ण ने सिंह को धर दबोचा। फिर उसके दोनों जबड़े फाड़ कर उसे चीर डाला।

कंस की शंका दूर हो गई। वह समझ गया कि नन्द का यह छोरा ही मेरा शत्रु है। उसने कृष्ण को मार डालने के लिए अबकी बार एक दुष्ट घोड़े को भेजा। कृष्ण ने उसे भी सीधा कर दिया।

मगर नन्द और यशोदा अब चौकन्ने हो गये हैं। उन्हें खतरे का आभास होने लगा। नन्द, कृष्ण को बाहर जाने से रोकने लगे। वह बाहर निकलना चाहते हैं तो यशोदा उनका रास्ता रोक लेती है। मगर जब दोनों इधर उधर निकल जाते हैं और मौका पाते हैं तो कृष्ण घर से छू हो जाते हैं और जंगल में जा पहुँचते हैं। वहाँ गुवाल-बालों के साथ खेलते हैं। यशोदा उन्हें डांट-फटकार बतलाती है तो भोले बनकर, मुस्कराते हुए कहते हैं—मैया, गुवालों के लड़के आये थे और जबर्दस्ती मुझे पकड़ कर ले गये थे! मैंने बहुत मना किया, माने ही नहीं! कभी कह देते हैं आज तो माँ, खेलने की मन मे आ गई थी!

एक दिन कृष्ण अपने साथियों के साथ खेल रहे थे। अचानक बादल घिर आये और जोरों की वर्षा होने लगी। भींग जाने के डर से लड़के घबराने लगे। तब आप बोले—इस पर्वत को उठा लें और इसकी छाया में खड़े रहें तो नहीं भींगेंगे। लड़के बोले—पागल हो गये हो कन्हैया! कभी पर्वत भी उठाया जा सकता है? तब कन्हैया ने कहा—पाँच आदमी मिलकर चाहे सो कर सकते हैं। देखो मैं पर्वत को उठाता हूँ। तुम लोग भी थोड़ा-थोड़ा जोर लगाना। कृष्ण ने जोर लगाया और पर्वत उठ गया! यशोदा को पता चला तो वह भागी-भागी आई और बाँह पकड़ कर घर ले

गई। वह मन ही मन इस अद्भुत बालक के लिए प्रभु से प्रार्थना करने लगीं।

इसी प्रकार एक दिन कृष्णजी अपने साथियों को लेकर जमुना के किनारे खेलने लगे। कालीदह भरा हुआ था:—

लेकर डंडा, मिलकर संडा,
कान्ह कुंवर जब रमण निसरियो ॥
खेलत गेंद गई जमना में,
कूदि परयो जहां काली-दह भरियो ॥

बहुत-से बालक मिलकर और अपने-अपने डंडे लेकर खेलने निकले। कृष्णजी उनके कप्तान थे। जमना के किनारे सब गेंद खेलने लगे। खेलते खेलते गेंद नदी में जा गिरी, गड़गप हो गई। दूसरे लड़के कहने लगे देखो कन्हैया! तेरी बाजी है और गेंद तेरे हाथ से नदी में गिरी है। सो या तो गेंद निकाल कर लाओ या हार मानो! मगर कृष्ण कब हार मानने वाले थे? उन्होंने कहा—देखो, अभी गेंद निकाल लाता हूँ। यह कह कर वह कपड़े उतारने लगे। बालकों ने कहने को कह तो दिया था, मगर वे यह नहीं चाहते थे कि कृष्ण जमनाजी में कूद पड़े, क्योंकि सभी बालक उन्हें बेहद प्रेम करते थे। कृष्णजी को सचमुच तयार होते देख वे डर गये और नदी में न कूदने के लिए आग्रह करने लगे। मगर अनोखे काम किये बिना कन्हैया को चैन कहाँ? वे तो लंगोट कस कर काली दह में धड़ाम से कूद पड़े। काली दह में नागकुमार देवता का वास था। नागकुमार साँप के रूप मे और उसकी पत्नी सर्पिणी के रूप में रहती थी। कृष्ण वहाँ पहुँचे तो नागिन ने कहा—

अरे छोकरे ! क्या पाताल-लोक में जाने के लिए यहाँ आया है ? जल्दी भाग जा, अभी मेरे पति सो रहे हैं ।

सोते नाग मेरे भरतार ।
यहां से परो निकलजा बाहर ॥

अभी मेरे स्वामी शयन कर रहे हैं । उनके जागने से पहले ही तू बाहर निकल जा ।

कृष्ण ने कहा—मेरी गेंद दे दो तो मैं भाग जाऊँ ।

नागिन—माथे पर काल मँडरा रहा है क्या ? यहाँ गेंद का क्या काम है ?

कृष्ण—जरासी गेंद के लिए झूठ बोल रही हो ? यह तो चोरी भी है !

नागिन तू ही गेंद की चोर ।
यों कहि बोले नन्दकिशोर ॥

हे नागिन ! अभी हम किनारे पर खेल रहे थे । गेंद में मैंने जोरदार डंडा लगाया तो वह उछल कर पानी में आ गिरी है । हमारे देखते-देखते तो यहाँ आई है और तुम नीयत बिगाड़ रही हो !

नागिन ने सोचा—लड़का बड़ा निर्भीक है । तभी तो काली दह में कूद पड़ा है और किस अकड़ के साथ बातें करता है ! फिर कहा—

तेरी गेंद मैंने ली कब और कब पकड़ा मेरा पल्ला ।

नारी जाति से विवाद करता, तू है बड़ा चिबिल्ला।
देता गेंद की चोरी सिर पर, तू है बड़ा निठल्ला ॥

तूने गेंद लेते कब मेरा पल्ला पकड़ा है ? औरत की जाति जान कर मेरे सामने बातें बना रहा है। और हैकड़ी दिखला रहा है ! मगर मैं ऐसी-वैसी घर की औरत नहीं हूँ। चाहूँ तो तुझे अभी मजा चखा सकती हूँ। मगर बालक जान कर क्षमा करती हूँ। अपना भला चाहता हो तो जल्दी भाग जा, नहीं तो मैं अपने पति को जगा दूंगी। वह जागते ही तेरी जान ले लेंगे।

कृष्ण ने निडर होकर कह दिया--मैं नाग क्या नाग के बाप से भी नहीं डरता ! बड़ा घमंड करती हो पति का ! जगा कर देख लो न !

नागिन को क्रोध आ गया। वह अपने पति के पास जाकर कहने लगी—

अब तो जागो जी भरतार,
मुझ से कान्ह करे तकरार ॥
कान्ह करे तकरार नाथजी-
कान्ह करे तकरार······॥

कान्हा यहाँ आ पहुँचा है और मुझे चोरी लगा कर झगड़ रहा है। मेरी बेइज्जती करता है। आप जागिए।

जागा नाग सहस फन धारी।
जिसका तेज बड़ा है भारी ॥

कहते हैं, उस नागदेव ने अपने हजार फन कर लिये। वह फुफकारता हुआ कृष्ण के सामने आया। कृष्ण के हाथ में गेंद खेलने का डंडा था और वांसुरी थी। मगर हजार फन वाले साँप के सामने डंडा और वांसुरी क्या काम आ सकते थे? लेकिन पुण्य जिसका सहायक होता है, उसका कहीं कुछ भी बिगाड़ नहीं हो सकता। कृष्णजी के पुण्य के प्रभाव से गरुड़देव आये और उन्होंने एक हजार कृष्ण के रूप बना लिये। आखिर कृष्ण ने नाग को नाथ लिया और उसके फण पर खड़े हो गये।

नागिन को स्वप्न में भी यह खयाल नहीं था कि इस छोकरे की लीला इतनी विचित्र है! उसने अपने पति की दुर्दशा देख कर कहा—तुम अपनी गेंद ले लो और मेरे पति को छोड़ दो।

कृष्ण—मेरी यह सवारी है। मैं इसे नहीं छोड़ूंगा।

उधर साथ के बालकों ने यह हाल देखा तो इतने घबराये कि न पूछो बात! उनमें से कई भागे-भागे यशोदा के पास पहुंचे। यशोदा को सारी कथा सुनाई तो उसके भी प्राण सूख गये! सोचने लगी—न जाने इस बालक का क्या होनहार है। कितना रोकती हूँ, मगर मानता ही नहीं। और फिर वह उन बालकों पर भी उबल पड़ी। बोली—

कन्हैयो म्हारो जमना में कूद पड्यो।
अणी रे व्रज का लोग ठगारा, कोई न आय कह्यो॥

तुम सब लोग बड़े दुष्ट हो। इस व्रज के सभी लोग ठगोरे हैं। कृष्ण यमुना में कूदने लगा। तो किसी ने भी खबर नहीं दी!

मगर यशोदा को चैन नहीं पड़ी। वह भागी-भागी यमुना के किनारे आई। वहाँ मौजूद बालकों से पूछा--कृष्ण कहाँ है? इसी समय कृष्ण ने माथा बाहर निकाला। लड़के चिल्ला उठे--कालिया आ गया, कालिया आ गया! कृष्ण किनारे आये तो गेंद भी साथ लेते आए। उन्होंने नाग और नागिन को विदा कर दिया। यशोदा ने नाग के ऊपर कृष्ण को सवार देखा तो पूछा--यह क्या है कान्ह!' कान्ह बोले--कुछ नहीं मैया, यह मेरी सवारी है।

करे यशोदा आरती भर मोतियन का थाल।
बजे बीन अरु बांसुरी, नृत्य करे गोपाल॥

यशोदा ने कृष्ण की आरती की और उन्हें घर ले आई। अब वह और अधिक सावधानी रखने लगी।

कालिया नाग को नाथ लेने की बात मामूली बात नहीं थी। वह गोकुल तक सीमित नहीं रही। इस घटना का समाचार मथुरा तक पहुँचते देर न लगी। कंस के कानों में बात पहुंच गई। इससे एक ओर कंस की चिन्ता और घबराहट बढ़ गई और दूसरी ओर किसी न किसी उपाय से कृष्ण को यमलोक पहुँचा देने की भावना भी बढ़ गई। वसुदेवजी ने जब यह वृत्तान्त सुना तो उन्हें भी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे--मैंने तो कृष्ण को गोकुल इसलिए भेजा था कि छिपकर बैठा रहे, लेकिन वह तो अपने बल और पौरुष के द्वारा बाहर आ रहा है! कहीं कोई अनर्थ न हो जाय! बालक अभी छोटा है। वसुदेवजी ने इस प्रकार सोच-कर नन्द को संदेशा भेज दिया--कृष्ण को जरा कठोरता के साथ

कब्जे में रखना और भूल चूक कर भी मथुरा में मत आने देना !

अब बलभद्रजी भी कृष्ण के पास आ गये। दोनों भाई बड़े ही प्रेम से गले लग कर मिले। दोनों में बहुत प्रीति बढ़ी। कृष्णजी अब तक अकेले थे, अब उनके दूसरे सहायक भी आ पहुँचे। फिर क्या था? अब किसकी ताकत जो उनका बाल भी बांका कर सके! दोनों भाई आनन्द में रहते हैं, खेल कूद मे समय व्यतीत करते हैं और एक दूसरे का साथ भी नहीं छोड़ते। जिधर निकल पड़ते हैं, गोपियाँ और गोप उन्हें घेरे रहते हैं। कभी-कभी गोकुल और मथुरा के बीच में, कदंब की छाया में बैठते हैं और इच्छानुसार मजा मौज करते हैं।

गोकुल की ग्वालिनें दही-दूध लेकर मथुरा में बेचने के लिए निकलती हैं तो कृष्णजी अपने साथियों को हुक्म देते हैं—जाओ, इन्हें कहो कि हमारा टैक्स देकर आगे बढ़े। लड़के टैक्स माँगते हैं। बहुत-सी ग्वालिनें सोचती हैं—इस नटखट लड़के से कौन उलझे! यह सोचकर वे चुपचाप कुछ हिस्सा दही-दूध-मक्खन आदि का दे देती हैं। किसी ग्वालिन को मनोरंजन करने की इच्छा होती है तो वह सीधी तरह टैक्स नहीं चुकाती। इसी बहाने वह कृष्ण से बातें कर लेती है और चित्त को सन्तुष्ट करती है। वह कहती है—जाओ, कह दो, नहीं दूंगी। क्या मैं नन्दलाल से डरती हूँ? तुम गोकुल में रहते हो तो मैं भी गोकुल में ही रहती हूँ? याद रखना, तंग किया तो कंस राजा से फरियाद कर दूंगी।

लड़के जाकर कृष्ण से कह देते हैं। कृष्ण स्वयं आ धमकते हैं। कहते हैं—जानती हो मेरा नाम? मैं बाँके के बाँकेपन को क्षण भर में ठीक कर देता हूँ। कंस को बुलाना हो तो बुला लाओ।

मैं तो यही चाहता हूँ कि वह मेरे पास आ जाय तो देश का संकट मिटे! उसे पल भर में नीलाम बुलवा दूं! मगर वह आता कहाँ है?

ग्वालिनें कृष्ण की बातें सुन-सुन कर प्रसन्न होती हैं। कहती हैं—तुम छोटे मुंह बड़ी बात मत किया करो। कितने चिबिल्ले हो तुम! जरा-से दही और मक्खन के लिए तरसते हो! लो, जितना खाना हो, लो! और वे उनका टैक्स अदा कर देती हैं।

भाइयो! यह वर्णन इस बीसवीं शताब्दी का नहीं है। आजकल तो दही-दूध इस देश में दुर्लभ पदार्थ हो गये हैं। जिस जमाने का यह वर्णन है उस जमाने में भारतवर्ष में, दूध-दही की नदियाँ बहती थीं। इस देश में पशुधन की बहुतायत थी। शायद ही कोई अभागा गृहस्थ ऐसा होगा जिसके घर गायें-भैंसे न रहती हों। अतएव यहाँ न दूध की कमी थी और न दही की कमी थी। यही कारण था कि उस समय की प्रजा खूब सन्तुष्ट और बलिष्ठ थी। दूध-दही आदि गोरस जीवनी शक्ति को बढ़ाने वाले हैं। जिन लोगों के लिए यह पदार्थ सुलभ होते हैं, वे भाग्यवान् समझे जाते हैं। आज की स्थिति को देखते हुए उस समय की कल्पना करना भी कठिन है। अत्यन्त खेद का विषय है कि आज दूध-घी की अत्यन्त कमी हो जाने के कारण लोगों को नकली दूध और वनस्पति का घी—जो स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त ही हानिकारक है, इस्तेमाल करना पड़ता है! इन पदार्थों के इस्तेमाल से तरह तरह की नयी-नयी बीमारियाँ उत्पन्न हो रही हैं और जनता का स्वास्थ्य और बल घटता जा रहा है।

इस परिस्थिति का मुकाबिला कैसे किया जा सकता है ? इस प्रश्न को गंभीरता के साथ विचार करने की आवश्यकता है। इस दयनीय दशा का मुख्य कारण है-पशुधन के प्रति वैसी भावना न रहना जैसी पहले थी। पहले के लोग गाय को माता मान कर उसका पालन-पोषण और रक्षण करते थे, आज लोग गाय को भी कसाई के सिपुर्द करते हुए संकोच नहीं करते। पहले के लोग गायों की रक्षा करके उनके दूध-दही का उपभोग करते थे और आज लोग गाय को ही खा जाते हैं !

भाइयो ! फल की प्राप्ति उसे होती है जो वृक्ष की रक्षा करता है। वृक्ष की रक्षा करने वाला सदैव उसके फलों का उपभोग कर सकता है। मगर जो आदमी वृक्ष को ही उखाड़ कर फैंक देगा या जला देगा, उसे फिर फल कैसे मिल सकेंगे ? गाय वृक्ष के समान है और उसका दूध फल के समान है। गाय की रक्षा करने वाले को दूध दही आदि मिल सकते हैं, मगर जो गाय को ही काट कर खा जायगा, उसे तो उसके फल से वंचित ही होना पड़ेगा। जिस देश में गाय की पूजा की जाती थी, उसी देश में आज गाय काटी और खाई जाती है ! यह कितने खेद का विषय है ! इसी के फलस्वरूप आज लोग दूध-घी के लिए तरसते हैं। श्रीकृष्ण ने गोकुल में रह कर गो जाति की महिमा को बढ़ाया था। उस समय गुवालिनें अगर कृष्णजी को दही—मक्खन दे देती थीं तो कोई बड़ी बात नहीं थी। इससे उन्हें कोई बड़ी हानि नहीं होती थी।

श्रीकृष्ण गोकुल की समस्त गोपियों के प्यारे थे। गोपियाँ कभी-कभी यशोदा से कहतीं—तुमने भी खूब जना है इस कान्हा

को ! यशोदा हँस देती और कहती—यह क्या अकेला मेरा ही है ? तुम सभी का है वह ! तुम्हारा न होता तो तुम उसे प्यार क्यों करतीं ?

नन्दजी के घर दूध, दही, मक्खन आदि की कमी नहीं थी। उनके पास दस हजार गायें थी। फिर भी कृष्णजी मौज करने के लिए हो दूध-दही की छीना-झपटी या चोरी कर लिया करते थे। इस प्रकार सारे गोकुल में वे एक प्रकार का उल्लास बनाये रखते थे। अब उनकी उम्र करीब-१५-१६ वर्ष की हो गई थी।

इधर कंस की बहिन सत्यभामा बड़ी हो गई। कंस ने उसका विवाह करने के लिए स्वयंवर करने का निश्चय किया। देश-देश के राजाओं को आमंत्रण भेज दिये गये और मथुरा में विशाल और सुन्दर सभामंडप बनाया गया। स्वयंवर मंडप यमुना के किनारे तैयार हो गया। दूर-दूर के राजा स्वयंवर में सम्मिलित होने आये।

कंस ने स्वयंवर में सारंग धनुष रक्खा और घोषणा की कि जो राजा या राजकुमार इस धनुष को चढ़ाएगा, उसी के गले में वरमाला पड़ेगी। वही सत्यभामा को प्राप्त कर सकेगा।

वसुदेवजी का एक लड़का अनाधिष्टकुमार था। वह गोकुल में आया और कृष्ण तथा बलराम से मिला। दूसरे दिन तीनों भाई साथ-साथ मथुरा के लिए रवाना हुए। रथ में बैठ कर वे चले तो कृष्ण ने कहा—इस मार्ग से चलें। अनाधिष्टकुमार बोले—यह मार्ग खराब है। बीच में झाड़-झंखाड़ बहुत हैं। तब श्रीकृष्ण

ने कहा—परवाह मत करो! आखिर कृष्ण के बताये मार्ग से ही रथ रवाना हुआ। रास्ते में जो झाड़-पेड़ आये, कृष्णजी ने उन्हें मूली की तरह उखाड़ कर फैंक दिया और मथुरा तक का रास्ता साफ कर दिया। जमनाजी को पार करके रथ मथुरा पहुंचा।

तीनों कुमार सीधे स्वयंवर-मंडप मे जा पहुँचे। स्वयंवर मंडप में अनेक देशों के नृपतिगण शान के साथ जमे हुए हैं। विविध प्रकार के वस्त्रों और अलंकारों से अलंकृत वे ऐसे मालूम होते हैं, जैसे देवगण मनुष्य का रूप धारण करके बैठे हो! सब के मन मे सत्यभामा को प्राप्त करने की प्रबल कामना जाग रही है। अपने बल और पौरुष पर भरोसा रखने वाले राजा लोग यही समझ रहे हैं कि बस, सत्यभामा हमें ही मिलने वाली है। उधर सत्यभामा उत्तम सिंगार से सजकर, अप्सरा के समान सुशोभित होती हुई स्वयंवर मंडप में आई। उसके साथ उसकी सखियाँ थीं। सत्यभामा के हाथो में वरमाला सुशोभित थी।

प्राचीन काल के इतिहास में ऐसे-ऐसे स्वयंवरों की अनेक घटनाएँ जानने को मिलती हैं! स्वयंवर में धनुष चलाने या लक्ष्यवेध करने की जो शर्त रक्खी जाती थी, वह देश की दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण थी। ऐसी शर्त से वीरता और पराक्रम को प्रोत्साहन मिलता था। क्षत्रिय लोग ऐसे अवसरों पर विजयी होने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते थे। इससे देश में वीरता बढ़ती थी प्रति-स्पर्धा की भावना से वीरता में एक दूसरे से बढ़ जाने की कोशिश करते थे। यही कारण है कि उस समय में एक से बढ़कर एक वीर पुरुष हुए हैं।

आज दुर्भाग्य समझना चाहिए लोगों का कि उनकी दृष्टि वीरता, शूरता और शक्ति की तरफ नहीं रही है। आज शूरता के बदले सम्पत्ति, वीरता के बदले वित्त और पराक्रम के बदले पैसे की पूजा होती है! आज विवाह करते समय वर की शक्ति और वीरता को कोई नहीं पूछता, केवल धन की ही पूछ होती है! धन ही मनुष्य की सर्वोत्तम कसौटी बन गया है। जब गुणों को कोई टके सेर नहीं पूछता और धन को ही परमेश्वर समझा जाता है तो नतीजा यही होता है कि लोग गुणों की तरफ ध्यान न देकर धन को ही अपने जीवन का उद्देश्य समझने लगते हैं। आज यही दशा इस देश में हो रही है! सब लोग पैसे के पीछे पागल हैं! जीवन की कोई कीमत नहीं, विद्या का कोई मूल्य नहीं, सद्गुणों की कोई पूछ नहीं है! जो कुछ है, आज धन ही सार-सर्वस्व है।

भाइयो! मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ और किन शब्दों में कह कर समझाऊँ? और कौन नहीं समझता कि जीवन और धन में से जीवन ही महत्त्वपूर्ण वस्तु है? धन जीवन के लिए है; जीवन धन के लिए नहीं है। माना कि जीवन को सुखमय बनाने में, गृहस्थ-अवस्था में धन की जरूरत होती है, पर इसका अर्थ यह तो नहीं है कि तुम धन के लिए अपने सारे जीवन को और समस्त सद्गुणों को ही निछावर कर दो!

आज धन के सम्बन्ध में प्रतिस्पर्द्धा होने के कारण और धन को ही प्रतिष्ठा मिलती देख कर लोग विवाह-शादी जैसे अवसरों पर भी धन को ही महत्त्व देते हैं। कन्या का पिता चाहता है कि मुझे लखपति जँवाई मिले और लड़के का पिता चाहता है

कि मुझे ऐसा कोई सम्बन्धी मिले जो धन से मेरा घर भर दे ! इस तरह दोनों की नजर धन पर ही होती है। इससे बेचारे गरीबों को कितनी परेशानी होती है, इस ओर किसी का ख्याल नहीं जाता। योग्य से योग्य लड़के कुंवारे फिरते हैं और धनवान् बूढ़े शादियां करके अपने बुढ़ापे को लजाते हैं ! जिस देश की और जिस जाति की ऐसी दशा हो, उसका उत्थान कैसे होगा ?

प्राचीन काल में वीरता का सत्कार होता था, आज धन का सत्कार होता है ! देश का यह पतन क्या सामान्य पतन है ? वीरता का सन्मान करने के लिए ही उस समय की स्वयंवर प्रणाली में ऐसी-ऐसी शर्तें रक्खी जाती थीं। कंस ने भी उस समय की प्रणाली का ही अनुसरण करके स्वयंवर में यही शर्त रक्खी कि जो सारंग धनुष को चढ़ाएगा, उसी के साथ सत्यभामा का विवाह कर दिया जायगा।

राजा लोग बारी-बारी से, अपने-अपने स्थान से उठते हैं और धनुष चढ़ाने की कोशिश करते हैं। उनमें से कोई असफल हो जाते हैं और कोई धनुष देख कर ही लौट आते हैं ! उनका मुंह लज्जा से लाल हो जाता है और वे नीची आंखें करके अपनी जगह बैठ जाते हैं। अब की बार अनाधिष्टकुमार धनुष उठाने लगा तो उसका पैर फिसल गया। लोग हंसने लगे। उसी समय श्रीकृष्ण ने, जो उसके पास ही खड़े थे, धनुष को उठाया और अनायास ही चढ़ा दिया। धनुष चढ़ाकर कृष्णजी ने जो टंकार की तो राजाओं की उस सभा में सन्नाटा छा गया।

दूसरे दिन मल्लयुद्ध का निश्चय हुआ। कृष्ण और बलदाऊ दोनों गोकुल लौट आये। यशोदा से कहा—मैया, सुबह जल्दी ही

हमारे लिए पानी गर्म कर देना। कल कंस के मल्लों से हमें कुश्ती लड़नी है! कंस के मल्लों से कुश्ती लड़ने की बात सुन कर यशोदा का हृदय काँपने लगा। वह सोचने लगी—कहाँ यह कोमल बालक और कहाँ राक्षसों सरीखे कंस के मल्ल! कोई अनर्थ अब होना ही चाहता है! उसने कृष्ण को बहुतेरा समझाया पर कृष्ण कब मानने वाले थे? फिर भी सुबह होने पर उसने पानी गर्म नहीं किया! तब बलरामजी को गुस्सा आ गया। बोले—'आखिर तो अहीरनी ही ठहरी!' यह शब्द सुन कर कृष्णजी को गहरा आघात लगा! उन्होंने बलदाऊ को फटकारा और कहा—मेरी माता का फिर इस प्रकार अपमान करोगे तो समझ लेना कि कुशल नहीं है! कोई दूसरा होता तो मैं उसकी जीभ पकड़ कर बाहर खींच लेता। खबरदार, फिर कभी ऐसे शब्द कहे तो!

बलराम बोले—गुस्से में निकल गया! मैं ऐसा कहना नहीं चाहता था! मगर तुम्हारी असली माता रानी देवकी हैं तुम राजा वसुदेव के पुत्र हो। यह बात तुम्हें अभी मालूम नहीं है!

कृष्णजी अपने जीवन का नवीन मर्म सुन कर चकित और विस्मित रह गये! आज उनके हर्ष का पार नहीं था। ऐसा उत्साह उनमें जाग उठा, मानो सौ गुना बल बढ़ गया हो!

दोनों भाई मंडप में आये तो दरवाजे पर दो मस्त गज-राज खड़े थे। कंस ने महावतों को सिखला दिया था कि कृष्ण और बलराम ज्यों ही इधर आवें हाथियों को इशारा कर देना और दोनों को कुचलवा देना! किसी तरह जीवित न बचने पावें!

यही हुआ। इधर दोनों भाई पहुँचे कि हाथी झपटे। मगर दोनों ने एक-एक हाथी की सूंड पकड़ी और जमीन पर पटक दिया। फिर उनके दंतशूल उखाड़ लिए। इतना करके वे सभा-मण्डप मे पहुँचे। अन्त में दोनों भाइयों का कंस के चाणूर और मुष्टिक नामक मल्लो के साथ कुश्ती हुई। अखाड़े में एक ओर चाणूर और दूसरी ओर कृष्ण को देखकर दर्शक घबरा उठे। कई कहने लगे—कहां डाकी चाणूर और कहां बालक कृष्ण ! हाय, इस बालक की क्या दशा होगी ? जिन्हे कंस के दुष्ट अभि-प्राय का पता था. वे खास तौर से चिन्ता में पड़ गये। उन्होंने समझा—आज कृष्ण को ब्रह्मा भी नहीं बचा सकता ! मगर कृष्ण के चेहरे पर उस समय एक अद्भुत शौर्य और अनूठा तेज झलक रहा था उन्होंने निर्भीकता से कहा—केसरी सिंह के सामने हाथी की क्या दशा होती है, आज मैं यही आप लोगों को बतलाऊँगा !

आखिर कुश्ती में कृष्णजी ने वह वीरता बतलाई कि लोग दांतों तले उंगली दबाने लगे। चाणूर मारा गया और कृष्ण विजयी हुए। उधर बलराम ने भी मुष्टिक को प्राणहीन करके दर्शकों को आश्चर्य में डुबा दिया ! दर्शकों की प्रसन्नता का पार नहीं रहा। मगर कंस के डर के मारे किसी ने ताली नहीं बजाई।

फिर भी कंस के क्रोध ने उग्र रूप धारण किया पहले दोनों हाथी मारे गये और अब दोनों मल्ल भी मारे गये ! यह देखकर भीतर ही भीतर कंस कांप उठा जैसे पक्षी के दोनों पंख उखाड़ दिये जाएँ तो वह पक्षी लाचार और विवश हो जाता है,

उसी प्रकार कंस लाचार और विवश होता हुआ भी ऊपर से क्रोध दिखलाने लगा। उसने कहा—इन दोनो बदमाश छोकरो ने कुश्ती के नियमों का उल्लंघन करके मेरे मल्लों को मार डाला है। यह हत्यारे हैं। हत्या के अपराध में इन्हें प्राण दण्ड की सजा दी जाय ! साँप को दूध पिला कर नन्द ने भी घोर अन्याय और जुल्म किया है, उसकी सारी सम्पत्ति लूट ली जाय।

कंस की यह बोखलाहट सुनकर कृष्ण के नेत्रों से आग बरसने लगी। उन्होंने कंस से कहा—पामर ! पहले अपनी जान बचाने की फिक्र कर, फिर हमें प्राणदंड देना ! जरा होश संभाल ! भगवान का नाम जप ले। जिन्दगी मे कभी परमात्मा को याद नहीं किया होगा, अब मौत के समय तो याद कर ले ! परलोक की तैयारी कर ले !

कंस तलवार हाथ में लेकर खड़ा हो गया। कृष्ण पर वह वार करने को तैयार हो ही रहा था कि कृष्ण ने उसकी तलवार पकड़ली। एक हाथ से तलवार और दूसरे हाथ से कंस की चोटी पकड़ी। चोटी पकड़ कर भरी सभा में उसे घननन घुमाकर उसे जोर से फैंक दिया ! शेर के सामने बेचारा मृग क्या कर सकता है ! कृष्ण ने कहा—पातकी ! तूने मेरे छह भाइयों के प्राण लिये हैं और प्रजा पर घोर अत्याचार किया है। तूने अपनी बहिन और बहिनोई को भी नहीं छोड़ा ! उन्हें तूने कारागार में कैद किया ! अरे कंस तेरे पापों का कहाँ तक बखान किया जाय, तूने अपने सगे बाप के साथ भी दुश्मन के समान व्यवहार करके उन्हें कैदी बना रक्खा है ! तेरे अत्याचार चरम सीमा को प्राप्त हो चुके हैं ! तेरे पापों का घड़ा भर चुका है। अब इस पृथ्वी

पर जीवित रहने का तुझे कोई अधिकार नहीं है।

इस प्रकार कंस का ध्वंस करके कृष्णजी ने अनीति, अत्याचार और अन्याय का अन्त किया! कंस का पतन देख कर सज्जन पुरुषों को परम प्रमोद हुआ। दुर्जन लोग भय से काँप उठे!

भाइयो! चौबीस तीर्थंकरों का विवरण आपको सुना रहा था। बाईसवें तीर्थङ्कर भगवान् नेमिनाथ के समय मे कृष्णजी और बलदेवजी हुए। उन्होंने अपने चरित से लोगों को विस्मित किया।

बाईसवें तीर्थङ्कर भगवान् अरिष्टनेमि के बाद भगवान् पार्श्वनाथजी और अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर हुए। भगवान् पार्श्वनाथजी के जीवन की भी अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हैं और महावीर स्वामी के जीवन में भी अनेकानेक अद्भुत तथा ओज-पूर्ण वृत्तान्त हैं। इन दोनों तीर्थङ्करों के जीवन चरित पृथक-प्रकाशित हो चुके है। आज इतना समय नही है कि उनके जीवन पर प्रकाश डाला जा सके।

किसी भी महापुरुष का जीवन लीजिए, आपको सब में एक ही बात मिलेगी। मानो सब की जीवनी एक ही चक्र पर घूमती है। वह चक्र है तपस्या का! प्रत्येक महापुरुष के जीवन में तप का ही तेज उद्भासित होता है। महापुरुष का परिचय अर्थात् तप की शक्ति का परिचय! तपस्या के प्रताप से महा-पुरुष का जन्म होता है। तप के प्रताप से ही वह अलौकिक कृत्य करके दिखलाते है!

कृष्णजी ने अपने जीवन में जो चमत्कार कर दिखलाये थे, उनका बीज कहाँ है ? गोकुल के पानी ने कृष्णजी मे अनूठी शक्ति और तेज नहीं उत्पन्न कर दिया था। गोकुल का पानी तो सभी गोकुलवासी पीते थे। कृष्णजी खाना भी वही खाते थे जो दूसरे लोग खाते थे। फिर उनमें अलौकिक शक्ति कहां से आ गई ? इस प्रश्न का उत्तर हमें उनके पूर्व जन्म के वृत्तान्त से मिलता है। वे कठोर तपस्या करके आये थे। तप का तेज अपने साथ लाये थे। उसी तेज के प्रभाव से उन्हें महान् बल, पौरुप, यश और सन्मान मिला।

भाइयो ! इस वृत्तान्त को सुनाने का अभिप्राय यह है कि आप भी शक्ति के अनुरूप तपस्या करो और अपनी आत्मा को तेजस्वी बनाओ। यह पर्युषण महापर्व तपस्या का अपूर्व अवसर है। तपस्या करोगे तो इस लोक में और परलोक में आनन्द ही आनन्द होगा !

स्थान—जोधपुर
ता० १-६-४८





गजानन्द प्रेस, ब्यावर